ISSN 2454-6879

देसहरियाणा

सामाजिक-सांस्कृतिक अभिव्यक्ति का मंच

सितम्बर-अक्तूबर 2016 वर्ष -2 अंक -7

पता : देस हरियाणा
912, सैक्टर-13, कुरुक्षेत्र
(हरियाणा)-136118

मो. : 94164-82156

Email : haryanades@gmail.com
desharyana@gmail.com

WEB : **desharyana.in**

ISSN NO 2454 - 6879

चंदे की दरें :
व्यक्तिगत : एक वर्ष 175 रुपए
तीन वर्ष 500 रुपए
संस्था : एक वर्ष 400 रुपए
तीन वर्ष 1 हजार रुपए
आजीवन : पांच हजार रुपए
संरक्षक : दस हजार रुपए

ऑनलाईन भुगतान के लिए
बैंक खाता : देस हरियाणा,
इलाहाबाद बैंक कुरुक्षेत्र
खाता संख्या : 50297128780
IFS Code: ALLA0211940

लेखकों द्वारा उनकी रचनाओं में प्रस्तुत विचार एवं दृष्टिकोण उनके अपने हैं। सम्पादक की सहमति अनिवार्य नहीं। समस्त कानूनी विवादों का न्याय-क्षेत्र कुरुक्षेत्र न्यायालय होगा। सम्पादक एवं संचालन अव्यवसायिक एवं अवैतनिक। प्रकाशक, मुद्रक और सुभाष चंद्र की ओर से 912, सैक्टर-13, कुरुक्षेत्र, हरियाणा से प्रकाशित

इस अंक में

लोकधारा

पितृसत्ता का मिथ बनाम
खेल के मैदान में स्त्री-शक्ति की उड़ान

हरियाणा के समाज में खेल एक खिड़की की तरह है विशेषकर लड़कियों के लिए। सैंकड़ों महिला खिलाड़ियों ने अपनी प्रतिभा और ताकत प्रदर्शित करके पितृसत्ता के सदियों पुराने इस मिथक को चूर चूर कर दिया है कि महिलाएं पुरुषों के मुकाबले में कमतर हैं। महिला-खिलाड़ियों की उपलब्धियों के पीछे पुरातन संस्कारों और मर्यादाओं के पहाड़ तोड़कर लांघने की हिम्मत व संघर्ष है। परम्परागत तौर पर लगभग वर्जित क्षेत्र में जब महिलाएं हाथ आजमाती हैं तो उनको पितृसत्तात्मक सोच की मजबूत जकड़न से निरंतर टकराना पड़ता है। प्रख्यात पर्वतारोही संतोष यादव के उस टिप्पणी से इसका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है जो उन्होंने हिमालय की सबसे ऊंची चोटी से वापस लौटकर की थी कि हिमालय पर चढ़ने से ज्यादा जोर तो हिमालय पर चढ़ने के लिए परिवार को मनाने में लगा था।

जब महिला-खिलाड़ी मेडल लेकर आती हैं तो फूल मालाओं और प्रशंसापूर्ण शब्दों के साथ उनका स्वागत होता है। इन उपलब्धियों पर गांव-प्रांत-देश अपनी पीठ भी ठोंकता है। सरकारों व अन्य संस्थाओं की ओर से पुरस्कारों व इनामों की घोषणाएं भी होती हैं। विडम्बना यही है कि ऐसी उपलब्धियों के लिए जैसे परिवेश व सुविधाओं की आवश्यकता है उसे निर्मित करने की ओर ठोस कदम नहीं उठाए जाते। परिणामस्वरूप ये उपलब्धियां व्यक्तिगत बनकर रह जाती हैं और ये सामाजिक संरचनाओं व ढाचों पर विशेष प्रभाव नहीं डाल पाती। जिनकी उपलब्धियां हैं वे तो हीरो की तरह सामाजिक वर्जनाओं-बंधनों से ऊपर उठ जाते हैं, लेकिन शेष समाज अपनी उसी लय व गति से चलता रहता है।

अध्यापकों, अधिकारियों व राजनेताओं द्वारा मंचों से खेल की महिमा को बार-बार दोहराया जाता है, कि खेल से सामूहिक भावना का विकास होता है, अनुशासन आता है, युवा नशे-अपराध आदि से बचते हैं, लेकिन खेलों के लिए व्यवस्था करने में उतनी पहलकदमी दिखाई नहीं देती। जिस तरह अपने निकट शिक्षण संस्थाओं के अभाव में लड़कियों की पढ़ाई अधर में ही छूट जाती है उसी तरह खेल के मैदान अथवा अन्य सुविधाओं के अभाव में कितने ही होनहार खिलाड़ियों की खेल-प्रतिभा की भ्रूण-हत्या हो जाती है।

इसे मां-बाप या स्वयं खिलाड़ी पर छोड़ने की बजाए संस्थागत प्रयासों की आवश्यकता है। न तो सभी खिलाड़ी अपनी जिद्द के आगे मां-बाप को झुकाने-मनाने में सक्षम होते हैं और न ही सब अपने तौर पर अकादमियों में कोचिंग और खुराक का भारी खर्च वहन करने में सक्षम होते हैं। सरकारों व अन्य संस्थाओं को विजेता खिलाड़ियों को इनाम देकर ही अपने कर्त्तव्य की इतिश्री नहीं समझनी चाहिए बल्कि ऐसे परिवेश निर्माण करने के लिए कदम उठाने की जरूरत है जिसमें चारदिवारी में कैद प्रतिभाएं अपनी क्षमताओं व संभावनाओं को विकसित कर सकें।

वह जमाना लद गया जब मात्र सैन्य-शक्ति के बल पर कोई देश दुनिया के दूसरे देशों पर अपना रौब-धौंस जमा लेता था। वर्तमान समय में खेलों में अव्वल आकर ही कोई देश अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सम्मान हासिल कर सकता है। खेल भी किसी देश की स्थिति का पैमाना है, इसीलिए ओलम्पिक खेलों में अधिकाधिक पदक प्राप्त करने की जो होड़ कुछ समय पहले अमेरिका और रूस में थी अब चीन और अमेरिका में है।

ऐसा क्या है कि थोड़ी-थोड़ी आबादी वाले छोटे-छोटे देशों की खेलों में उपलब्धियां भारत जैसे विशालकाय देश से अधिक हैं। इसके कुछ कारण तो होंगे ही जिन्हें चिह्नित करके दूर करने की जरूरत है।

'पढ़ोगे-लिखोगे बनोगे नवाब, खेलोगे-कूदोगे होगे खराब।' की कहावत में एक सच्चाई तो है कि खेल में कोई कैरियर नहीं है। हां, कुछ समझदार किस्म के लोग शौकिया तौर पर, मनोरंजन के लिए, सेहत-तंदुरुस्ती के लिए थोड़ा खेलने में कुछ बुराई नहीं समझते। सही है कि यदि रोजी-रोटी की समस्या ही खिलाड़ियों के सामने सुरसा की तरह मुंह बाए खड़ी रहेगी तो वे अपना पूरा ध्यान अपने खेल में कैसे लगा सकते हैं। 'उड़नपरी' पी टी ऊषा आदि खिलाड़ियों का अनुभव बता रहा है कि जल्दी ही खिलाड़ियों को अपने हाल पर छोड़ दिया जाता है।

शिक्षण संस्थाओं में (विशेषतौर पर निजी संस्थाओं में) अधिकांश के पास खेल के मैदान नाम मात्र के हैं। निजी संस्थाओं के पास खेल-हाल हैं तो वे शहरी अमीरों के बच्चों के टाइमपास का साधन हैं। क्योंकि इन संस्थाओं के संचालक वही हैं। म्युनिसिपल

कमेटियां खाली जगहों को खेल-मैदान के तौर पर विकसित न करके मार्किट में तब्दील करने में अधिक रुचि ले रही हैं। यदि शहरों में खेल के लिए कोई स्थान है भी तो वहां क्रिकेट वालों ने अपनी विकटें गाड़ रखी हैं। खेलों के प्रति सकारात्मक माहौल के लिए पांच-दस हजार की आबादी पर खेल का मैदान जरूरी है। जय जवान, जय किसान के साथ जय खेल मैदान का नारा देना होगा।

खेल प्रतिष्ठानों की खस्ता हालात की खबरें आए दिन अखबारों में छपती रहती हैं। जिन खेल-संघों ने खेलों क लिए सुविधाएं मुहैया कराने व खेल-प्रतियोगिताएं आयोजित करने का भार अपने ऊपर ले रखा है वे राजनेताओं की सनक व वर्चस्व दिखाने का अड्डा बन रही हैं। जीवन के अन्य पहलुओं की तरह खेलों में भी व्यवसायिकता की विकृति घर करती जा रही है। यह नूरा कुश्ती व क्रिकेट के माध्यम से ग्रामीण खेलों तक में भी घुसपैठ कर गई है। गांव में होने वाली कुश्ती-कबड्डी आदि की खेल-प्रतियोगिताओं में लाखों रुपए के इनामों की घोषणाओं से इनके प्रति आकर्षण तो बढ़ाता हैं लेकिन अन्ततः खेल व उसकी मूल भावना को नुक्सान ही होता है।

कैसे कैसे मंजर सामने आने लगे हैं
गाते गाते लोग चिल्लाने लगे हैं

पूरी दुनिया में हिंसा, उन्माद धार्मिक नफरत को बढ़ाया जा रहा है। अमेरिका के राष्ट्रपति के चुनाव में रिपब्लिकन पार्टी के उम्मीदवार डोनाल्ड ट्रम्प अमेरिकी गौरव की स्थापना की दुहाई देकर नस्लवाद व धार्मिक विद्वेष को बढ़ावा दे रहे हैं। भारत में काश्मीर हो या गुजरात जिधर नजर दौड़ाओ पूरे देश में अंशाति का वातावरण है। कहीं धर्म के नाम पर तो कहीं जाति के नाम पर अपना वर्चस्व बनाए रखने के लिए कमजोरों पर अत्याचार ढाये जाते हैं। उन्हें सताया जाता है।

आखिर कौन है जो अशांति व उन्माद की स्क्रिप्ट लिखता है, मंच तैयार करता है और लोगों को उसमें धकेल देता है। स्वार्थी राजनेताओं व राजनीतिक दलों ने साम्प्रदायिक-जातिगत हिंसा व उन्माद को राजनीतिक निवेश मान लिया है। अपनी ही जनता के प्रति षडयंत्र करना शासक वर्गों का चरित्र बनता जा रहा है।

यह केवल कानून-व्यवस्था का सवाल नहीं है, बल्कि विकास के माडल से इसका गहरा संबंध है। विचारणीय बात ये है कि क्या विकास का अनुमान विकास दर के आंकड़ों से लगाया जायेगा और चौड़ी सड़कें ही विकास व तरक्की का पैमाना होंगी या फिर गुणवत्तापरक मनुष्य जीवन।

इस अंक में -

इस अंक में अमृतलाल मदान की 'दो मुंह का देवता', उदय राम की 'प्राण प्रतिष्ठा', गंगाराम राजी की 'फेसबुक' तथा अफ्रीकी लेखक अमा अता आयडू की 'लड़की जो कर सकती है' कहानी दी जा रही है। गोपाल सिंह नेपाली, पंजाबी के कवि हरिभजन सिंह रेणु, सुरेश बरनवाल, रमेश कुंतल मेघ, मीनाक्षी गांधी, कविता वर्मा, संगम वर्मा की कविताएं हैं। देव निरंजन तथा अजय जोशी पानीपती की गजलें हैं।

भाषा-विमर्श में विश्व प्रसिद्ध भाषा-विज्ञानी व चिंतक नोम चोम्स्की का साक्षात्कार, जोगा सिंह, सदानंद साही तथा सौम्य मालवीय द्वारा अनुदित राहुल वर्मा का लेख है। कृषि क्षेत्र की योजना तथा वैकल्पिक कृषि पर प्रकाश डालने वाले दो लेख हैं। राजेन्द्र चौधरी का 'वैकल्पिक कृषि-क्रांतिकारी कृषि' तथा हरबीर सिंह 'आंकड़ों में उलझी सरकार' का लेख है। अफवाहों के समाजशास्त्र पर प्रकाश डालता सुरेन्द्र पाल सिंह का आलेख है। गुम हुए बच्चों के प्रति संवेदना जगाता रामफल दयोरा का लेख है। खेल खेल में शिक्षा देने वाले गन्नोर के उमंग स्कूल के अनुभव पर विरेंद्र सरोहा का लेख तथा सही राम रचित नौटंकी 'किस्सा सदरूदीन मेवाती का' है।

लोकधारा में जसबीर लाठरों की कविता 'सरपंची', कर्मचंद केसर की गजलें, तीन लोककथाएं (महादे-पारबती, शेर अर झोटा दुनिया कोनी जीण दिंदी), ज्ञानीराम शास्त्री की रागनियां, सपना रानी का 'हरियाणा में सांग-परंपरा' आलेख तथा कमलेश चौधरी का अनुभव प्रकाशित कर रहे हैं।

हरियाणा की बोलियों व भाषाओं की सृजनात्मक अभिव्यक्ति को लोकधारा में निरंतर प्रकाशित करने का निर्णय लिया है। हरियाणा की बोलियों-भाषाओं में साहित्य लेखन करने वाले रचनाकारों से अनुरोध है कि किसी भी विधा में अपनी रचनाएं 'देस हरियाणा' में भेंजे। हमारा विश्वास है कि आपके सहयोग से हरियाणवी के लेखन पर चर्चा-विमर्श से उसके स्वरुप व गुणवत्ता में सकारात्मक प्रभाव पड़ेगा।

भारत के प्रख्यात लेखक गुरदियाल सिंह व महाश्वेता देवी के हमारे बीच से चले जाने से साहित्य जगत को गहरी क्षति पहुंची है। उनको नमन व श्रद्धांजलि।

सुभाष चंद्र

-अपील-

देस हरियाणा सामाजिक-सांस्कृतिक पत्रिका है। पूर्णतः अव्यवसायिक, अवैतनिक पत्रिका है, जिसे किसी तरह का अनुदान प्राप्त नहीं होता है। यह पूर्णतः पाठकों तथा पत्रिका सहयोगियों के संसाधनों से प्रकाशित होती है।

रचनाकारों, सामाजिक कार्यकर्त्ताओं से विशेष अनुरोध है कि पाठकों को पत्रिका से जोड़ें। पत्रिका के लिए अपने शहर में बिक्री का स्थान चिन्हित करके सूचित करें, ताकि पत्रिका पहुंचाई जा सके।

रचनाकारों से निवेदन है कि अपनी रचनाएं भेजें। यूनिकोड, चाणक्य, कृतिदेव फोंट में ईमेल द्वारा सामग्री भेजें तो सुविधा होगी

दो मुंह वाला देवता

अमृत लाल मदान

मामी जी को दो दिनों के लिए तावड़ू वापिस जाना पड़ा, जहां जाकर उन्हें अपने और मामा जी के मैले कपड़े धोने थे, धुले और कपड़े अस्पताल लेकर आने थे तथा कुछ अन्य जरूरी घरेलू कार्य करने थे। क्योंकि मैं उनके साथ पूरे चौबीस घंटे दिल्ली के इस बड़े अस्पताल में बिता चुका था, मुझे मरीज मामा जी के रूटीन का पता चल गया था कि कब कब दवाई देनी है। सो, मामा जी की देखभाल ठीक प्रकार से हो पाएगी। फिर भी जाते-जाते वह कह गई कि जाते ही यहां मोती लाल को भी भेज देंगी। एक रोज दुकान बंद रहेगी तो कोई सुनामी नहीं आ जाएगी।

मोती लाल मामा जी का इकलौता पुत्र था, पर उसे अपने पिता यानी मेरे मामा से कोई विशेष लगाव न था। वह अविवाहित रहकर अपनी दुकान के अलावा अपने राष्ट्र की सेवा में तन-मन से लगा हुआ था। भारत मां के सम्मुख अपने बीमार पिता की सेवा उसे अत्यंत तुच्छ लगती थी।

हरियाणा में मेवात क्षेत्र के द्वार तावड़ू में मेरे मामा कपड़े की दुकान करते थे। पता नहीं वहां के रेतीले पानी में कैसा प्रदूषण फैल गया था कि वह पीलिया के शिकार हो गए थे। पहले तो वह कस्बे के मुल्ला मौलवियों-ओझाओं से इलाज कराते रहे, प्रसिद्ध गर्म पानी के चश्में में भी गायत्री मंत्र का जाप करते हुए स्नान करते रहे, लेकिन बीमारी बढ़ती गई। दिल्ली आकर जांच कराने से ज्ञात हुआ कि खून पानी बनने लगा है। मामा जी के पैर सूजने लगे थे और टांगें भी। उनकी आंखों का पीलापन भी डराने लगा था। मैं मामा जी के पैताने बैठा चिंताग्रस्त हो रहा था कि क्या होगा उनका। इस सरकारी अस्पताल में दाखिल हुए उन्हें दस दिन हो चले थे। उन्हें कितनी बार तो मूत्र और शौच का दबाव सताता था। टैस्ट भी होते थे।

वार्ड में जो अन्य मरीज दाखिल थे वे भी लगभग गंभीर बीमारियों से ग्रस्त थे। अधिकतर मरीज तो निर्धन या निम्न मध्यवर्गीय थे। किसी किसी बिस्तर पर दो मरीज भी लेटे थे। उनके सहायक एक-दूसरे की यथासंभव सहायता भी कर देते थे। उदासी के इस वातावरण में कभी-कभी हंसी मजाक की फुहार भी छूट जाती तो अच्छा लगता। रोगी के साथ एक ही सहायक रह सकता था। नाश्ते से पहले जब बड़े डाक्टर अपनी टीम के साथ राऊंड पर आए तो मैंने उनसे पूछना चाहा कि क्या मामा जी की हालत में कुछ सुधार भी है, पर सबकी कठोर मुख मुद्रा देख मेरी हिम्मत न हुई। पता नहीं ये सरकारी डाक्टर ऐसी मुद्रा क्यों बनाए रखते हैं कि चंगा होता मरीज भी देखकर अधमरा हो जाए या फिर पूरा मुर्दा।

उनके जाने के बाद चाय नाश्ते वाला आया। नाश्ते की ब्रेड की प्लेट मामा जी के आगे रखते हुए मैंने कहा, 'मामा जी, आज तो हालत में सुधार लग रहा है।'

'हां, तुम्हारी मामी जो चली गई है थानेदारनी सी।' वह हंसते हुए बोले। मैंने झूठमूठ कहा, 'देखो डाक्टर साब ने आपकी केस-हिस्ट्री में भी सुधार की बात लिखी है।' 'ये कीड़े-मकौड़े झरीटने वाले अपने सुधार तो कर लें पहले। मुंह पर तो बारह बने रहते हैं इनके, जैसे घर में बीवियों से लड़कर आते हो यहां।' इन मामा जी को हम मसखरा मामा भी कहा करते थे। 'तुमने भी कुछ खाया कि नहीं, भानजे' पूछ रहे थे वह। 'नहीं मामा जी, यह सरकारी नाश्ता तो आपके लिए है। मैं बाहर जाकर कैंटीन में खा लूंगा कुछ।' मैंने कहा।

'अच्छा मेरी लात तो खा लेगा न यहां भी।'

मैं हतप्रभ। तभी मामाजी खिलखिला कर हंस पड़े। ऐसा हंसे कि उनके पीले चेहरे पर खून की लाली पूत गई हो जैसे। फिर बोले, 'याद है भांजे, कभी मैंने तुम्हारी और मोती की पूजा लातों से भी की थी।'

'ओह मामा जी कैसे भूल सकता हूं कि उस लात ने ही मुझे सिखाया था कि किसी दूसरे की टांग में अपनी टांग नहीं अड़ाया करते।'

'लेकिन तुम्हारे भाई मोती ने तो नहीं सीखा यह सबक।' वह फिर हंसे। पर इस बार उनकी हंसी कुछ-कुछ लाल-पीली थी।

हुआ यूं था कि एक बार मैं लड़कपन में गर्मी की कुछ छुट्टियां बिताने तावड़ू आया हुआ था। मामा जी दोपहर दुकान से आ खाना खा कर थोड़ी देर सुस्ताने लेट जाते और मोती तथा मुझे अपनी एक-एक टांग दबाने को सौंप देते। एक रोज बैठे हम अपनी-अपनी टांग दबा रहे थे कि हम दोनों में झगड़ा शुरू हो गया। मोती ने कहा, 'मेरी वाली टांग बढ़िया है।' मैंने कहा, 'नहीं मेरे वाली बढ़िया है।' मोती ने कहा, 'मेरे वाली ज्यादा हृष्ट-पुष्ट है।' मैंने कहा, 'नहीं मेरे वाली मोटी ताजी है।' बात बढ़ते बढ़ते इतनी बढ़ गई कि हम एक-दूसरे की टांगों के बाल नोचने लगे, फिर जब टांगों को दांतों से काटने की नौबत भी आ गई तो मामा ने गुस्से से लाल-पीला होते उठ कर दोनों को एक-एक लात जमा दी। लेकिन क्रम बदलते हुए यानी मोती वाली टांग मुझे और मेरी वाली टांग उसे। हम दोनों फर्श पर लुढ़क गए और रोने लगे। मामी ने ही आकर हमें उठाया और चुप कराया।

'पर अब मेरी टांगों में वो ताकत कहां रही - खून ही पानी बन गया जब।' वह फिजूल ही दूसरों के मामलों में अब भी टांग अड़ाता फिरता है। कभी लव जेहाद के नाम पर, कभी घर वापसी के बहाने से।' मामा ने ठंडी आह भरते हुए नाश्ते की

प्लेट परे खिसका दी।

तभी मैंने देखा कि दाढ़ी और फैज टोपी वाले दो ग्रामीण व्यक्ति एक बुजुर्ग मरीज को संभाले-पकड़े अंदर ला रहे थे। उनके आगे प्रधान नर्स थी और पीछे एक मुस्लिम युवती, जो काफी पढ़ी-लिखी लग रही थी। प्रधान नर्स इस नये मरीज को एक ऐसे बिस्तर की ओर ले गई, जिस पर एक रौबीला सा मोटा सा मध्यवर्गीय मुस्लिम मरीज अकेला लेटा था। उसके साथ बैठे बाहुबली से लगते एक सहायक ने साफ इंकार कर दिया। यह कहते हुए कि नए मरीज को किसी और मरीज के साथ जगह दी जाए। प्रधान नर्स खीज कर नए मरीज को मामा जी के बिस्तर पर ले आई, क्योंकि मामा जी काफी दुबले-पतले थे। नए मरीज के पीछे उसकी केस हिस्ट्री वाला बोर्ड भी मामा जी के बोर्ड के साथ टांग दिया गया।

मामा जी एक ओर सरक गए थे पर उनके मुख पर खिन्नता का कोई भाव नहीं था, अपितु एक स्वागती मुस्कान थी। 'आओ मियां जी, अब आप ही मेरे हम बिस्तर हो जाओ। मेरी बेगम तो सुबह मुझे छोड़ कर चली गई।' मामा जी यहां भी मजाक करने से न चूके थे। नया मरीज हंस कर शुक्रिया कहते हुए आराम से मामा जी के बगल में लेट गया। उसके साथ आए ग्रामीण व्यक्ति शीघ्र ही फल और दवाई की थैली देकर विदा हो गए, जबकि सिर तक अच्छी तरह से ढकी सुंदर सी वह युवती एक स्टूल खींच कर पार्श्व में बैठ गयी, सकुचाती सी।

बातचीत में पता चला कि नए मरीज का नाम रहमान है और साथ आई उसकी पोती का नाम जहीन। वह गुड़गांव के राजकीय कालेज में बी.ए. में पढ़ रही थी। दोस्ते बने दोनों हम-उम्र मरीज अब मेवाती-अलवरी लहजे में बातें करने लगे। 'जाओगो-खाओगो, पीओगो' वाली बोली में, जो मामा जी दुकान पर बैठे देहाती गाहकों से अक्सर बोला करते थे। यह भी मालूम पड़ा कि रहमान चाचा किस दुकान से कपड़ा खरीदते थे, वह मामा की थोक की दुकान से कपड़ा ले जाता था।

मामा जी की दुकान पर जर्री के सलमे-सितारों की कढ़ाई वाली ओढ़नियां भी खूब बिका करती थीं।

'फिर तो भाई साब यहां आना मेरे लिए घर वापसी है एक तरां की'

'हां रहमान भाई, हम एक तरफ के ही तो हैं, मेवात से।'

'पर आप तो पाकिस्तान से आकर बसे थे, यहां आपके मेवाती बोलने के लहजे से ऐसा लगता है।'

'हां ऐसा ही है रहमान भाई।'
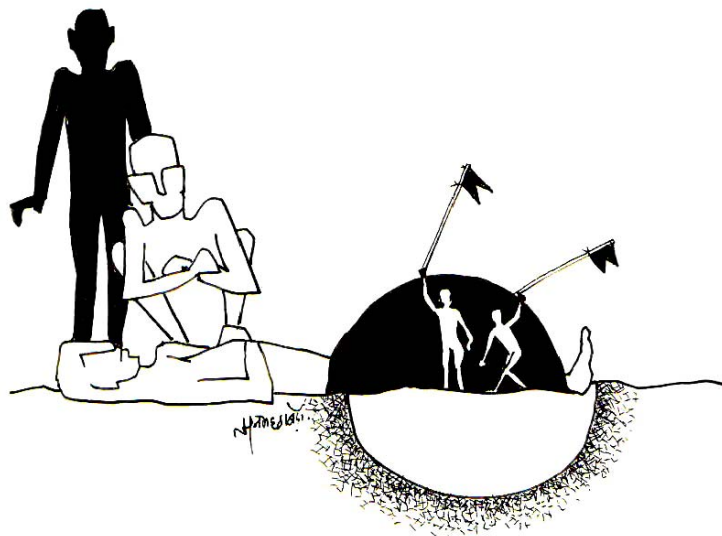
'फिर आपकी घर वापसी तो....' चुप रह गए रहमान चाचा।

'मैं तो चाहता हूं कि उड़कर देख आऊं अपना वो वतन/पर मेरा बेटा....' आगे मामा जी से भी न बोला गया।

'क्यों, क्या कहता है आपका बेटा?'

'कहता है...कहता है - मत याद करो अपने वतन को। वहां की मुल्तानी बोली भी मत बोलो मां के साथ घर में।' मामा का गला रूंध रहा था 'पर क्यों?'

'उसे पाकिस्तान के नाम से ही चिढ़ है। कई बार तो नफरत से मुझे भी पाकिस्तानी कह दिया करता है वह।'

'आप कुछ नहीं, कहते उस नामाकूल को?'

'जी तो करता है कि दो लातें जमा दूं, ... पर जवान बेटा है...'

'यानी कि आप घर वापसी के हक में हैं...'

'हां वतन के आधार पर, न कि मजहब के आधार पर।' चुप रह गए रहमान चाचा। फिर मुझे बोले, 'बेटा मुझे जरा पेशाब कराने ले जाओगे? अचानक प्रेशर बन गया है।'

'जब खून पानी बनने लगता है तो ऐसा प्रेशर भी बढ़ जाता है।' मामा जी कह रहे थे।

जाहिर था कि इस काम के लिए जहीन तो दादा को लेकर पुरुष प्रसाधन सुविधा की ओर न जा सकती थी। मैं जब रहमान चाचा के साथ वापिस आया तो मामा को फिर मजाक सूझा। बोले, 'अब तो मूत्रालय जाना भी घर वापसी जैसा लगता है। है न?'

'हां भाई। कहीं भी बार-बार जाओगो तो ऐसा ही होओगो।'

पास ही जहीन एक कोने में जाकर किसी से बात कर रही थी। हमारे आते ही उसने फोन बंद कर दिया, पर इतना जरूर सुन लिया मैंने, 'मैं फिर करूंगी बात कुंवर जी।' उसके चेहरे पर शर्म की लाली भी दौड़ गई थी। वह अपने स्टूल पर बेचैन सी आ बैठी।

अब दोनों बुजुर्गों ने बिस्तर पर अपनी दिशाएं बदल लीं। रहमान चाचा ने ही सुझाया था कि क्यों न एक ओर सिर रखने की बजाए पैताने-सिरहाने लेटा जाए। इससे दोनों को लेटने की तो सुविधा जरूर हुई किंतु बात करने की सुविधा न रही। वैसे भी दवाई के प्रभाव से या थकान से दोनों को नींद भी आ रही थी। दोनों अपना-अपना कंबल ओढ़े लेट गए। जहीन सेल फोन पर संदेशों के आदान-प्रदान में व्यस्त लग रही थी। थोड़ी देर में वार्ड के द्वार पर एक स्मार्ट सुंदर नौजवान आन खड़ा हुआ। वेशभूषा से वह सम्पन्न किसानी परिवार का लगता था। पढ़ा-लिखा भी। शायद वह

जहीन का सहपाठी था। उसे देखते ही जहीन शर्माती हुई सी उठ खड़ी हुई और 'अंकल मैं थोड़ी देर में आती हूं' कहती हुई वह युवक के साथ बाहर चली गई।

कहीं ये मामला लव जेहाद का तो नहीं, मैं बैठे-बैठे सोचने लगा। पर नहीं लव जेहाद की स्थिति तो तब बनती है जब लड़की हिन्दू हो और लड़का मुस्लिम। पर यहां तो स्थिति बिल्कुल विपरीत है, सोच कर मैं कुछ आश्वस्त हुआ। लेकिन तभी यह विचार भी आया कि राजधानी के इस इलाके में मुस्लिम आबादी भी काफी है। पास ही किसी मस्जिद से अजान की आवाज भी आ रही थी। तभी मैंने देखा कि रौबदार मुस्लिम मरीज का बाहुबली सहायक बाहों की मछलियां फड़काता हुआ तेजी से बाहर निकल गया था। हे भगवान दोनों प्रेमियों की रक्षा करना - मैंने दुआ मांगी। मैं सोच ही रहा था कि जहीन लौट कर आए तो मैं नाश्ता करने कैंटीन पर जाऊं कि तभी पीछे आहट हुई। देखा तो मोती लाल आया था। आओ मोती मैं उठ खड़ा हुआ। मेरे स्टूल पर वह बैठ गया, मैं सामने जा बैठा।

'पिता जी सो गए हैं?'

'हां, इंजेक्शन के नशे में है शायद।'

'लेकिन लगता है कि यहां दो मरीज पड़े हैं।' मोती बिस्तर पर ढकी पसरी चार टांगें देख रहा था। दो इधर दो उधर।

'हां मोती। बिस्तरों की कमी है न वार्ड में।'

'यह दूसरा कौन है?'

'मरीज ही है कोई'

'पर कौन? कहीं इन्फेक्शन हो गया तो....'

'तावडू के निकट पुन्हाना का है।'

'पिता जी किधर लेटे हैं? इधर या उधर?'

'पहचान सको तो खुद ही पहचान लो।' मैंने रूखा उत्तर दिया। लेकिन जिस शख्स ने कभी अपने पिता की दो टांगों में भी अपनी परायी का भेद किया था, वह पिता की कैसे पहचान करता।

'पिता जी, पिता जी।' उसने हल्के से आवाज दी। उत्तर में जिस मरीज ने कंबल से मुंह बाहर निकाला, उसके चेहरे पर तो दाढ़ी उगी थी। मोती को जैसे बिजली का झटका लगा।

'भाई साब ऐसे कैसे होने दिया आपने? पिता जी के साथ यह...'

अजय जोशी पानीपती की गजलें

1

दबी दबी सी लबों पर ये गुफ्तगू क्या है
जरा सा खुल के बता दो के आरजू क्या है

हमारी पीठ मे खंजर है जब रफीकों का
हमारी जिंदगी को हाजते अदू क्या है

रफूगरों मे उन्ही का शुमार होता है
जिन्हे खबर भी नहीं है कि ये रफू क्या है

ये तेरी जल्वा नुमाई है जर्रे जर्रे मे
जो तू नही है तो आखों के रुबरू क्या है

न जाने कितनो का टपका है खूं महौब्बत पर
वफा की राह मे जोशी तेरा लहू क्या है

2

सभी के वास्ते जामे विसाल रक्खा है
हमी को आपने वादे पे टाल रक्खा है

तुम अपनी चर्ब जुबानी पे नाज करते हो
तुम्हारे जैसों को खीसे मे डाल रक्खा है

तुम्हारे हिज्र मे हम कब के मर गए होते
तुम्हारी याद ने हमको सम्भाल रक्खा है

न जाने किसके मुक़द्दर मे आएगी मछ्ली
सभी ने जाल को दरिया मे डाल रक्खा है

तुम्हारे जैसा न गौहर कहीं मिला जोशी
ये दरिया क्या है सम्दर खंगाल रक्खा है

मो :

'कुछ दूसरे बिस्तरों पर भी तो दो-दो मरीज हैं, बड़े डाक्टर के हुक्म से...'

'धर्म भ्रष्ट कर दिया हमारा तो। जानते हो मेरे साथ मेरे दल के कुछ लोग भी आए हैं पिता जी का हाल पूछने। वे देखेंगे तो...'

'तो ले आओ उन्हें मामा जी से मिलवाने के लिए यहां।' तभी मामा जी ने भी अपना कंबल हटा फैंका।

'कहां हैं वे?'

'जलपान कर रहे हैं बाहर अस्पताल की कैंटीन पर।'

'तो बेटा जाओ और लाकर दिखाओ उन्हें वार्ड के कूड़ेदान में पड़ी खून से सनी पट्टियां और मवाद से सने फाहे। और कहो कि फर्क करें इनमें कि कौन किस धर्म की पट्टी है या फाहा है।'

मामा जी गुस्से में कांप रहे थे। मैंने उन्हें शांत करना चाहा। पर मामा जी फिर गरजे, 'मन करता है लातें मार-मारकर भगा दूं तुम्हें और तुम्हारे उन दोस्तों को, लेकिन मजबूर हूं, क्या करूं।'

इसी बीच रहमान चाचा भी उठ गए। बोले, 'चुप करो कुंदन भाई, गुस्सा मत करो बच्चों पर।' फिर मोती को संबोधित हो बोले, 'बेटा जैसे ही कोई बिस्तर खाली हुआ, मैं चला जाऊंगा।'

'कैसे नहीं होगा दूसरा बिस्तर खाली। आखिर हमारे सिंहासन पर बैठने का लाभ ही क्या। मैं देखता हूं जाकर।' दंभ से कहता हुआ मोती वार्ड से निकल गया। लेकिन काफी देर कोई कार्रवाई नहीं हुई, कोई बिस्तर खाली नहीं कराया गया। शायद डाक्टर लोग अपने धर्म के पक्के निकले। इसी बीच कुंदन मामा और रहमान चाचा गले मिलकर एक तरफ लेट गए। जहीन भी अपने स्थान पर आकर बैठ गयी, पर काफी परेशान लग रही थी।

मामा जी के कहने पर मैं नाश्ता करने कैंटीन पर गया तो पता चला कि थोड़ी देर पहले वहां मारपीट हुई थी। बाहर से आए कुछ लोगों ने एक मुस्लिम लड़की और हिन्दु नौजवान के इकट्ठे बैठने पर एतराज किया था। झगड़ा बढ़ने पर एक मुस्लिम पहलवान ने आकर दोनों को बचाया था और उन शरारती तत्वों से मारपीट कर बाद में वह पुलिस के डर से कहीं भाग गया था।

खिन्न अवस्था में मैं वार्ड में लौटा तो देखा कि बिस्तर पर दोनों बुजुर्ग मरीज नहीं थे। जहीन फोन पर कोई संदेश देखने में व्यस्त थी। पूछने पर उसने पुरुष प्रसाधन यानी वॉशरूम की ओर संकेत कर दिया और फोन पर झुक गई। फिर मैंने जो दृश्य देखा वो अविस्मरणीय था। दोनों बुजुर्ग एक-दूसरे का हाथ पकड़े बिस्तर की ओर बढ़ रहे थे। एक ने थोड़ी ठोकर खाई तो दूसरे ने संभाल लिया। दूसरे के हाथ से छड़ी छूट कर गिरी तो पहले ने उठाकर दे दी। दोनों प्रसन्नचित्त हो किसी लतीफे पर हंस रहे थे। मुझे लगा कि यही हमारा राष्ट्र देवता है, सहिष्णुता व सहयोग का प्रतीक दो मुंह वाला देवता।

94662-39164 प्रोफेसर कालोनी कैथल (हरि.)

••

कहानी

फेस बुक

गंगा राम राजी

उठते ही मोबाइल पकड़ने लगा हूं। पकड़ने क्या अपने आप ही हाथ मोबाइल पर चला जाता है ठीक उसी तरह से जैसे सिग्रेट के प्यक्कड़ का हाथ सिग्रेट की डिबिया पर चला जाता है और धीरे धीरे बाथ रूम जाने से पहले दो चार कश इधर उधर धुंआ न छोड़ा हो तो पेट भी साफ होने का नाम नहीं लेता। बस यही हालत मेरी मोबाइल के साथ होने लगी थी।

मेरी ही क्या यह बिमारी घर में प्रवेश कर गई है कि दो साल के पोते से लेकर बूढ़ों तक को आ घेर लिया है। सब इसी मोबाइल के बिमार हो गए हैं। मोबाइल के बिना सबके लिए दूभर हो गया है। यह बाजारवाद अपने पांव इस तरह से पसारने लगा है कि अब हर हिन्दोस्तानी इसके गिरफ्त में फंसता जा रहा है। सोचने लगा कि यह बीमारी कहां से आ गई जो अब सारे जहां को अपने में समेटने में लगी है।

मेरा ध्यान जब से फेस बुक के एक मैसेज पर आया तब से फेसबुक छूटती ही नहीं। क्या करें लोग भी अपनी पसंद का साथी तलाश करने में लगे रहते हैं। उनके सामने फेस बुक के अनगिनत लोग जो हैं फिर चाहे उन्हें ढूंढ कर अपने आगे खड़ा कर लेने में हरज भी क्या है।

दोपहर को लेटा ही था कि मोबाइल पर टन .... की मधुर ध्वनि मुखरित हुई। मेरा हाथ मोबाइल पर जा पड़ा। देखा कि एक सुंदर सी लड़की का चेहरा एक वृताकार में मुस्काने लगा मैंने मोबाइल झट से आंन किया।

'' हाय .. '' मोबाइल पर उभर कर आया।

'' हाय ... '' मेरी उंगलियां भी जल्दी से जबाब देने लगी। मेरे आगे एक सुंदर चेहरा था। वह भी कम उंम्र की हसीन लड़की का। चाह तो रहा था कि कुछ जबाब नहीं दूं परन्तु लगा कि लगे हाथ शरारत मैं भी कर लूं। जवानी एक दम से शरीर में हिलोरें मारने लगी।

'' कैसे हैं आप .... '' जल्दी से दूसरा प्रश्न मोबाइल की स्क्रीन पर उभर आया। मेरे से उठ बैठ होने लगी, और कई प्रकार की उत्सुकता, संदेह आदि मन में उठने लगे। कहीं लड़की को कुछ गलती तो नहीं हो रही है ? कैसे हो सकती है मेरे फेस बुक प्रोफाईल में तो मेरा फेटो मेरी पत्नी के साथ, मेरी आयु, मैं क्या करता हूं सब कुछ तो था ही फिर भी लगा कि लड़की शरारत पर तुली है मेरी उंगलिया जबाव देने में लग गई,

'' अरे ठीक हूं .... मुझे तुम्हारी चिंता हो रही है तुम कैसी हो .. ?''

बस फिर शुरू हो जाता है बातों का सिलसिला।

'' आप कहां रहते हैं ? आप क्या करते हैं ? आप अच्छे लगने लगे हैं। '' आदि आदि बातें होने लगी तो मेरी जिज्ञासा भी बढ़ने लगी। और सिलसिला ऐसा चला कि जैसे हम सदियों से एक दूसरे को जानते हैं , पहचानते हैं। बातें इतनी गहरी होने लगी कि जो आपस में ही सुन सकतें हैं दूसरों को नहीं सुना सकते। कहने का अर्थ बहुत आगे की होने लगी। अब तो यह नौबत आ गई कि देरी बरदाशत नहीं होती।

सोचने लगा कि मुझे क्या होने लगा है ? क्या कर रहा हूं। मैं अपनी पत्नी को बेहद प्यार करता हूं। जब यह बात मैंने उससे कह डाली तो, '' फिर क्या हुआ मुझे सब मालूम है ... पत्नी पत्नी होती है और मैं तो आपकी मित्र हूं। मेरा अपना स्थान है पत्नी का अपना स्थान हैं मैं पत्नी की जगह तो नहीं ले रही हूं। मैं तो आपसे केवल चैटिंग ही करती हूं जो मुझे अच्छी लगती है मैं तो कोई और काम आपसे नहीं कराती हूं। मुझे अपने ढंग से जीने दो। आप कोई भी उत्तर नहीं दो तो मैं तुम्हारे हर पोस्ट पर पहले की भांति टिप्पणी करती रहूंगी। मैं तो आज की राधा हूं ....आप कामक्रीडा अपनी पत्नी से करते रहो मुझे तो कुछ हरज नहीं, मैं तो प्रेम दिवानी मेरा दर्द न जाने कोए ...''

पता नहीं क्या क्या उसने लिख दिया। मैं पढ़ता रहा, बार-बार पढ़ता रहा। अच्छा भी लगने लगा था और साथ में धर्म संकट भी होने लगा था। मैं अपनी पत्नी से कुछ भी तो छुपाता ही नहीं था और उसके साथ कम-से-कम कभी झूठ तो बोला ही नहीं। कैसी अजीब सी स्थिति मेरे लिए उत्पन्न होने लगी थी वह भी इस उमर में जब एक पांव कब्र पर पड़ रहा हो।

सच कहें मुझे कुछ होने लगा सोचने लगा कि अगर इससे जो कुछ भी होने लगा है इसे ठीक रास्ते पर चलने को कहूं ,

'' देखो तुम्हारी उमर और मेरी उमर में तीन गुणा का अंतर है .... '' मैं डरने लगा था फिर भी अपना फर्ज समझ कुछ उपदेश देना चाहता था आगे लिखने ही लगा,

''आप एक अच्छा सा लड़का अपनी आयु का देख कर उससे अपना घर बसा लो .... ''

जवाब झट कट गया उधर से टाइप होने लगा मेरी उत्सुकता बढ़ने लगी , स्क्रीन पर टक टक की आवाज होने लगी मेरी आंखे उत्तर देखने के लिए आतुर होने लगी और .....

'' जानु उमर क्या प्यार की लक्ष्मण रेखाऐं निश्चित करती है ? आप को कोई ऐतराज हो तो मुझे कोई उत्तर मत दो मैं तो तुम्हें लिखती ही रहूंगी। मैं शरीर से तुम से नहीं जुड़ी हूं ... मैं राधा हूं .... तुम्हारी सारी पीड़ाओं का एहसास मुझे यहां बैठे बैठे हो जाता है। मैं जानती हूं तुम मेरे बारे क्या सोच रहे होते हो... '' और न जाने बहुत कुछ ....

बस फिर क्या था मेरा धर्म संकट और गहरा गया। दोनों ओर उलझन होने लगी। एकांतवास होने लगा , खोया-खोया से रहने लगा .... ।

सब बातें समझ से बाहर। फिर वह भी ऑफ हो जाती और इधर लग जाता कब ऑन लाइन वह आ जाए। कई तरह के नोट भी देता रहता .... आ आ जा ... आदि।

एकांत मिलते ही ध्यान जाता कि मुझे क्या हो गया है किस चक्कर में फंस

गया हूं। जवानी में नहीं फंसा तो इस उमर में क्या होने लगा है। सामने वाली लड़की भी तो गलत नहीं हो सकती उसने आगे बढ़ने से पहले सारा प्रोफाइल छान मारा होगा। और मैं तभी ही फेसबुक खोल कर बैठ जाता हूं। अरे सच में उसने मेरे सारी पोस्टिंग पर अपने कमेंट और लाइक किया है। कई जगह तो उसने प्यार का स्टिकर डाला है। अरे मैंने तो ध्यान से आज तक देखा भी नहीं था।

बस उसी समय वह ऑनलाइन आ गई। मैं खुश हुआ सोचने लगा कुछ पूछूं अरे तभी उसकी ओर से कुछ टाइप होने लगा आवाज आने लगी जैसे पानी की बूंदें पानी में ही गिर रही हों और देखते-ही-देखते एक अर्धनग्न उसकी मुस्काते हुए की तस्वीर ...मैं तो जैसे पागल होने लगा क्यों मैं उसके बारे में सोचने लगा था वह तो मुझ से धोखा नहीं कर सकती सोचने लगा कि उसे अपने बारे में एक नोट लिख ही डालूं ,उसे एक बार फिर याद दिला लूं ,

''मैं एक शादी शुदा इनसान जो दादा बना हूं पोतों वाला हूं ... अपनी पत्नी से बेहद प्यार करता हूं .... ''

तभी झट से उधर से उत्तर आता है , '' मैं तुम से प्यार करती हूं तुम्हारे नाम से सांस भरती हूं तुम्हें सब कुछ दे चुकी हूं सब चीजें अपनी अपनी जगह अलग हैं , मुझे आपकी पत्नी से भी प्यार है तुम से भी प्यार है तुम्हारे रोम रोम से प्यार है ...।''

अरे मर गया। क्या करूं? कई प्रश्न आने लगे परन्तु उतना ही झुकाव भी होने लगा। मेरा काम जागृत होने लगा। दूर से ही ललकार भरने लगा। न जाने मुझे क्या सूझी, शाम को अपने बाल रंग दिए। काले बालों को देख मैं स्वयं अपने को देख हैरान हो गया। तभी मेरी नजर पत्नी के आई ब्रो पैंसिल पर पड़ी। झट से उठा ली और मूंछों वाले स्थान पर थोड़ी-थोड़ी रेखाएं इस तरह से मारी कि मूंछों के बाल तो काले ही हैं लेकिन काट लिए गए है। क्या रंग दारी हो गई। फिल्मी दुनियां के मेकअप से भी बढ़कर एक नया चरित्र उभर कर सामने आ गया।

बस क्या कहना एक जवानी झलकने लगी। मैं अपने को जवान समझने लगा। बार-बार अपने को आईने में डुबकी मारने लगा।

कमरे में प्रवेश करते ही पत्नी की नजर जब मेरे पर पड़ी तो वह देखती ही रह गई।

''अरे क्या ... तुम ही हो?'' और वह मेरी जवानी को देख वह भी जवान हो गई। बस फिर क्या था मेरी ओंठो के ऊपर की आई ब्रो पैंसिल की रेखाएं सब मिट गईं थीं। मुझे तो तब पता चला जब पत्नी ने पूछा,'' महाराज एक ही फेरे में मूंछों की जवानी ...'' और वह आगे कुछ न बोल पाई क्योंकि वह जोर से हंसी ही जा रही थी और कमरे से बाहर हंसते हुए चली भी गई।

'कितने स्पष्ट हृदय के अंदर से निकली हुई और कपट से रहित हंसी ... छल कपट का नाम निशान नहीं ... केवल
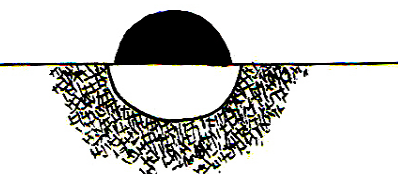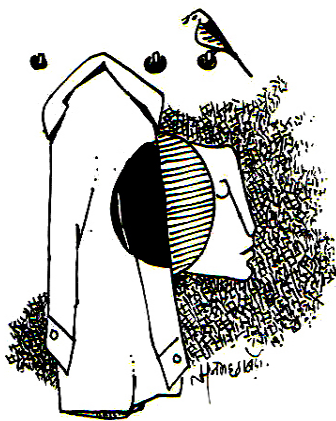
प्यार ही प्यार और पूर्ण रूप से आत्म समर्पित ... अरे मैं तो अपनी इस प्रिय से छल कपट पर उतरने लगा हूं। अरे क्या होता जा रहा है मुझे मैं तो कभी ऐसा नहीं था। जवानी में एक पत्नीव्रत धर्म निभाने वाला ही रहा अब जब कुछ शरीर में नहीं बचा है तो क्या होता जा रहा है ... चढ़ी जवानी बुड्ढे नूं .. '

''चलो पहलवान जी खाना खा लो ...'' आवाज आई मैं अपने को गुनाहगार समझने लगा। अभी खड़ा ही था कि पोता मुझे लेने आ गया, '' दादू ... चलो न यार'' और वह मेरा हाथ पकड़ कर ले चला।

'इस मेनका ने मेरे विश्वामित्र का सेक्स जागृत कर दिया है। इस मेनका को किस इंद्र ने मेरे पीछे लगा दिया है यह इंद्र मेरे से क्या चाहता है ? क्योंकि इतना जानते हुए भी मेरा मन मान ही नहीं रहा था। चलो एक बार इस लड़की से मिलना ही चाहिए उसे समझाना चाहिए कि मैं उसके काबिल तो नहीं हूं कहीं और जगह पर ही उसे घंटी बजानी चाहिए।

सब तय हुआ था कि वह गरीब रथ से आ रही है मैं उसे रेलवे स्टेशन पर ही मिलूंगा चल पड़ा। शेव की, सेंट कभी लगाया नहीं, खूब छिड़काव किया, चारों ओर सुगंध से वातावरण ही बदल गया, बढ़िया सा सूट निकाला अपने चेहरे को बार-बार आईने में निहारा, बचे हुए बालों पर एक बार हाथ फेरा, अपने दांतों के जाली जबड़े को मुंह में ही दबा कर परखा की काम के हैं भी या ... ऑनलाइन थ्री स्टार होटल का कमरा बुक और लगा कि सब ठीक है तो सेहरा बांधे चल पड़ा।

संपर्क में था गरीब रथ ट्रेन थ्री ए सी कंपार्टमैंट सीट नम्बर दस। रात बारह बजे ट्रेन के पहुंचने का समय। मैं पहले ही स्टेशन पहुंच गया भीड़ थी चहल पहल थी। मैं किसी को भी नहीं देख रहा था। बार-बार घड़ी देखता। कुली से पूछता ,

''भाई गरीब रथ का थ्री ए सी यहीं पर रूकता है .. ?''

'' यहीं पर रुकता है यह देख बाबा ऊपर बोर्ड भी लगा है ... '' बोलता हुआ कुली चला तो गया पर मेरे को एक बार जोर से तमाचा मार कर अदृश्य हो गया।'बाबा' शब्द ने मेरी जवानी की जमीन को हिला दिया था। मेरी टांगे लड़खड़ाने लगी, मैं एक किनारे खडा नहीं हो पा रहा था पास की बैंच पर बैठ कर टाइम देखने लगा।

कई ट्रेन सीट्टी बजाती आती गई सवारियां उतरती चढ़तीं गई, लगा कि मैं पहले ही आ गया था। किसी भी ट्रेन की सीट्टी बजते ही मैं उठ जाता देखने लगता कि कहीं गरीब रथ तो नहीं। यह मालूम भी था कि भारत की ट्रेन इन टाइम हो सकती है देरी से तो रहती ही हैं परन्तु बिफोर टाइम नहीं हो सकती ...

और ट्रेन गरीब रथ समय पर पहुंच गई। मैं थ्री ए सी के सामने ही खड़ा हूं। मैं सवारियों के उतरने का इंतजार नहीं करता हूं। लाल रंग की वर्दी पहने कुलियों के साथ मैं ट्रेन पर चढ़ने लगता हूं कि उतरने वाली सवारी के धक्के से नीचे गिरने से पहले ही संभल गया और हिम्मत कर अपने

को संभालते हुए ट्रेन में चढ़ ही जाता हूं, दस नम्बर की सीट के पास जाता हूं। मैं बार-बार सीट नम्बर पढ़ने की कोशिश कर रहा हूं सामने दस नम्बर ही लिखा है, अपनी ऐनक को उतार कर लैंस साफ करता हूं फिर नम्बर पढ़ता हूं, दस नम्बर सीट के पास बैठी एक बूढ़ी सी औरत अपने सामान को समेटे जा रही है। मेरे से रहा नहीं गया मेरी आयु की मोहतरमा से मैंने पूछना चाहा तभी मेरी आयु का ही एक सज्जन उससे कुछ पूछ रहा था मैं यह जान कर कि यह शायद उनके साथ ही हो सुनने लगा,

'' मोहतरमा आप, ... इस सीट पर तो जयपुर से एक लड़की ने आना था ?''

औरत ने एक नजर उस पर डाली और अपने सामान को इकठ्ठा करने में बाधा पड़ने से झल्ला कर बोली,

''एक ओर हो जा इस सीट पर तो मैं मुम्बई से आ रही हूं ... किस लड़की के चक्कर में हो अब तो सब्र करो ... '' एक चुटकी लेते वह अपने सामान को इकट्ठा करने लग गई ।

मैं चुप हो गया था मेरा काम तो इस सज्जन ने ही कर लिया था। मैं दो चार कंपारटमेंट के दस नम्बर की सीट पर देखने तेजी से भागा, दस नम्बर की सीट पर मुझे कोई हसीना नहीं दिखाई दी ... मैं बाहर की ओर सभी सवारियों को देखने लगा हूं फेसबुक की सुन्दरी मुझे कहीं नहीं दिखाई दी।

तभी किसी ने मेरे कंधे पर हाथ रखा मैं पीछे मुड़ कर देखता हूं यह तो वही आदमी है जो अभी दस नम्बर की सीट पर मोहतरमा से बात कर रहा था।

''आपने इस लड़की को तो नहीं देखा? '' वह अपने मोबाइल पर एक फोटो दिखाकर मेरे से पूछ रहा था। फोटो देख मैं कभी फोटो को कभी उस आदमी को देखने लगा। कई प्रश्न एकदम से दिमाग में उछलने लगे। वह मेरी ओर हैरानी से देखने लगा। मैं मुस्काने के साथ जोर से हंसने लगा और आगे की ओर बढ़ने से पहले मेरे मुंह से निकल ही पड़ा,

'' चढ़ी जवानी बुढ्ढे नूं .... ''

और बुक कराए होटल की ओर अपने पर हंसता, झल्लाता हुआ स्टेशन से बाहर की ओर चल पड़ा।

सम्पर्क : 9418001224

●●

देव निरंजन की गजलें

1

ये नादान दिल इतनी आफ़त में क्यूँ है,
अभी तक ये तेरी मुहब्बत में क्यूँ है

ख़फ़ा होने वाले तुझे क्या हुआ है,
ये नर्मी सी तेरी शिकायत में क्यूँ है

न जाने क्या डर है खुले आसमां से,
परिंदा कफ़स की हिफाज़त में क्यूँ है

अभी तक उसूलों पे कायम हूँ अपने,
ये सारा ज़माना यूँ हैरत में क्यूँ है

लकीरें अधूरी हैं हाथों में सबके,
कमी कुछ न कुछ सबकी किस्मत में क्यूँ है

तू मोमिन है तो फिर क्यूँ घबरा रहा है,
तू काफिर है तो इतनी ग़फ़लत में क्यूँ है

शरीफों ने ये पूछा है मेरी जां से,
कि तू इस निरंजन की सोहबत में क्यूँ है

2

सफ़र के मुताबिक़ हवा हो न जाए,
कहीं मेरे हक़ में ख़ुदा हो न जाए

मुझे मंज़िलों की ज़रूरत नहीं अब,
कि आसान अब रास्ता हो न जाए

बहुत छटपटाई है चिड़िया कफ़स में,
तेरी याद दिल से रिहा हो न जाए

कि रिश्ते निभाना भी खुद में हुनर है,
कहीं कोई मुझसे खफा हो न जाए

चलो एक दूजे को दिल में छुपा लें,
किसी को हमारा पता हो न जाए

मैं मर जाऊं ना ज़िन्दगी की बदौलत,
वो नज़दीक आकर जुदा हो न जाए

वो बरसात में भीगी छत पे खड़ी है,
मुझे इश्क फिर से नया हो न जाए

यूँ हर रोज़ मुझसे न बातें किया कर,
कहीं तुझको मेरा नशा हो न जाए

कि मगरूरियत उसके सर चढ़ गई है,
वो पत्थर कहीं देवता हो न जाए

'निरंजन' बहुत डर रहे हैं शजर ये,
कहीं साया कद से बड़ा हो न जाए

मो- 09300829802

कहानी

प्राण प्रतिष्ठा

उदय कुमार

आज हरखू मिस्त्री सुबह-सवेरे चार बजे ही जाग नहा-धोकर, बेटे के ब्याह में समधियाने से भेंट में मिला सफेद लट्ठे का कुरता, पायजामा पहिन, सिर में ढेर सारा सरसों का तेल चुपड तथा हथेलियों पर बचा तेल हाथ-पांव पर मल तैयार बैठा था। उकडू बैठ छोटे से आईने में झांक कर कैंची से मूँछे काटता तथा जोर-जोर से कबीर के पद गाता हरखू सचमुच बंदर सा लग रहा था। आज उसका मन बहुत खुश था। आज गांव के नये मंदिर में श्री राम भगवान की मूर्ति की प्राण-प्रतिष्ठा जो होनी है। गांव के मंदिर के निर्माण कार्य में मुख्य मिस्त्री की भूमिका हरखू मिस्त्री ने ही निभायी है। मंदिर की एक-एक ईंट हरखू के हाथ की ही लगी हुई है, चबूतरे से लेकर कंगूरे तक। मई-जून की भयानक तपती दोपहर की धूंप में कबीर के पद गाता हुआ हरखू जब मंदिर के कंगूरे पर चढ कर काम करता तो, उसे लगता कि वह भगवान राम की सेना का कोई सैनिक है, तथा रावण की लँका धवस्त करने हेतु सेतु निर्माण का कार्य कर रहा है। हरखू मिस्त्री ने अपने जीवन में अनेको मकान, दुकान, भवन बनाये थे। मगर जहां और निर्माण कार्य वह 'जिविका-उपार्जन' के लिये करता रहा था, वहीं मंदिर निर्माण कार्य में वह भावनात्मक रूप से जुड गया था। यह कार्य उसने प्रभु की सेवा समझ कर किया था। इस कार्य के लिए मंदिर समिति के कहने पर उसने मजदूरी के 200 रूपये दैनिक में से 50 रूपये प्रभू के नाम के घटा कर मात्र 150 रूपये दैनिक पर कार्य करना मंजूर किया था। तथा करीब-करीब प्रति-दिन ही दिहाड़ी के आठ घंटो के अलावा एक-डेढ घंटे फालतू भी काम करा था। और उस फालतू काम का कोई ओवर-टाईम भी उसने नही लिया। आज भी मंदिर समिति की ओर हरखू के 1800 रूपये शेष निकलते हैं। आज उसी मंदिर में प्राण-प्रतिष्ठा का समारोह है। इसलिए हरखू का खुश होना स्वाभाविक ही है। हरखू ने एक पीतल की थाली खूब रगड़-रगड़ मांज कर चमकायी और उसमें कल शाम दुकान से खरीद कर लाया गया प्रसाद, धूप, नारियल इत्यादि बड़े जतन से सजा,वह तेज-तेज कदमों से मंदिर की ओर चल दिया। मंदिर गांव के दूसरे छोर पर था। वहां तक पहुंचते-पहुंचते हरखू को सात बज गये। मंदिर रंग-बिरंगी कागज की झंडियों व आम के पत्तों की बंदनवार से सजा अति चित्ताकर्षक लग रहा था। मंदिर में लाउड-स्पीकर से मंत्र पाठ की मधुर ध्वनि गूंज रही थी। मंदिर समिति के लोग भाग-दौड, प्रबंध में लगे थे, मंदिर के प्रांगण में भट्टी पर हलवाई प्रसाद तैयार करने में लगे थे, जिसकी सौंधी-सौंधी गंध मन को हर लेने वाली थी। मंदिर के अंदर पंडित जी तथा गांव के कुछ गण-मान्य लोग मंत्र पाठ कर विधिवत प्राण-प्रतिष्ठा का कार्य कर रहे थे। मंदिर के बाहर लोग प्रसाद के थाल सजाए प्राण-प्रतिष्ठा का कार्य पूरा होने की प्रतीक्षा कर रहे थे। कुछ बच्चे मंदिर के बाहर धमा-चौकड़ी मचा रहे थे, तथा कुछ एक-दूसरे के कंधों पर हाथ धरे खड़े प्रसाद बनने की कार्यवाही को ध्यान-पूर्वक देख, व प्रसाद की मधुर गंध का रसास्वादन कर रहे थे। हरखू प्रांगण के बाहर गेट पर खड़ा हो गया। हरखू को पूर्ण उम्मीद थी कि मंदिर समिति के लोग मंदिर निर्माण में उसके योगदान को देखते हुऐ, अवश्य थोड़ा-बहुत उसका सम्मान करेंगे। वो आते-जाते समिति के हर सदस्य को नमस्कार कर उनका ध्यान आकर्षित करने की नाकाम कोशिश कर रहा था। मगर शायद इस आपा-धापी में किसी का ध्यान हरखू की ओर नही जा रहा था, या फिर वे लोग जान-बूझ कर उसे अनदेखा कर रहे थे। उन लोगों का उपेक्षा पूर्ण व्यवहार हरखू को अच्छा नही लगा। हरखू तो सोच रहा था कि आम-दिनों की भांति ही मंदिर समिति के लोग उसके कार्य तथा मंदिर निर्माण में उसके योगदान की प्रशंसा करेंगे।

खैर फिलहाल उन लोगों की इस अनदेखी का दोष उनकी अति-व्यस्तता के सिर मढ हरखू ने संतोष करा और प्राण-प्रतिष्ठा का कार्य समाप्त होने की प्रतीक्षा करने लगा। कुछ समय पश्चात प्राण-प्रतिष्ठा का कार्य समाप्त कर पंडित जी तथा अन्य लोग मंदिर से बाहर आ गये। आम जन जो बाहर प्रसाद लिए खड़े थे भगवान की मूर्ति के दर्शन करने तथा प्रसाद चढाने के लिए अंदर की ओर उमड़ पड़े। उन्हीं सब के साथ-साथ हरखू भी अपनी प्रसाद की थाली लिए भीतर की ओर बढा। अभी हरखू मंदिर के द्वार के भीतर घुसने ही वाला था, कि जिन मंदिर समिति वालों का ध्यान हरखू की लाख कोशिशों के बाद भी उसकी ओर आकर्षित नहीं हो रहा था, उन्हीं लोगों का ध्यान अनायास ही ना जाने कैसे हरखू की ओर चला गया। उनमे से चार-पांच लोग

तेजी से उसकी ओर लपके तथा उसकी बांह पकड़ उसे धकियाते हुऐ मंदिर के प्रांगण से बाहर घसीट लाये। द्वार के बाहर घसीट कर उन लोगों ने उसे धक्का देकर जमीन पर गिरा दिया। उसका प्रसाद बिखर गया, उसका कुरता फट गया। हरखू हैरान था। वे लोग उसे भद्दी-भद्दी गालियां देते हुए कहने लगे 'साला अछूत, मंदिर में घुसा जाता है, पहले दिन ही मंदिर अपवित्र कर डालता'। हरखू को गिरने पर ज्यादा चोट तो नही लगी मगर घुटने और कुहनियां छिल गयी। वह धीरे से उठ कर बैठ गया। उन लोगों का अप्रत्याशित व्यवहार उसकी समझ से बाहर था। कल तक वह इसी मंदिर के कंगूरे पर चढा काम करता था। मंदिर के कंगूरे प्रांगण, चबूतरे, गर्भ-गृह, कहां-कहां उसके पैर नही पड़े? मंदिर के कण-कण में उसका पसीना समाहित था। कल तक वह और मंदिर एकाकर थे, वह मूर्ख खुद को मंदिर से अलग कर नही देख पा रहा था। भला कल तक वह मंदिर में बेरोक-टोक घूमता काम करता था, तब तो मंदिर अपवित्र नही हुआ। तब तो यह लोग कुछ नही बोले और उल्टा उसकी प्रशंसा करते रहे, तथा उसके त्याग और योगदान की सराहना भी। आज अचानक मंदिर में मूर्ति स्थापित हो जाने पर ये सब उल्टा-पुल्टा क्यों हो रहा है, हरखू सोच रहा था, वह मूर्ख शास्त्रों की बातें भला क्या जाने। क्या भगवान के मन्दिर में स्थापित हो जाने से वह इंसान नही रहा। हरखू दो घडी धूल में बैठा सिर को हाथों से पकड़े सोचता रहा। मंदिर समिति के लोग उसे धकिया कर बुड़बुड़ाते हुए मंदिर में लौट गये। हरखू के चारों ओर उसे उसे घेरे खड़े बच्चे कौतुक से सारा तमाशा देख रहे थे। अचानक हरखू झटके से उठा तथा उसने एक हिकारत भरी नजर उन सभी लोगों तथा मंदिर पर डाली। अपनी थाली उठा उसमें अपना गिर चुका प्रसाद, नारियल आदि चुन कर रखा, तथा रोषपूर्ण मुद्रा में बुड़बुड़ाता हुआ तेज-तेज कदमों से अपने घर की ओर लौट पड़ा। घर पहुंच कर हरखू ने ओसारे में रखी चक्की को बड़े जतन से झाड़ा-पोंछा तथा श्रद्धापूर्वक दंडवत प्रणाम कर जोर से जयकारा लगाया 'जय चक्की माता की' तथा जयकारे के साथ ही चक्की के पत्थर पर पटक कर नारियल फोड़ डाला। उसकी आवाज सुन हरखू के दोनों लडके व उनकी बहुएं तथा उसकी पत्नी भी ओसारे में आ गयीं, तथा सभी आश्चर्य से उसको देखने लगे। हरखू ने बडी श्रद्धा के साथ चक्की पर धूल से सना फूल-प्रसाद चढाया। हरखू एक टांग घुटने से मोड़ दूसरी टांग पर सीधा खड़ा हो गया। किसी महान ज्ञानी विद्वान की भांति, कुछ ऐसे भाव चेहरे पर लाकर, मानो उसे आज ब्रह्म-ज्ञान की प्राप्ति हुई हो हरखू जोर से बोला 'हे चक्की माता मैं मूर्ख क्यूं उस मंदिर की मूर्ति के फेर में पड़ कर व्यर्थ अपना अपमान करा बैठा, वह मूर्ति भी पत्थर की बनी है और तू भी पत्थर की बनी है, यदि उसमें भगवान का बास हो सकता है तो तुझ में क्यों नहीं, हे चक्की माता तेरा पिसा अनाज खाकर ही आज मेरे तन में प्राण हैं, आज से तू ही मेरा भगवान है'। हरखू के चेहरे पर इस समय परम संतोष और आनंद के भाव थे। उसने गर्व से अपने पूरे परिवार की ओर मुस्करा कर देखा, तथा एक बार फिर जोर से जयकारा लगाया 'बोलो जय चक्की माता की'। हतप्रभ से खड़े उसके पूरे परिवार ने भी उसके पीछे-पीछे जयकारा दुहराया 'जय चक्की माता की' तथा पूरी दलित बस्ती जयकारे से गूंज उठी।

सम्पर्क : 9729027699

●●

साहित्य में ऊंचे विचारों की आवश्यकता

प्रेम चंद

रूस में हाल में साहित्यकारों में एक बड़े मजे की बहस छिड़ी थी। विषय था-साहित्य का उद्देश्य क्या है ? लोग अपनी-अपनी गा रहे थे। कोई कहता था-साहित्य सत्य की खोज का नाम है। कोई साहित्य को सुंदर की खोज कहता था। कोई कहता था-वह जीवन की आलोचना है। कोई उसे जीवन का चित्रण मात्र बतलाता था। आखिर जब यह झगड़ा तय न हुआ तो सलाह हुई कि किसी गंवार से पूछा जाए कि वह साहित्य को क्या समझता है। आखिर यह जत्था मजदूर की खोज से निकला। दूर न जाना पड़ा। चंद ही कदमों पर मजदूर कंधे पर फावड़ा रखे पसीने में तर आता हुआ दिखाई दिया। एक साहित्य-महारथी ने उससे पूछा-क्यों भाई, तुम साहित्य, तुम साहित्य किसलिए पढ़ते हो ? मजदूर ने उन विद्वज्जनों की ओर विस्मय की दृष्टि से देखा। ऐसी मोटी-सी बात भी इन लोगों को नहीं मालूम। देखने में तो सभी पढ़े-लिखे से लगते हैं। समझा, शायद ये लोग उसका मजाक उड़ा रहे हैं। बिना कुछ जवाब दिए आगे बढ़ा। तुरंत फिर वही प्रश्न हुआ-क्यों भाई, तुम साहित्य किसलिए पढ़ते हो ?

मजदूर ने अबकी कुछ जवाब देना आवश्यक समझा। कहीं ये लोग उसकी परीक्षा न ले रहे हों। तैयार छात्र की भांति तत्परता से बोला-जीवन की सच्ची विधि जानने के लिए। इस उत्तर ने विवाद को समाप्त कर दिया। साहित्य का उद्देश्य जीवन के आदर्श को उपस्थित करना है, जिसे पढ़कर हम जीवन में कदम-कदम पर आने वाली कठिनाइयों का सामना कर सकें। अगर साहित्य से जीवन का सही रास्ता न मिले, तो ऐसे साहित्य से लाभ ही क्या, जीवन की आलोचना कीजिए-चाहे चित्र खींचिए, आर्ट के लिए लिखिए चाहे ईश्वर के लिए, मनोरहस्य दिखाइए, चाहे विश्वव्यापी सत्य की तलाश कीजिए-अगर उससे हमें जीवन का सच्चा मार्ग नहीं मिलता, तो उस रचना से हमारा कोई फायदा नहीं। साहित्य न चित्रण का नाम है, न अच्छे शब्दों को चुनकर सजा देने का, न अलंकारों से वाणी को शोभायमान बना देने का। ऊंचे और पवित्र विचार ही साहित्य की जान हैं।

सम्पादकीय। 'हंस' फरवरी 1935 में प्रकाशित

अफ्रीकी कहानी

लड़की जो कर सकती है

अमा अता आयडू, अनु.- विपुला

उनका कहना है कि मेरा जन्म घाना के मध्यभाग में स्थित एक बड़े गांव हसोडजी में हुआ। वे ऐसा भी कहते हैं कि जब सारा अफ्रीका सूखा-ग्रस्त था, तो हमारा गांव उपजाऊ माने जाने वाले राज्य की उपजाऊ तलहटी में बसा था। इसलिए मैं जब खाने में से कुछ जूठन छोड़ देती थी तो मेरी नानी कहती कि एडजोआ तुम जिंदगी के बारे में क्या जानो। तुम जिंदगी की कठिनाइयों के बारे में कुछ नहीं जानती।

जहां तक मुझे याद है कि नानी और मां जिसे कठिनाई मानती थी उससे इसका कोई संबंध नहीं था। वे कहती हैं कि मैं सात साल की हूं। मेरे सामने कठिनाई यह है कि मैं सात साल की इस उम्र में कुछ बातों को सोच तो सकती हूं, लेकिन उनको सटीक शब्दों में बयान करना मेरे लिए एक समस्या है। यह निर्णय करना बड़ा मुश्किल है कि दिमाग में आने वाली बातों पर चुप्पी साध ली जाए या फिर उनको कहकर अपना मजाक बनवाया जाए। जब कोई गंभीर बात कहने का जोखिम उठाने का निश्चय करे तो कोई व्यक्ति उसे सुनना भी चाहेगा?

मुझे नानी को अपनी बात बताने के लिए एक लंबा संघर्ष करना पड़ता। उनका ध्यान आकर्षित करने और उन्हें अपनी बात समझाने के लिए बहुत समय लगता। उनका ध्यान आकर्षित करने में कामयाब हो जाती तो पता है क्या होता था। वह जो काम कर रही होती उसे एकदम छोड़ देती और अपना मुंह बाए मेरी ओर एकटक देखती रहती।

अपना सिर एक ओर टेढ़ा करके अपना कान मेरी ओर करके वह कहती एडजोआ तुम क्या कह रही हो। मैं अपने कहे को फिर से दोहराती। फिर नानी उसी लहजे में मैं कहती कभी नहीं, कभी नहीं। इसे फिर कभी ना कहना। या फिर वह खिलखिलाते हुए इतना जोर से हंसने लगती कि उनके आंसू निकलकर गालों पर बहने लगते। अपने पल्लू से आंसू पोंछती और तब तक हंसती रहती, जब तक पूर्णत: थक न जाती। यदि कोई उस समय वहां आ जाता तो मेरे कही बात को दोहराती। तब वह बुजुर्ग भी उनके साथ खिलाखिलाकर हंसने लगता। कई बार तो यह सिलसिला चलता रहता और तीन-चार या इससे भी अधिक लोग खिलखिलाकर हंसने वाले हो जाते। यह सब क्या मेरे कुछ भी कहने मात्र से हो जाता मैं इसे आसानी से समझ नहीं पाती थी। किसी ने मुझे इसका कोई कारण नहीं बताया कि मुझे कुछ बातों को दोबारा क्यों नहीं कहना चाहिए। कई बार मेरी कही हुई सही बातों को मजाक समझकर लोगों के मनोरंजन के लिए बार-बार क्यों दोहराया जाता है। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि इस तरह का रवैया अपने विचारों को प्रकट करने के लिए मुझे किस तरह से निरुत्साहित करता।

मैं अपनी मां व नानी को अपनी टांगों के बारे में भी कहना चाहती थी कि चिंता की कोई बात नहीं है। मैं नहीं चाहती थी कि मेरी टांगें मेरे सबसे प्रिय दो लोगों के बीच विवाद का विषय बनें। अब मुझे पूरा विश्वास है कि जब मैं मां के गर्भ से इस शोर-शराबे वाली दुनिया में पैदा हुई थी तभी से मेरी टांगे लगातार उनकी चर्चा का विषय रही होंगी।

नानी चिंतातुर स्वर में कहती - काया, भगवान का शुक्रिया। तुम्हारी पहली संतान बेटी है, लेकिन मैं उसकी टांगों के बारे में आश्वस्त नही हूं।

मां कहती - मां तुम हमेशा एडजोया की टांगों के बारे में क्यों शिकायत करती हो। यदि मुझसे पूछो तो

नानी एक खास लहजे में डांटते हुए कहती - मैं तुमसे पूछ नहीं रही हूं वे पतली हैं

मेरी मां साहस बटोरकर जबाव देती - कुछ लोगों की तो टांगे होती ही नहीं

नानी जोर देकर कहती पर एडजोया की टांगें हैं, लेकिन बहुत पतली और औरतों के लिए बहुत लंबी भी। मां चुपचाप सुनती रहती। कभी-कभी प्रकृति किसी-किसी बच्चे को बिना टांगों-बाहों के पैदा करती है जो दुखद है। लेकिन इसके बारे में बात नहीं करनी चाहिए। लेकिन किसी लड़की टांगें हैं तो वे टांगें लड़कियों जैसी हों।

कैसी टांगों के साथ। मैं जानती हूं इस क्षण मेरी मां अंदर से रो पड़ती। लेकिन नानी मेरी मां के इस क्रंदन को महसूस ना कर पाती। यदि नानी सुन भी लेती और कहना बंद कर देती तो मेरे लिए यह अचरज की बात होती। मेरी टांगों के बारे में पूर्वाग्रह के अलावा मेरी नानी के विचार अच्छे थे। मैं अच्छे या बुरे व्यक्तियों के बारे में क्या जानूं। नानी अच्छी व्यक्ति कैसे हो सकती हैं जब मेरी टांगों के बारे में इतना कुछ कहती हैं। इस बात के अलावा नानी को मैं बहुत पसंद करती थी।

नानी कहती, यदि कोई औरत इस दुनिया में दो टांगों के साथ पैदा होती है। तो उसकी टांगे हृष्ट-पुष्ट पिंडलियों वाली व मांसल हों जो नितंबों को सहारा दे सकती हों। औरत के नितंब मजबूत हों ताकि वह बच्चे पैदा कर सके।

मेरी मां शांतचित से कहती - ओह मां। और इसतरह यह चर्चा समाप्त हो जाती और बातचीत किसी ओर विषय पर शुरु हो जाती।

कई बार नानी मेरे पिता के बारे में बोलने लगती। कि उस आदमी को देखो और स्वीकार करती कि सब भगवान के बच्चे हैं...इकलौती लड़की ने उस आदमी से विवाह करने की जिद्द की। भगवान का धन्यवाद। समस्या तो उसके बाद हुई जब दुबली-पतली व लंबी टांगों वाली ऐसी दोहती का जन्म हुआ जिसकी टांगें किसी काम नहीं आ सकती।

मेरे पिता के बारे में बोलती थी तो नानी सोचती थी कि मैं सुन नहीं रही हूं, लेकिन मैं हमेशा सुन रही होती। जब मैं नहीं भी सुन रही होती तो ये बातें मेरी मां को चुप करा देती। मेरी मां का साहस भी चुक जाता। मैं अंदाजा लगा सकती हूं कि नाना इसका जिक्र क्यों करती थी।

'मांसल पिंडलियों वाली टांगें। मजबूत निंतबों को सहारा दे सकें ताकि

बच्चे जने जा सकें।'

मैं किसी औरत की टांगे देखना चाहती थी, जिसने बच्चे पैदा किए हों। लेकिन गांव में यह संभव नहीं था। बूढ़ी औरतें तो सारा दिन साड़ी से पूरी टांगों को ढके रहती। यदि नदी पर जाने दिया जाता तो शायद मैं देख पाती, लेकिन मुझे इसका अवसर ही नहीं मिला। मुझे तो अपनी हमउम्र छोटी लड़कियों के साथ कम गहरे पानी को उछालने के लिए भी मिन्नतें करनी पड़ती थीं। नहाने के लिए तो अपनी झोंपड़ी के पीछे बने एक छोटे से गुसलखाने का प्रयोग करते थे। मैंने नंगी टांगे देखी वो मेरी जैसी छोटी लड़कियों की या स्कूल में पढ़ने वाली बड़ी लड़कियों की थी। स्वीकृत मापदण्डों पर खरी उतरने वाली दो जोड़ी टांगे थीं नानी और मां की। मेरी नानी ने मेरी मां को जन्म दिया था और मेरी मां ने मुझे। मेरी सहेलियों की टांगें मेरे जैसी ही थी,पर मैं नहीं जानती कि वे मांसल थी ताकि नितंबों को सहारा दे सकें।

बड़े लड़के-लड़कियों के अनुसार हमारे छोटे से गांव और कस्बे के बीच पांच किलोमीटर का फासला था। मुझे नहीं पता कि पांच किलोमीटर कितना होता है। वे हमेशा शिकायत करते कि स्कूल जाने-आने में कितना लंबा सफर तय करना पड़ता है। हम गांव में रहते थे किलोमीटरों को तय करने का कोई मसला ही नहीं था। स्कूल बहुत अच्छी जगह है।

स्कूल भी एक विषय था जिसके बारे में नानी और मां बातें करते थे और दोनों की राय अलग अलग थीं। नानी का मानना था कि यह समय की बरबादी है। मैं समझ नहीं पाई कि वो क्या कहना चाहती हैं। मेरी मां शायद उनके भाव को जानती थी और पर उससे इत्तेफाक नहीं रखती थी। वह अक्सर नानी से कहती कि वह (मेरी मां) अपने को अंधकार में बंद पाती हैं क्योंकि वे कभी स्कूल नहीं गई। इसलिए यदि उनकी बेटी कुछ लिख-पढ़ सकी, कागज पर जमा-घटा कर सकी तो बहुत अच्छा होगा। और बाद में मैं शादी भी कर सकती थी और शायद....

नानी हंसती - आह ऐसी टागों के साथ वह स्कूल भी जा सकती है।

खेल के छोटे से मैदान में अपने सहपाठियों के साथ दौड़ने और हमेशा प्रथम स्थान प्राप्त करने में मुझे अपने घर में बताने जैसा कुछ नहीं लगा। मुझे नहीं पता कि किसप्रकार अध्यापिकाओं ने यह निर्णय लिया कि जिला स्तर पर अपने स्कूल के जूनियर बच्चों की तरफ से मैं दौड़ूं। परंतु उन्होंने ऐसा किया।

जब मैंने घर जाकर नानी और मां को बताया तो पहले-पहल तो उन्हें विश्वास ही नहीं हुआ। फिर नाना ने खुद जाकर पूछताछ की। उसने मेरी मां को यह सच बताया कि मैं अपने स्कूल के धावकों में एक हूं।

मेरी मां आश्चर्यचकित थी, 'क्या ऐसा है।' उनकी मुख-मुद्रा ऐसी हो गई
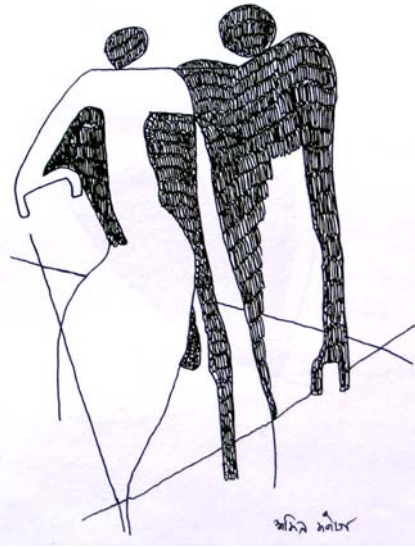
जैसे कि वो नानी को बताना चाहती है मेरे बारे में एक ऐसा रहस्य जो वो किसी के साथ साझा नहीं करना चाहती थी। परंतु उस समय नानी खुद भी इतनी खुश थी कि मेरी मां ने अपना मुंह बंद ही रखा। नानी ने जब यह खबर पहली बार सुनी तो मैंने नानी को मेरी टांगों की ओर अजनबी निगाह से देखते पाया, परंतु इस तरह जैसे वे न देखने का छल कर रही हों। इस हफ्ते मेरी स्कूल यूनिफार्म उन्होंने खुद धोई। यह आश्चर्य की बात थी। बल्कि वो श्रीमान मैनशा के घर से कोयले वाली इस्त्री मांगकर लाती। मेरी यूनिफार्म पर बार बार इस्त्री करती। यदि मैं यूनिफार्म होती तो मैं जोर से कहती कि बस, बहुत हो गया।

इस सप्ताह मुझे स्कूल यूनिफार्म पहनना अच्छा लगा। पहले दिन दोपहर की परेड में सूर्य की किरण मेरी यूनिफार्म पड़ी तो यह सबकी यूनिफार्म से अधिक चमक रही थी। मैं जानती थी कि नानी ने भी इसे देखा और उन्हें भी अच्छा लगा। इस जिला स्तर खेल सप्ताह में वह प्रतिदिन दोपहर को हमारे साथ कस्बे में आती। हर रोज दोपहर को पहनने के लिए एक तांबे के बक्से से पुराने कपड़ों जोड़ा निकालती। पूरे कपड़ों में कलफ इतनी अच्छी तरह लगा होता कि पास से गुजरने पर उनकी आवाज सुन सकते थे। वह हम बच्चों के पीछे चलती परंतु ऐसे जैसे कहीं अन्य जगह पर जा रही हो।

हां, मैने हर दौड़ को जीता। सर्वश्रेष्ठ आल राऊंडर खिलाड़ी का खिताब जीता। हां, नानी कहा करती, यदि ऐसा कुछ न होता तो इस सबकी उसे परवाह नहीं है। पर उसे इसकी परवाह थी। जानते हो उसने क्या किया? उसने चमचमाती ट्राफी को अपनी पीठ पर उठाया जैसे वे अपने बच्चे या किसी कीमती चीजों को उठाती है। और इसमें उसे खुद चलने में कोई असुविधा नहीं हुई।

जब हम अपने गांव पहुंचे तो हेडमास्टर को ट्राफी वापिस देने से पहले हमारे बरामदे में पहुंचकर मेरी मां को ट्राफी दिखाई।

ओह व्यक्ति कितने अप्रत्याशित होते हैं। अब नानी मुझे गोद में उठाए थी और सुबकते हुए बुदबुदा रही थी, 'पतली टांगे भी लाभदायक हैं, पतली टांगे भी काम की हैं, कुछ टांगे मांसल नहीं होती ताकि वो नितंबों को सहारा दे सकें... पतली टांगों से दौड़ सकते हैं, तुम जानते हो'।

मैं इन सबके बारे में अधिक नहीं जानती, परंतु यह सब था जो मैं महसूस कर रही थी और सोच रही थी। यह तो निश्चित था कि टांगें जो नितंबों को सहारा देती हैं और बच्चे पैदा करती हैं उसके साथ-साथ कुछ ओर काम भी कर सकती हैं। बस मैं ऐसी बातों को जोर से कहने में डरती थी। क्योंकि कोई मुझे कह सकता था कि कभी नहीं ऐसी बात कभी दोबारा नहीं कहनी। और या फिर मेरे कहने पर वो रो पड़ने की हद तक हंसते।

ऐसा करना बहुत अच्छा था यद्यपि ऐसा कुछ भी करने की मैंने कोई योजना नहीं बनाई थी। ताकि उनको यह दिखा सकूं। मेरी मां हमेशा की तरह इस बार भी चुप थी। ●

सम्पर्क : 94164-12761

रसायनमुक्त वैकल्पिक कृषि क्रांतिकारी कृषि

राजेन्द्र चौधरी

वर्तमान में प्रचलित रासायनिक उर्वरक एवं कीटनाशक आधारित खेती संकट में है इसके बारे में शायद ही कोई मतभेद है। सरकारी और कृषि संस्थानों के दस्तावेज भी इस संकट की चर्चा से भरे पड़े हैं। बहस का असल मुद्दा यह है कि क्या इस रसायन आधारित खेती का कोई विकल्प है, और अगर है तो वह विकल्प क्या है? कई लोगों के लिये दूसरी हरित क्रांति का अर्थ नवीनत्तम तकनीक जैसे आनुवंशिक रूप से संशोधित (जीएम) बीज इत्यादि है। ये धारा, ऐसे बीजों और अन्य ऐसे प्रौद्योगीकीय उपायों के इस्तेमाल को बढ़ावा देती है, जो कृषि को निगमीकरण और केंद्रीकरण की ओर ले जाती है. यह धारा तथाकथित 'हरित क्रांति' की आलोचना की बजाय उसको अगले सोपान पर ले जाती है।

इस के ठीक उलट, दूसरी ओर, अनेक भिन्नताओं के बावजूद, इस पर सहमति है कि रासायनिक उर्वरक एवं कीटनाशक इत्यादि पर आधारित खेती को तो छोड़ना ही होगा। बिना रसायनिक उर्वरक एवं कीटनाशक के प्रयोग के खेती की वैकल्पिक पद्धतियां अनेक नामों से जानी जाती हैं- कुदरती खेती, ऋषि खेती, नानक खेती, जीरो बजट खेती, जैविक खेती, शाश्वत खेती, वैकल्पिक खेती इत्यादि, इन वैकल्पिक पद्धतियों में कई महत्वपूर्ण फर्क हैं परंतु इन सबमें एक समानता भी है। इन सब विधियों में रसायनिक उर्वरक एवं कीटनाशक इत्यादि का प्रयोग नहीं किया जाता। आम प्रचलन में इन भिन्न-भिन्न पद्धतियों के लिये जैविक खेती शब्द भी प्रयोग किया जाता है।

यहां जैविक खेती की दो विभिन्न धाराओं में फर्क करना भी जरूरी है। एक रूप में जैविक खेती भी कम्पनी आधारित है। कई रासायनिक उर्वरक बनाने वाली कम्पनियां अब जैव-उर्वरक और जैव-कीटनाशक बनाने लग गई हैं, तो कई कम्पनियां जैविक उत्पादों की बिक्री से ले कर जैविक खेती कराने तक में शामिल हैं। दूसरी ओर, जैविक खेती का बिना खर्च, बिना कर्ज वाला स्वावलम्बी रूप है जिसमें किसान को बाहर से कुछ भी खरीदना नहीं पड़ता। यह केवल श्रम और स्थानीय संसाधन आधारित खेती है। जन आंदोलन तो इस तरह की स्थानीय और प्राकृतिक संसाधनों पर आधारित खेती को ही बढावा दे रहे हैं न कि कम्पनी आधारित 'जैविक' खेती को। इस तरह की स्थानीय और प्राकृतिक संसाधनों पर आधारित खेती की सब पद्धतियों को इस लेख में, अगर विशिष्ट संदर्भ में अर्थ अन्यथा न हो तो, हम एक श्रेणी में रख कर समानार्थी मानेंगे और इन सब के लिये अक्सर वैकल्पिक कृषि शब्द का उपयोग करेंगे।

'वैकल्पिक कृषि' में पारंपरिक ज्ञान और आधुनिक विज्ञान दोनों का योगदान है। हालांकि 'वैकल्पिक कृषि' में निश्चित रूप से रासायनिक उर्वरकों तथा कीटनाशकों के उपयोग का निषेध है परन्तु 'वैकल्पिक कृषि' इतने तक सीमित नहीं है। वैकल्पिक कृषि का व्यापक वैज्ञानिक आधार है। कृषि वैज्ञानिको द्वारा एक सवाल बार-बार उठाया गया। इतने पशु ही कहां हैं कि गोबर की खाद मात्र से फ़सल के लिये सारे पोषक तत्वों की पूर्ति हो सके। वो हिसाब लगा कर बतातें हैं कि यूरिया डालने से पौधे को इतनी नाइट्रोजन मिलती है और इतनी नाइट्रोजन की पूर्ति के लिये इतने गोबर की जरुरत होगी। इस गणित में एक बड़ा झोल है।

हमें पौधे को पूरा भोजन बाहर से देने की जरुरत ही नहीं है। नाइट्रोजन तो हवा में बहुत है। इसीप्रकार से पृथ्वी में अन्य तत्वों की भी आमतौर पर कमी नहीं है। परन्तु प्राकृतिक रूप से मुफ्त में मौजूद ये तत्व दो रूप में पाये जाते हैं। एक छोटा हिस्सा फसल को सीधे-सीधे उपलब्ध रूप में पाया जाता है, परन्तु बड़ा हिस्सा इस रूप में उपलब्ध नहीं होता कि पौधा उन्हें सीधे-सीधे प्रयोग कर ले। प्राकृतिक रूप से मुफ्त में मौजूद इन तत्वों को पौधों के प्रयोग लायक बनातें हैं मिट्टी में मौजूद जीवाणु। परन्तु कीटनाशकों और रासायनों के प्रयोग से ये जीवाणु लगभग खतम होने के कगार पर हैं। हमें तो बस यह सुनिश्चित करना है कि मिट्टी में ये जीवाणु फिर पर्याप्त मात्रा में हो जाएं, इनको पर्याप्त मात्रा में मिट्टी में वापिस लाने के तरीके किसानों ने खोज लिये हैं।

मिट्टी में जीवाणुओं को वापिस लाने की पहली शर्त तो यह है कि इनको खतम करने वाले रासायनों और कीटनाशकों का प्रयोग बंद हो। परन्तु इतने से काम नहीं चलेगा। इन जीवाणुओं को भोजन भी तो

चाहिये। इस के लिए जरूरी है कि हम खाने वाली चीज को खा लें, बेचने वाली चीज को को बेच दें परन्तु धरती से उपजी बाकी सब वनस्पति को वापिस मिट्टी में मिला दें। असल में मिट्टी में मिलाने की भी जरुरत नहीं है। इससे खेत को ढकना भर है, (विशेषज्ञ इसे मुल्चिंग या आच्छादन करना कहतें हैं)।

इसके कम से कम तीन फायदे होंगे। एक तो मिट्टी से निकले बहुत से तत्व वापिस मिट्टी में मिल जायंगे और दूसरा जीवाणुओं को भोजन मिल जाएगा ताकि वो जी सके और प्राकृतिक रूप से मुफ्त में उपलब्ध पोषक तत्वों को पौधों को उपलब्ध करा सकें। मिट्टी के ढके रहने से जल का भी संरक्षण होगा। कम पानी में ज्यादा भूमि पर खेती हो पायेगी। इसी तरह हवा में मुफ्त में उपलब्ध नाइट्रोजन को पकड़ पाने वाली फसलों को अपने फसल चक्र में शामिल करें और भी बहुत सी जरूरी बाते हैं। संक्षिप्त में 'वैकल्पिक कृषि' एक फसली खेती (मोनोकल्चर) के खिलाफ है। जैव विविधता को बढ़ावा देती है, कृषि अवशेषों (बायोमास) के स्थानीय स्तर पर पुन: प्रयोग को बढ़ावा देती है। किसान के अपने/स्थानीय उच्च पैदावार के बीजों के विकास को बढ़ावा देती है, प्रकाश संश्लेषण के माध्यम से सौर ऊर्जा का अधिकतम दोहन करने करने के लिए हर समय खेत में फसल चाहती है, पशु पालन 'वैकल्पिक कृषि' का एक अभिन्न हिस्सा है।

मिश्रित और पूरा साल की खेती है जिसके चलते पूरे साल खेत में काम रहता है। इसलिये 'वैकल्पिक कृषि' में वर्ष भर काम और रोजगार मिलता है। फसलों की विविधता और रोग/कीट नियंत्रण के स्थानीय उपायों के चलते व्यक्तिगत ध्यान की आवश्यकता होती है, जिसके चलते अनुपस्थित किसान के मुकाबले स्वयं खेती करने वाले, और बड़े पैमाने के मुकाबले छोटे पैमाने पर खेती करने वाले के यह ज़्यादा अनुकूल है। ('वैकल्पिक कृषि' की दाभोलकर पद्धति का दावा है कि पांच व्यक्तियों का एक परिवार एक एकड़ के चौथाई हिस्से और प्रतिदिन 1000 लीटर पानी पर न केवल गुजर-बसर कर सकता है बल्कि खुशहाल जीवन जी सकता है)

प्रकृति के साथ मिल कर काम करती है न कि उस पर कब्जा, यह तेजी से घटते तैलीय संसाधनों से स्वतंत्र है, जबकि रासायनिक उर्वरक इन पर आधारित हैं। स्थानीय और प्राकृतिक संसाधनों पर आधारित होने के कारण कार्बन उत्सृजन को कम करती है और इस तरह पर्यावरण सुधार में योगदान देती है। कम लागत के खेती के तरीके नकदी की जरूरत कम कर देते हैं। इसके चलते ऋण पर निर्भरता घट जाती है और कर्ज भुगतान का दबाव न होने के कारण किसान कटाई के तुरंत बाद ही फ़सल बेचने के लिए मजबूर न होकर अपनी सुविधानुसार बेच सकता है। बाहरी आदानों के उपयोग को कम करता है और इस तरह विकेन्द्रीकृत निर्णय और विकास के पक्ष में है। इससे क्षेत्रीय असमानता एवं शहरों की ओर पलायन पर अंकुश लग सकता है। अंत में, यह हानिकारक रसायनों से मुक्त स्वास्थ्यवर्धक भोजन उपलब्ध कराती है।

'वैकल्पिक कृषि' से हमारा तात्पर्य उपरोक्त वर्णित सब/अधिकांश तत्वों को अभिन्न अंग के रूप में सम्माहित करने वाली खेती से है। यानी 'वैकल्पिक कृषि',आत्मनिर्भर कृषि, स्थानीय संसाधनों पर आधारित कृषि, विकेन्द्रीकृत विकास और प्रकृति के साथ अधिक सौहार्दपूर्ण संबंधों को बढ़ावा देने वाली खेती है। इन सबका मिला-जुला प्रभाव, पिछली कुछ सदियों से चली आ रही विकास की राह बदलने का है, और यह एक क्रांतिकारी संभावना है। बशर्ते कि 'वैकल्पिक कृषि' दुनिया का पेट भर सके।

असली सवाल यही है कि क्या 'वैकल्पिक कृषि ' दुनिया का पेट भर सकती है? वर्तमान में, अक्सर 'वैकल्पिक कृषि' के उत्पाद उच्च कीमत वाले होते हैं इस उच्च कीमत का कारण 'वैकल्पिक कृषि' की कम उत्पादकता बताया जाता है। कई किसान जो रसायनों के हानिकारक परिणामों से परिचित होते हैं, वे अपने स्वयं के उपभोग के लिए, रसायनों का प्रयोग बंद कर देते हैं और पाते हैं कि उनकी उपज घटी है। इसके अलावा 'वैकल्पिक कृषि' के पक्षधरों का ध्यान निर्यात बाजार या अमीरों पर केंद्रित होता है जिससे इसके केवल सभ्रांतवादी सनक होने का आभास होता है। इससे यह भी प्रतीत होता है कि आम आदमी तो विषैले रासायनिक भोजन खाने के लिये अभिशप्त है।

लेखक ने पिछले 2 साल से हरियाणा में 'वैकल्पिक कृषि' के प्रचार-प्रसार का काम शुरु किया है, उपलब्ध साहित्य की व्यापक समीक्षा और 'वैकल्पिक कृषि' अपनाने वाले किसानों के खेतों की यात्रा और हरियाणा के प्रारम्भिक नतीजों के आधार पर यह लेखक आश्वस्त है कि 'वैकल्पिक कृषि' एक विश्वसनीय विकल्प है जो पर्यावरण के अनुकूल और टिकाऊ तरीके से दुनिया को भोजन उपलब्ध करा सकती है।

भारत में अब किसानों की बड़ी संख्या और कृषि भूमि के अच्छे खासे हिस्से पर 'वैकल्पिक कृषि' अपना चुकी है। कुछ किसान तो दो या अधिक दशकों से 'वैकल्पिक कृषि' अपना चुके हैं।

दुर्भाग्य से, 'वैकल्पिक कृषि' अब भी हाशिये पर ही बनी हुई है और इसको न तो मुख्यधारा के कृषि विश्वविद्यालयों और अनुसंधान संस्थानों ने, और न ही किसानों के संगठनों ने गंभीरता से लिया है। 'वैकल्पिक कृषि' के अनुभव की पड़ताल ही नहीं की गई और पूर्वाग्रहों के चलते ही इसे नकार दिया गया है। दूसरी ओर, वैकल्पिक कृषि अपनाने वाले किसानों के पास न तो संसाधन हैं, न समय और प्रशिक्षण की वो 'वैज्ञानिक' आधार पर अपनी पद्धति को सही साबित कर सकें। जिन किसानों को 'वैकल्पिक कृषि' अपनाने से फायदा हुआ है वो अपने काम में व्यस्त हैं। इसलिये 'वैकल्पिक कृषि' का फैलाव धीरे-धीरे हो रहा है।

'वैकल्पिक कृषि' के कई ऐसे रूप हैं जो तर्क से परे हैं। होमा कृषि में दैनिक हवन पर जोर देने के साथ बिल्कुल निश्चित समय में एक या दो विशिष्ट मंत्रों के जाप से चमत्कार का दावा किया जाता है। भैंस व अन्य पशुओं को नकार कर, गाय का महिमामंडन किया जाना, गोमूत्र से मानव, पशु या फसल के सभी रोगों के इलाज का दावा समझ से बाहर हो जाता है। लेकिन लोकतांत्रिक और प्रगतिशील ताकतों का इसके चलते 'वैकल्पिक कृषि' को नजरअंदाज करना सही नहीं है।

'वैकल्पिक कृषि' विकेन्द्रीकृत और समतामूलक विकास के मॉडल और गांवों के पुनर्जीवन की नींव बन सकती है। 'वैकल्पिक कृषि' की क्रांतिकारी संभावनाओं के चलते सामाजिक बदलाव की प्रगतिशील ताकतें इसकी उपेक्षा नहीं कर सकती। •

मो : 9416182061

आंकड़ों पर उलझी सरकार कैसे हल करेगी कृषि संकट

हरवीर सिंह

हमारे पास किसी भी संकट को हल करने के लिए उससे जुड़ी सही जानकारी का होना सबसे अहम मायने रखता है। लेकिन हाल की कुछ घटनाओं से लगता है कि कृषि और किसानों के संकट के मामले में आंकड़ों के स्तर पर सरकार की हालत बहुत बेहतर नहीं है। अगर यह स्थिति नहीं सुधरती तो दिक्कत कम होने की बजाए बढ़ सकती है।

पहला मामला गेहूं उत्पादन का है। कृषि मंत्री और उनके मंत्रालय ने दावा किया कि देश में सूखे की स्थिति के बावजूद गेहूं के उत्पादन पर कोई प्रतिकूल असर नहीं होगा और यह पिछले साल से अधिक रहेगा। इसके लिए 9.4 करोड़ टन उत्पादन का अनुमान जारी किया गया। साथ ही सरकार ने 305 लाख टन गेहूं की सरकारी खरीद का लक्ष्य भी तय किया। लेकिन जब बाजार में गेहूं की आवक शुरू हुई तो वह बहुत बेहतर नहीं रही। यह पिछले साल से करीब 50 लाख टन कम रही है। इसके चलते गेहूं की सरकारी खरीद करीब 230 लाख टन पर अटक जाने की संभावना है। जो 305 लाख टन के तय लक्ष्य से करीब 70 लाख टन कम रहेगी-नतीजा यह होगा कि केंद्रीय पूल में सरकार के पास बहुत अधिक स्टॉक नहीं रहेगा और सरकार के पास बाजार में कीमतों पर नियंत्रण के लिए खुले बाजार में गेहूं की बिक्री के लिए बहुत विकल्प नहीं रहेंगे। इसका सीधा असर कीमतों पर आ सकता है। जो अभी से दिखने भी लगा है, क्योंकि खपत वाले क्षेत्रों में जहां गेहूं का उत्पादन नहीं होता है, वहां दाम बढ़ने लगे हैं और फ्लोर मिलें आयात के लिए लाबिंग करने लगी हैं। यही नहीं पिछले साल भी सरकार ने गेहूं उत्पादन का अनुमान बढ़ा-चढ़ाकर पेश किया था और बाद में इसे 9.57 करोड़ टन के पहले अनुमान से करीब 92 लाख टन घटाकर ताजा आंकड़ों में 8.65 करोड़ टन कर दिया गया है। असल में पहले और आरंभिक अनुमान ही लोगों को याद रहते हैं और कृषि उत्पादन के अनुमानों के पांचवें और अंतिम अनुमान तक पहुंचते-पहुंचते कितना बदलाव आ जाता है। इसको लेकर समीक्षा कम होती है। यही नहीं उत्पादन अनुमानों में कमी के जरिए अगले साल की कृषि विकास दर को भी बेहतर दिखाने में मदद मिलती है। मसलन पिछले वित्त वर्ष 2015-16 की 1.1 फीसदी की कृषि विकास दर सही उत्पादन आंकलन की स्थिति में ऋणात्मक या शून्य पर आ सकती है।

दूसरा मामला है चीनी उत्पादन का। करीब छह माह पहले तक सरकार चीनी उत्पादन की अधिकता और घरेलू बाजार में गिरती कीमतों के चलते निर्यात प्रोत्साहन दे रही थी। वहीं उद्योग को प्रोत्साहन देने के लिए किसानों के नाम पर चार रुपए प्रति क्विंटल की गन्ना मूल्य सबसिडी तय करने के साथ कहा गया कि वह गन्ना किसानों की मदद कर रही है। चीनी उद्योग भी सरकार से मदद लेने के लिए चालाकी करता रहा और महराष्ट्र में भारी सूखे के बावजूद उत्पादन को पिछले सीजन के बराबर ही आंकता रहा। सरकारीतंत्र भी निजी उद्योगों के संगठन इंडियन शुगर मिल्स एसोसिएशन (इम्मा) पर भरोसा करता रहा, लेकिन अब उत्पादन करीब 30 लाख टन रहेगा। ताजा आंकड़ों के मुताबिक जब अक्तूबर 2016 में नया गन्ना-पेराई सीजन शुरू होगा, तो देश में तीन माह की खपत से भी कम चीनी होगी। नतीजतन चीनी की कीमतों पर काबू पाना मुश्किल हो सकता है। पहले ही खुदरा बाजार में चीनी की कीमतें 30 रुपए किलो से बढ़कर साल भर के भीतर 50 रुपए किलो को पार कर गई हैं। अब सरकार ने निर्यात सबसिडी समाप्त करने का फैसला ले लिया है। अगला कदम होगा चीनी आयात पर कस्टम ड्यूटी कम करना। अब इसका नतीजा यह होगा कि देश में सस्ती चीनी का आयात होगा और उसका खामियाजा गन्ना किसान कई साल तक भुगतेंगे। यहां भी सरकार की आंकड़ेबाजी की गड़बड़ी का खामियाजा किसान भुगतेंगे।

वहीं एक ताजा मामला है जब 26 मई को सहारनपुर में एक रैली को संबोधित करते हुए प्रधानमंत्री ने कहा कि उत्तर प्रदेश में गन्ना किसानों का बकाया घटकर 700 से 800 करोड़ रुपए रह गया है, जबकि जब 2014 में उनकी सरकार सत्ता में आई तो यह बकाया 14 हजार करोड़ रुपए था। उनकी नीतियों और कदमों से इसमें कमी आई। लेकिन सच्चाई इससे अलग है। उस दिन तक चीनी मिलों पर उत्तर प्रदेश के गन्ना किसानों का बकाया 5795 करोड़ रुपए था। जब इस गलत आंकड़े पर किरकिरी हुई तो सरकार ने दो दिन बाद बयान जारी कर कहा कि चालू सीजन का बकाया 5795 करोड़ रुपए है, लेकिन इसके पहले साल का बकाया उतना है जो प्रधानमंत्री ने बताया।

सवाल यह नहीं है कि आंकड़े गलत हैं और उनमें कुछ अंतर हो सकता है, बल्कि बड़ा सवाल यह है कि इन आंकड़ों के आधार पर ही सरकार फैसले लेती है। कृषि उत्पादों के न्यूनतम समर्थन मूल्य तय करने का उनके आयात और निर्यात का और आयात व निर्यात ड्यूटी बाजार में आने के करीब तक प्याज का न्यूनतम निर्यात मूल्य (एमईपी) इतना ऊंचा रखा है कि इसका निर्यात बंद हो गया और अंतर्राष्ट्रीय बाजार का फायदा पाकिस्तान के किसानों को मिला। इसके उलट आज देश में प्याज उत्पादक किसानों का क्या हाल है, यह किसी से छिपा नहीं है। प्याज उत्पादन करने वाले किसानों को तीन से पांच रुपए किलो की कीमत पर प्याज बेचना पड़ रहा है। जो उनकी लागत से बहुत कम हे। नतीजा यह होगा कि अगले सीजन में वह इससे मुंह मोड़ लेगें और अगर उसके बाद इसकी बढ़ती कीमतों के चलते आयात की नौबत आ जाए तो कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिए।

मामला केवल कुछ फसलों का ही नहीं है, बल्कि यह फेहरिस्त खाद्य तेलों, दालों और फलों व डेयरी उत्पादों तक जाती है। इसलिए जब हम दावा कर रहे हैं कि डिजीटल क्रांति हो रही है और हम मंगल ग्रह व चांद पर यान के मिशन कामयाब कर रहे हैं तो किसानों की आर्थिक स्थिति और उनकी आमदनी पर सीधे असर डालने वाले आंकड़ों को दुरुस्त क्यों नहीं कर रहे हैं। जिसकी बहुत जरूरत है और हम इस मामले में सक्षम भी हैं। ●

साभार - सोपानस्टैप जून 2016

हरिभजन सिंह रेणु :

भारतीय मिथकों का कवि

पूर्ण मोदगिल

कविता उसके आसपास थी, आसपास कहीं भी नहीं थी। इस विरोधाभास की सच्चाई क्या है? घर-परिवार, वातावरण, व्यवसाय, सब कविताविहीन। कविता उसके लिए बावड़ी की तरह थी, जिसके शीतल जल तक पहुंचने के लिए कई सीढ़ियां नीचे उतरना पड़ता है। उसने यही किया-मन के भीतर कविता के जल-स्रोत तक पहुंचने के लिए वह बहुत सी सीढ़ियां उतरता गया - अध्ययन, मनन, चिंतन, संवेदना, कल्पना की दुनिया में बार-बार आना कहीं इतना आह्लादजनक हुआ कि उसे सृजन के द्वार तक ले गया। फिर 'मेरे घर तो तेरे घर तक, तेरे घर तो मेरे घर तक' की जो कविता यात्रा शुरू हुई, वह आज तक जारी है।

उसके भीतर था कविता का स्रोत, प्यार का सैलाब जो उसे बेचैन किए रहता था। चढ़ती उम्र का सैलाब ही है, जो मर्यादा-नियम-विधान के कुल-किनारों को तोड़ती है।

हरिभजन सिंह रेणु की पहली पुस्तक 'भूख' में प्रेम की भूख मुखर है। प्रेम की भूख और पेट की भूख आदिम अवस्था से आज तक आदमी का पीछा कर रही है। या यह कि आदमी ताउम्र इस द्विधा भूख की तृप्ति के लिए न जाने क्या-क्या नहीं कर गुजरता।

भूख के ये दोनों रूप रेणु की कविता में पालथी मारे बैठे हुए हैं।

उसकी प्रेम कविताओं को अनावृत करके देखते हैं तो बात कविता के प्रेम संबंधों तक पहुंचती है। रेणु का मानना है कि आम आदमी लोक निंदा के भय से वर्जित संबंधों को खुले में नहीं कहता, जबकि किसी भी क्षेत्र में ख्याति की बुलंदी पर खड़ा व्यक्ति उस भय को झटक देता है। उस व्यक्ति विशेष की स्वीकारोक्तियां उसका गुण बन जाती हैं और उसे साफगोई, सच्चाई, ईमानदारी के अलंकारों से विभूषित करती हैं। रेणु अपनी बात की पुष्टि में अमृता प्रीतम तथा कमलादास के उदाहरण पेश करता है। तो क्या रेणु उस मुकाम तक पहुंच गया

है कि अपने कमजोर या तथाकथित कमजोर क्षणों को सार्वजनिक कर सके। वह इन्कार में सिर हिलाता है। एक अंतरंग दायरे तक ही वह अपने भेद बांटता है या फिर उन अनुभवों पर कला की चाश्नी चढ़ाकर उन्हें कविता के रूप में परोसता है। यह कहते हुए कि वह इतना महान कहां हुआ है कि अपनी महानता की छतरी के नीचे बैठकर सब कुछ कह सके। महान होने की स्थिति में भी उन एकान्तिक क्षणों को सार्वजनिक करने का न कोई औचित्य है न उपादेयता। अपने तक सीमित रखने पर वे ऊर्जा के एक अजस्र स्रोत का काम करते रहते हैं।

रेणु को अपनी जन्म तिथि का सही ज्ञान नहीं है। अनुमानित तिथि 7 मई 1941 है। संयोगवश महीना और तिथि वही है, जो महाकवि रविन्द्रनाथ ठाकुर की है। अरजादा (जिला स्यालकोट अब पाकिस्तान) में जन्मा रेणु विभाजन के बाद परिवार के साथ सिरसा आ गया। अपने जन्म स्थान और निकट के रेलवे स्टेशन अलीपुर को रेणु भूल नहीं पाया, जहां रेलगाड़ी सुबह-शाम आती, रुकती, चली जाती। घर से परदेश जाने वाले और परदेश से घर आने वाले चढ़ते-उतरते। पशु चराते बच्चे कौतुक नजरें रेलगाड़ी और भीतर बैठे यात्रियों को देखते ऊंची आवाज में सासरीकाल कहते और रेल की सीटी के साथ सीटी मारते।

अरजादा एक छोटा-सा गांव था जहां रेणु का परिवार गांव की जरूरत के हल-पंजाली बनाता। परिवार के कुछ लोग दिहाड़ी पर दूर-निकट के गांवों में आते-जाते। पिता साधु सिंह अनपढ़ थे पर उन्हें हीर और कुछ किस्से जुबानी याद थे, जिन्हें वे गुनगुनाते रहते। चाचा प्यारा सिंह अपने हुनर में माहिर। रेणु ने कहा है कि 'जब मैं कविता से बात नहीं कर रहा होता तो आधी धूप-आधी छांव में अपने पुश्तैनी काम में लगा किसी बंदूक का हत्था बना रहा होता हूं या किसी राइफल का घोड़ा तोड़ रहा होता हूं तो चाचाजी याद आते हैं जो कहा करते कि जब कुछ बने नहीं, तो तोड़ कर जोड़ने की कोशिश करो, नया बनाने का ढंग सीख जाओगे। मैं सोचता हूं कि कविता भी मेहनत से बनाई-शिंगारी जा सकती है। उसमें से भी अवांछनीय पुराना निकाल कर कुछ नया रखा जा सकता है।' स्कूली पढ़ाई रेणु को रास नहीं आई। छटी कक्षा में ही उसने स्कूल छोड़ दिया और घर पर रहकर जद्दी काम करना शुरू कर दिया। सिरसा आने पर गांव के पुराने काम ने नया रूप ले लिया था-दरांती, रंबा, हल-पंजाली की जगह ट्रैक्टर-ट्राली और बंदूकों की मुरम्मत का काम काम शुरू हो गया था।

घर-दुकान के सामने शनिश्चर का मंदिर। पुजारी दिन में लोगों के हाथ देखता, राहू-केतु की दशा उतारने के उपाय बताता और रात वह भूत-प्रेतों के किस्से सुनाता, जिसमें रेणु भी रुचि लेता। पड़ौस में एक बुजुर्ग जुगल किशोर रहता था, जो भट्ठी पर चने भूनता। उसके पास रूप वसंत, कादरयार का पूरन भगत, तुलसीदास की रामायण तथा वारिस की हीर आदि पुस्तकें थीं। रेणु ने हीर के सिवा सभी पुस्तकें पढ़ी। हीर पढ़ने के लिए उस बुजुर्ग ने मना कर दिया था। घर पर चाचा जी ने जपुजी साहिब,

साखियां, जिंदगी बिलास आदि पढ़ने को दी थीं और इस तरह उसे पढ़ने की चटक लग गई। कुछ साल बाद रेणु ने प्राइवेट मैट्रिक की परीक्षा पास कर ज्ञानी की परीक्षा की तैयारी की, किंतु परीक्षा में नहीं बैठा। दुकान पर काम करना पड़ता था, परिवार की आर्थिक स्थिति को पटरी पर रखने के लिए भरसक सहयोग देना पड़ता।

रेणु अपनी वेशभूषा के प्रति निहायत लापरवाह है। स्वभाव में रूखापन इस हद तक कि उसे अक्खड़ कहा जा सकता है। उसने कभी गाली-गलौच नहीं किया, न हाथापाई, लेकिन उसकी सख्तकलामी हाथापाई का न्यौता देती प्रतीत होती है। सरकार-समाज की नुक्ताचीनी प्राय: सुनने में आती रहती है। किंतु रेणु उसमें अधिक मुखर हो जाता है, इतना कि लगता है कि वह जीवन के उज्जवल पक्ष की तरफ पीठ किए बैठा है। नकार का यह स्वर उसकी कविता का स्रोत भी और सीमा भी।

बातचीत के दौरान वह 'अच्छा' शब्द का प्रयोग इस ढंग से करता है कि इसका अर्थ 'सब अच्छा' नहीं होता। 'अच्छा' से वह व्यंग्य, उपेक्षा, घृणा, असहमति, आश्चर्य, उपहास आदि किस भाव को प्रकट कर रहा है श्रोता के लिए जानना मुश्किल है, वह भौंचक्का होकर रेणु के चेहरे से 'अच्छा' की जटिलता को समझने की नाकाम कोशिश करता है।

प्राचीन रूढ़ियों और आस्तिकता के विरोध में वह घंटों बहस करता है और याद नहीं आता कि इस बहस में वह कभी परास्त हुआ हो। ताश और शतरंज में अक्सर दोस्तों से बाजी मार जाता है। इन्हीं 'खूबियों' के कारण उसके मित्र एक नजर शनिश्चर के मंदिर पर और दूसरी रेणु के चेहरे पर डालते हुए कहते कि शनिश्चर के सामने शनिश्चर रहता है।

रेणु ने 18-19 साल की उम्र में कविता लिखना शुरू किया। इस उम्र में आकाश से तारे तोड़ने की हिम्मत होती है। दिन में जागते हुए भी सपने देखने की उम्र। वर्जित फल की प्राप्ति के लिए बहिश्त तक छोड़ने को तत्पर। मिलने का सुख ब्रह्मानन्द सहोदर और विरह कहर की यातना सा। लेकिन मिलने से कविता नहीं उपजती, कविता का स्रोत तो विरह में है। रेणु की कविता का जन्म भी हिज्र की घड़ियों में हुआ-

लूं-लूं अंदर यादां रोवण
रग रग अंदर पीड़ां हस्सण
तन हिज्र दे अंग साकां दा
वसदा इक संसार वे।

लिखना जब शुरू हुआ तो लिखने का भूत सवार हो गया। भले ही उस समय न शब्दों का सही ज्ञान, न भाषा अथवा छंद-अलंकार की समझ। धीरे-धीरे साहित्य के जानकार लोगों से मिलना हुआ। उनमें एक थे ज्ञानी हरभजन सिंह जो सूरजप्रकाश की कथा किया करते। वे प्रो. साहब सिंह के शिष्य रह चुके थे। उन्हीं से रेणु को शब्दों के गहन अर्थ और भावों की गहराई का ज्ञान हुआ। पंजाबी साहित्य का समसामयिक परिचय भी उन्हीं की बदौलत हुआ। करतार सिंह बलग्गण की 'कविता' और गुरबख्श सिंह की 'प्रीतलड़ी' ने कथ्य की नई जमीन और शिल्प की अधुनातन जानकारी दी।

> 'मेरी प्रेम कविताओं को पढ़कर मेरे प्रेम संबंधों के विषय में सवाल किए जाते हैं। मेरा मानना है कि आम आदमी लोक निंदा के भय से वर्जित संबंधों को खुले में नहीं कहता, जबकि किसी क्षेत्र में ख्याति की बुलंदी पर खड़ा व्यक्ति उस भय को झटक देता है। उसकी स्वीकारोक्तियां उसका गुण बन जाती हैं। क्या कोई आम औरत अमृता प्रीतम या कमलादास के स्वर में अपनी बात कह सकती है?'-हरिभजन सिंह रेणु

रेणू को एक रास्ता मिल गया। उसी राह पर उसकी भेंट प्रो. छीना, प्रो. साकी, डा. गुरचरण सिंह, डा. जीत सिंह सीतल, डा. प्रेम सिंह आदि विख्यात साहित्यकारों से हुई। उसकी पहली कविता 1962 में अमृतसर से प्रकाशित 'कहानी' पत्रिका में प्रकाशित हुई। इसके बाद अनेक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशन का सिलसिला शुरू हो गया। कविता क्या है, यह रेणु को पता चल गया। उसने कहा-मन की कोमल, अतृप्त, अपूर्ण भावनाओं की वेगमयी अभिव्यक्ति और कल्पनाओं को यथार्थ होते देखने की प्रबल इच्छा ही कविता है।

अपनी रचना प्रक्रिया के विषय में रेणु का कहना है कि कोई भी भाषा इतनी गरीब नहीं होती कि वह किसी भाव को खूबसूरती से व्यक्त न कर सके। कवि नए शब्दों का निर्माण भी करता है। कहते हैं कि टैगोर ने दो हजार नए शब्द बंगला भाषा को दिए। इसलिए कमी भाषा में नहीं, लेखक के ज्ञानकोश में हो सकती है। हां, कई बार ऐसा होता है कि भावावेग इतना प्रबल होता है कि विचार प्रवाह को शब्द पकड़ नहीं पाते। अक्सर जो सोचा जाता है, वह सम्पूर्णत: लिखा नहीं जा सकता। विचार जिस प्रकार आते हैं, उसी तरह लिखे नहीं जा सकते। लिखते वक्त कुछ परिवर्तन जरूरी हैं। यह रचना प्रक्रिया का हिस्सा है न कि कवि की कमजोरी। कई साधारण शब्द भी गहरा अर्थ दे जाते हैं। निर्भर करता है शब्दों पर, शब्दों की यथास्थान जड़त पर। कई बार बीच में छोड़ी बात भी उंगली पकड़ कर दूर तक ले जाती है। कवि-मन तो वह वस्तु भंडार है, इसमें जितना जीवन अनुभव संग्रहीत किया जाए, उससे कई गुणा अधिक और कई रूपों में प्राप्त किया जा सकता है। हमारा लोक विरसा बहुत समृद्ध है।

कविता का अपना सच है। वास्तव में वह कल्पना का सच होता है। कई बार कोई घटना इतनी अप्रत्याशित और त्रासद होती है कि उस क्षण कविता भी निष्प्राण हो जाती है। ऐसे ही क्षण को रेणू ने शब्द दिए-

मेरी कविता दस्सां किस थां गुम्मी है,
भीड़ां चौंक च मिद्धी है कमजोर तरहां।

(मेरी कविता कहां खो गई? उसे तो एक कमजोर व्यक्ति की तरह चौक में इकट्ठी हुई भीड़ ने कुचल दिया।)

सिरसा में एक बड़ी हवेली है, जिसके बीच में एक सार्वजनिक गली गुजरती है। गली चलते व्यक्ति को दोनों तरफ हवेली की दीवारों पर बने पौराणिक चित्र सहज ही दिख जाते हैं। भारतीय इतिहास के पात्रों और मिथकीय देवी-देवताओं संबंधी इन चित्रों ने रेणु के किशोर मन को प्रभावित किया था। उसने न केवल इनके विष्य में प्राचीन ग्रंथों से अधिक जानकारी प्राप्त की, अपितु इन मिथकीय पात्रों को अपनी कविता में नए अर्थ दिए।

उन मिथकों का सौंदर्य रेणु की निम्न कविताओं में देखा जा सकता है।

सेह का तकला, इतिहास बोलदा हां, वसीयत, किते गिया ही नहीं,
केहड़ी लीला है बुध फेर मुस्कराया है।

रेणु की पहली पुस्तक 'भुक्ख'(भूख) 1970 में प्रकाशित हुई। उसकी कविता जिस परम्परा से होकर गुजरी, उसमें प्यार और विरह की जड़ें बहुत गहरी हैं। 'भुक्ख' में रेणु की कलम उसी रंग में डूबी हुई है-अमृता प्रीतम, शिव बटालवी और मोहन सिंह के रूमानी लेखन का प्रभाव उसकी कविता में स्पष्ट दिखाई देता है। किंतु उसकी परवर्ती रचनाओं में सामाजिक सरोकार हावी हुए हैं। प्रगतिशील विचारधारा से वह इस कदर आक्रांत हुआ कि कविता उसके लिए वैयक्तिक भावाभिव्यक्ति की बजाए लोकचिंतन में बदल गई। दूसरी पुस्तक 'अगन पंखेरू' भाषा विभाग हरियाणा द्वारा तथा तीसरी 'मस्तक अंदर सूरज' हरियाणा साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत हुई। चौथी पुस्तक 'अंटीने ते बैठी सोनचिड़ी' (1990) को हरियाणा पंजाबी साहित्य अकादमी ने वर्ष 1999-2000 की श्रेष्ठ काव्य कृति का पुरस्कार प्रदान किया। विद्वान समीक्षकों तथा सामान्य पाठकों ने रेणु की विचार परिपक्वता तथा भावप्रवणता की एक स्वर में सराहना की। 'अगन पंखेरू' तक आकर जहां कविता धर्म की नकारात्मक भूमिका के प्रति सचेत हुई वहां रेणु भी धार्मिक पाखंडों-सामाजिक रूढ़ियों से मुक्त हो गया और खुदा की जात से मुनकिर।

जैसा कि कहा गया है 'भुक्ख' के बाद की कृतियों में रेणु का विचार पक्ष प्रबल रूप में प्रकट हुआ है। 'अगन पंखेरू' में वह विद्रोही और जुझारू हुआ है, लेकिन मानवीय मूल्यों के प्रति सचेत रहते हुए। देखा गया है कि विचार से लैस कविता का शिल्प शिथिल हो जाता है किंतु रेणु की कविता इस दोष से मुक्त है। कविता का स्वर कहीं भी उपदेशात्मक या प्रचारात्मक नहीं होता और इस तरह उसका कलात्मक पक्ष आहत होने से बचा रहता है। 'मस्तक अंदर सूरज' में सूरज का प्रतीक प्राय: सभी प्रगतिशील कवियों की तरह ऊर्जाधर्मा है और समाजार्थिक अंधकार के नकार के रूप में उभरता है। इंकलाब प्रगतिशील कवियों का सर्वस्वीकृत लक्ष्य रहा है, रेणु भी उसी दिशा में अग्रसर है। 'अंटीने ते बैठी सोनचिड़ी' में रेणु एक दृढ़ निश्चयी कवि के रूप में पाले के एक तरफ खड़ा हो जाता है। उसके सामने खड़े हैं समाज विरोधी तत्व, कविता को चुटकुलों में बदलते कवियों की भौंडी हरकतें, निहित स्वार्थों की पूर्ति के लिए पाले बदलते साहित्यकार, जनहित के मुद्दों का बहाना बनाकर जेबें भरते राजनेता। कहा रेणु ने -

सच दे पहरेदार/झूठ की बोली बोलदे ने

हुण गंगा तपदे ठारण लई नहीं

जहर फैलावण लई ल्याई जांदी है।

(अंटीने ते बैठी सोनचिड़ी से)

रेणु की रचना प्रक्रिया के विषय में एक मार्क्सवादी समीक्षक डा. सुखदेव सिंह ने लिखा - वह लकड़ी या लोहे के टुकड़े को मनचाहा रूप देते हुए शब्दों में भी मनचाहे अर्थ निकालने का हुनर जानता है। अनुभव से तपकर लेखन में प्रवृत्त रेणु के हाथ में कलम एक गर्म सरिए की तरह है: वह दांत नहीं पीसता, गर्म सरिये को पलोसता रहता है और जिस शब्द के पास तीर की नोक सी जीभ न हो उसे जंग लगी कील की तरह कूड़ें में फैंक देता है।

एक सृजनशील पंजाबी आलोचक ने 'अंटीने ते बैठी सोनचिड़ी' संग्रह पर टिप्पणी करते हुए कहा है-महाभारत तथा रामायण के नायक-नायिकाओं की नई परिस्थितियों के अनुसार प्रस्तुति, सिख इतिहास के नायकों को नए अर्थ देने का कमाल, अछूते प्रतीक तथा बिम्बों का प्रयोग, सहज भाषा, नई शैली कवि को दूसरे कवियों से अलग ही नहीं करती, उसे मजबूती से पैर रखने की धरती प्रदान करती है। समग्र कविता अध्ययन के लिए नए मानदण्डों की मांग करती है। टिप्पणी का अंतिम वाक्य औपचारिक न होकर सारगर्भित है। इस विषय में हम आगे चर्चा करेंगे।

रेणु को पढ़ते हुए बेसाख्ता कबीर याद आते हैं। देखें, रेणु को कबीर के साथ खड़ा करना कितना वाजिब है। कबीर एक-साथ निर्गुण भक्ति तथा सामाजिक प्रतिबद्धता की पक्षधर है। कबीर खड्डी पर कपड़ा बुनता है। रेणु लकड़ी-लोहे के औजारों का मिस्तरी है। यानी दोनों दिल, दिमाग और हाथ से काम करने वाले।

कबीर ने काशी के पंडितों से लोहा लिया। उसने सख्त शब्दों में कहा-जो तू बाम्हन बाम्हनी जाया, आन बाट ते क्यों नहीं आया। रेणु ने सीधे तो नहीं, कविता के दायरे में रहते हुए सामाजिक-धार्मिक रूढ़ियों का खण्डन किया। अपनी कविता 'वसीयत' में वह उच्च वर्ग को चेतावनी देता है-

लहू तां साडा इको सी ना

ते उस लहू की सौंह

असीं हुण तैथों / हर उत्तर मंगांगे।

(खूतन तो हमारा एक-सा ही था/ उसी खून की कसम/ हम तुझ से/ हर उत्तर मांगेंगे।)

साहित्य के कुछ तथाकथित 'डाक्टरों' के पांडित्य को सार्वजनिक चुनौती देने में वह पीछे नहीं रहा। इसी वजह से वह उनका दुश्मन बन गया। कबीर की तरह रेणु ने उलटबासियां नहीं लिखीं, किंतु उसकी कुछ कविताओं का अर्थ कॉलेज-विश्वविद्यालयों के अध्यापकों को समझने में मगजपच्ची करनी पड़ती है। उसकी एक गजल के निम्न शे'र के अपनी-अपनी पसंद के अर्थ निकाले गए हैं-

जित्थे जाके मर गिया है, हौंसला इंसान दा

रब्ब पैदा हो गिया है, बंदगी दे वास्ते।

रेणु की प्रेम कविताएं (कबीर के भक्ति काव्य की तरह) शारीरिक वासना से ऊपर उठी हुई हैं। उन पर आध्यामिकता का लेबल तो नहीं लगाया जा सकता, किंतु उदात्त प्रेम की भावना से जरूर पूरित हैं। यह भी कि उन कविताओं की पृष्ठभूमि में देह नहीं है, यह नहीं कहा जा सकता। कबीर के लिए प्रेम का घर 'खाला का घर' नहीं है, रेणु भी मिर्जा और फरहाद की तरह

मौसम की मार झेलना और पहाड़ काटने के कष्ट उठाना चाहता है।

सिखर दुपहरे जंड दे थल्ले ना सौवांगे,

तेसे नाल पहाड़ करांगे कणियां-कणियां।

रेणु जहां कबीर से अलग खड़ा है, उसका नास्तिक दर्शन में अटूट विश्वास। किंतु सोद्देश्य रचनाकर्म में आस्था तथा अग्निधर्मा सच की पक्षधरता उसे फिर कबीर के नजदीक ले जाती है।

एक कविता रेणु ने शष्ठि पूर्ति के अवसर पर एक अनौपचारिक गोष्ठी में सुनाई-'मेरे नाल तुरो' (मेरे साथ चलो)। इस छोटी सी कविता के आकलन के लिए क्या नए मापदंड दरकार नहीं, जिनकी तरफ ऊपर एक टिप्पणी में संकेत किया गया है। विवेच्य कविता अर्थों के इतने दरवाजे खोलती है कि उनमें प्रवेश करने पर साहस एक समारोह में बदल जाता है। अच्छी दुनिया के निर्माण की अदम्य इच्छा, अंधेरे

के विरुद्ध लामबंदी और अन्याय के खिलाफ रणभेरी के स्वर सुनाई देते हैं। कविता की शुरुआती पंक्ति (मैंने कब कहा/ मेरे साथ चलो) और अंत में इसके दोहराव का व्यंग्य इतना ही चुनौती भरा है जितना कबीर का यह दोहा-

कबिरा खड़ा बाजार में लिए लुकाठी हाथ
जो घर जारे आपना चले हमारे साथ।

(यहां 'बाजार' सार्वजनिक चुनौती का प्रतीक है तो 'लुकाठी' प्रकाश, जागरूकता, संघर्ष प्रहार, परिवर्तन आदि का बहुअर्थी प्रतीक है। दूसरी पंक्ति में है उद्देश्य की पूर्ति हेतु लामबंदी तथा पूर्ण न्यौछावर भाव, आज की भाषा में अटूट प्रतिबद्धता।)

'मेरे नाल तुरो' की समालोचना करते समय उम्मीद है, पंजाबी समीक्षक इसकी वस्तु और कला का आकलन किसी घिसीपिटी शब्दावली और भोथरे औजारों से नहीं करेंगे। इसके मारक फैलाव और ऊर्जा के सैलाब को समेटने के लिए वे पश्चिम के, विशेषत: अंग्रेजी के आलोचक को ध्यान में रखेंगे जो कविता की गहराई तक जाने में अधिक अध्यवसायी रहा है। शेक्सपीयर, वर्ड्वर्थ, वायरन, शेली, कीट्स, टेनीसन आदि की कविता को क्लासिकी में बदलने का बड़ा श्रेय अंग्रेजी के समालोचकों को जाता है। (मैक्समूलर, गेटे के बिना हमारा संस्कृत वाड्मय भी अपने प्राचीन वैभव को वर्तमान में प्रकट कर पाता)। कीट्स की प्रसिद्ध कविता 'ला बैले डेम सैंस मर्सी' में चार शब्दों की एक पंक्ति-'एंड नो बड्र्स सिंग' के भाव सौंदर्य को आलोचकों ने सिर पर बिठा लिया। समालोचकों में इतनी सघन आत्मीयता भारतीय भाषाओं में कम देखने में आई है। हिन्दी कविता में, पंजाबी में भी यही स्थिति होगी, क्या किसी एक वजनदार पंक्ति को समालोचक ने रेखांकित किया, सिवाय अज्ञेय की एकाध पंक्ति के। जबकि विभिन्न रचनाओं में अनेक पंक्तियां नाना अर्थ-छवियों से भरपूर हैं।

'मेरे नाल तुरो' की ये पंक्तियां देखें-

जे हनेरा चीर के पार करना है
तां मैं मशाल जगां लवां
कुझ गीतां दिया धुनां बना लवां
तीरा दियां मुखियां लवा लवां
(यदि अंधेरा पार करना है
तो मैं मशाल जला लहूं
कुछ गीतों की धुनें बना लूं
तीरों को सान पर चढ़ा लूं)

पहली पंक्ति में ही एक बड़ी लड़ाई लड़ने का संकेत है। किसी व्यक्ति या देश के विरुद्ध नहीं, अपितु अंधेरे के खिलाफ। अंधेरा या अन्याय जहां कहीं भी है, उसके विरुद्ध एक बड़े पैमाने पर जद्दोजहद, एक बड़ी लड़ाई।

आगे की तीनों पंक्तियां इस लड़ाई को एक सांस्कृतिक उत्सव में बदलती हैं। मशाल जलाना, गीतों की धुनें बनाना, तीरों को सान पर चढ़ाना-ये सब प्रतीक और बिम्ब उतने ही बड़े अर्थों की तहें खोलते हैं जितनी बड़ी लड़ाई है। इसलिए यह युद्ध एक संस्कृति की पृष्ठिभूमि और सांस्कृतिक परम्परा की ऊर्जा के बिना नहीं लड़ा जा सकता। अंधेरे से लड़ाई आज, कल या बरस दो बरस की लड़ाई नहीं है। इसके लिए चिरस्थायी मानसिकता विकसित करने की जरूरत है। इस तरह की मानसिकता संस्कृति का हिस्सा बने बिना संभव नहीं। इन पंक्तियों में उत्साह, सृजन की ऊर्जा और युद्धोन्माद का अद्भुत सम्मिलन है। किसी महाकाव्य के युद्ध सर्ग का परिदृश्य - जहां अंधेरे के बिलमुकाबिल रोशनी की व्यूह रचना, प्रयाणगीत की धुन, युद्धघोष, कूच का ऐलान, नगारे-रणभेरी दिखाई-सुनाई पड़ते हैं। हां, दोहराना लाजिमी है कि उक्त तीन पंक्तियों में सांस्कृतिक उत्सव प्राणवान हुआ है। युद्ध के त्रि-आयामी चित्र पूरी तरह उभरने लगते हैं-हमारी कल्पना में आकार लेते हैं मां-बहन या पत्नी के हाथ में रोली-चावल-दीप सजे थाल और उनके सामने खड़े जिरहबख्तर पहने, ढाल-तलवार-तरकश की पारम्परिक वेशभूषा में सुसज्जित योद्धा, ऊंचे उठे मस्तक पर तिलक करवाते हुए। मशाल उठाए, युद्धगीत गाते रणबांकुरों की कतारें। युद्ध एक भरा पूरा पैनोरमा।

सृजन का स्वभाव है कि उसकी गहराई तक पहुंचने के लिए सच को आग में रूपांतरित करना पड़ता है - अग्नि के तीन गुण हैं-प्रकाश, उष्मा, ऊर्जा।

ऋग्वेद की दस हजार ऋचाओं अग्नि की स्तुति में ही की गई है। ऐसा अग्निधर्मा सच कहने के लिए फक्कड़ होना लाजिम है। कबीर की तर्ज पर (जो घर जारै आपना चले हमारे साथ)। सच के प्रति रेणु की प्रतिबद्धता उसकी चारित्रिक विशिष्टता एवं सोद्देश्य रचनाधर्म में आस्था के कारण है, जिसका अहसास 'मेरे नाल तुरो' में पग-पग पर होता है।

रेणु को हरियाणा पंजाबी साहित्य अकादमी द्वारा कविता का सर्वोच्च सम्मान भाई संतोख सिंह पुरस्कार 2001 में मिल चुका है। उसकी कलम की यात्रा जारी है, क्योंकि उसने अपनी पहली पुस्तक 'भुक्ख' में स्वयं को संबोधित जो पंक्तियां कही थीं, वे आज भी सचेतक का काम करती हैं-

तुरदा रहु तूं पांधिया अजे रात बहुत है,
भुक्खां दे किस्से कहण नूं अजे बात बहुत है।

सम्पर्क: 9253100377

हरिभजन सिंह रेणु की कविताएं

ठीक कहा तुमने

तुमने ठीक ही कहा है-
जब हम तोड़ नहीं पाते
अपने इर्द-गिर्द की
अदृश्य रस्सियों के
अटूट जाल,
तब हम
दार्शनिक हो जाते हैं।

कहीं एकांत में
लोकगीत
नहीं रचते-गाते
मंत्र जपते पढ़ते हैं,
बंद कमरों में छिपकर
शब्दों के हथियार घड़ते हैं,
सिद्धांतों के घोड़ों पर सवार
स्वयं से लड़ते
स्वंय ही जीतते-हारते
और इस तरह
सच्ची-झूठी लड़ाई से
यथार्थ का किला
जीत लेते हैं।
तुमने ठीक ही कहा है
मेरे मन-मस्तिष्क
और हाथ-पैरों के बीच
कोसों का फासला है

शायद
मैं
दार्शनिक हो गया हूं।

राम-बाण

यह
आपकी
पहली जीत थी।

आपने ढूंढ लिया
मेरा
विभीषण जैसा भाई।

यह मेरी
आखिरी हार थी
आपने
जान लिया
मेरे भीतर का रहस्य।

नाभि का अमृत
बन गया हलाहल
औ'
चल गया राम-बाण।

सांझा लंगर

आओ मेरे लाल
मेरी आंखों के तारो!
मैं अब तुम्हारी भूख
तुम्हारी रुलाई
सहन नहीं कर सकती
लो यह रस्सी
गर्दन में डालकर
झूल जाओ इस पर
सुख की नींद सोने के लिए।

मैं कभी भी अब
तुम्हारे पिता की इंतजार नहीं करूंगी
जो कल कह गया था-
'अब नहीं रहा जाता यहां
मैं किसी दूसरे मौहल्ले में जाऊंगा
शायद वहां सांझा-लंगर लगा हो।'

बाबा पूछेगा

गली-बाजारों में/निकलती है भीड़
कभी इस ओर से
कभी दूसरे छोर से
हाथों में बर्छे लिए
और त्रिशूल उठाए-
'अकाल' 'हरहर' महादेव के जयकारों से
कांपती है हवा
दानवता अपने पंजों से धूल उड़ाती
मानवता सहमी खड़ी
धमाकों की आवाज से
वातावरण में घुटन भर गई
परिंदे असमय अपने घरों को लौट आए
देखते हैं, घोंसलों से नीचे गिरे अपने बच्चों को!
सिर में भर गया है बारूदी धूआं
चीर-चीर गए अंतड़ियों और कलेजे को
लोहे के कंटीले-नुकीले टुकड़े
कबूतर की गुटरगूं दम तोड़ गई
बिल्ली की जकड़न में
लहू के ताल में तैर रही है जिंदगी
मांस का लोथड़ा बनकर!
मैं सोचता हूं-
घर जाकर क्या कहूंगा-
कौन-कौन मरे?
सिर वाले के सिर पर केश नहीं
सिरहीन के गले में नहीं है जनेऊ-
राम सिंह या गोबिंद राम?
मेरे लहू सने हाथ देखकर
यदि नौवें बाबे ने पूछा-
ये किस के लहू से रंगे हैं
तो मैं कैसे कहूंगा-
'तुम्हारे ही लहू से'
पर बाबा पूछेगा ही क्यों
वह जानता है
उसका ही कोई सहजधारी या सिक्ख पुत्तर
शैतान की बलि चढ़ा है।
फिर सोचता हूं-
बाबा अपने महान कर्म के आसन पर
और मैं
अपने 'महाधर्म' की खूनी-धरती पर
कैसे एक-दूसरे से आंख मिलाएंगे?

बनवास

वनों की ओर जाना ही
नहीं होता
बनवास

जब भी
अकेलापन करता है
उदास

ख्यालों के
कुरंग नाचते हैं
चुप्पी देती है ताल
उल्लू चीखते हैं
बिच्छू डसते हैं
नाग रेंगते हैं
आस-पास

हम
अपने भीतर के जंगल में
पलों में
वर्षों का
भोग लेते हैं
बनवास।

सीढ़ी

मनुष्य
जीवनभर
तलाशता है सीढ़ी
ताकि छू सके
कोई ऊंची चोटी

एक ऊंचाई के बाद
तलाशता है दूसरी सीढ़ी
औ' हर ऊंचाई के बाद
नकारता है
पहली सीढ़ी

सीढ़ी है
जो नहीं नकारती
अपना धर्म-कर्म
वह फिर सेवा के लिए हाजिर होती है

यह अलग बात है
कहीं 'सीढ़ी' मैं हूं
कहीं 'सीढ़ी' तुम हो
कहीं 'वह' है और कहीं कोई और।

उपरोक्त कविताओं का भाषान्तर : पूरन मुद्गल व मोहन सपरा

वैश्वीकरण

मैं
खौफनाक
चाबुकधारी नहीं
कांप जाओगे जिससे।

मैं पुष्प अणु हूं
तुम्हारी सांसों
तुम्हारे लहु में
समा जाऊंगा

मस्तिष्क पर बैठ
करके सम्मोहित
कर दूंगा मदहोश।

और फिर
मेरी नजर के सामने
नाचते गाते
कहोगे

हम आजाद हैं
सोच भी सकते हैं।

कहा था न

मैंने
तुम्हें कहा था न
मत कर
कबीर-कबीर

और अब
शहर के बाहर
खड़ा रह अकेला।

अपने फुंके घर का
देख तमाशा

हक सच की
आवाज लगाता

प्रतिकर्म

मुझे मत कहना
गर मैं
कविता करते-करते
शब्दों की जुगाली करने लगूं
और सभ्य भाषा बोलते-बोलते
बौराये शराबी की तरह
चिल्लाने लगूं
बेइखलाकी पर उतर जाऊं

तुम्हारे द्वार की ईंट
फेंकू तुम्हारी ही ओर।

तुम जो अरसे से
मेरे पैर की अंगुली को
रोंद रहे हो अपने जूतों तले
मेरे अंदर ठोक रहे हो
कुछ अनघड़ा सा

सभी एक नूर के जाये
मानव! यही कर्म लिखाए
फिर कैसा शिकवा
गर मानव, मानव को खाए?

उधेड़ते जाओ तुम
मेरी उम्र
परत दर परत
और चाहो कि मैं मौन रहूं
या फिर
कविता सरीखे शब्द कहूं

इससे पहले कि
मेरे
कलम जैसे हाथों में
नाखून उग आएं
और अंदर का जाग उठे
सोया हैवान

मेरी चीख सुनो
मेरी आवाज सुनो

तुम कबीर न बनना

जब
मेरे दोस्त
मुझे कबीर बना रहे थे

मैं प्यादों की ताकत से
ऊंटों की शह मात
बचा रहा था
घोड़े दौड़ा रहा था

तभी
मेरे भीतर बैठा कबीर
कह रहा था
तुम कबीर मत बनना।

ये अक्षरों
गोटियों का खेल त्याग
और मेरे साथ ताणा बुन
ध्यान दे
घर का
गुजारा चलाती
लोई का
कमाले को किसी काम लगा
धूणे पर फिरता है
उसको हटा।

कबीर बनेगा
तो लोग कहेंगे
गंगा घाट मिला
गुमनाम विधवा ब्राह्मणी का
लावारिस है।

नीरू मुस्लमान के घर पला
कबीर जुलाहा है
अंधेरे में पड़े
हमारे गुरु ने
पांव से छूकर ज्ञानी बनाया है

दिन में बुनता और गाता है
रात भर जागता और रोता है
दिल में आयी कहता है
मुंह में आयी बकता है
काशी से निकल कर मगहर आया
कहीं की मिट्टी कहीं ले आया
राम रहीम इक सार उचारे
अढ़ाई अक्षर पढ़े बेचारे।

तुम कबीर मत बनना

मैंने धीरे से कहा
ताणा तो मैं भी डाल लेता हूं
चादर तो मैं भी बुन लेता हूं।

पर
सिंह बकरी को खाता रहे
मंदिर मस्जिद लड़वाते रहें
किसी कमाल के हिस्से
चरखा सूत न आए।
लहू धब्बे धोते-पोंछते
कालिख मिट्टी बुहारते
हाथ काले हो जाएं
तो मैं क्या करूं।
मुझ से धरी नहीं जाती चादर
ज्यों की त्यों।

तो मुझे लगा
वो भी मन में सोच रहा था
कबीर को किसने कहा था
कबीर बन! कबीर बन!

उपरोक्त कविताओं का भाषान्तर : गीता 'गीतांजलि'

संवाद

भाषा हमारे अस्तित्व का मूल

विश्वविख्यात भाषा वैज्ञानिक, दार्शनिक, वामपंथी लेखक नोम चोम्स्की ने भाषाविज्ञान संबंधी कई क्रांतिकारी सिद्धांतों का सूत्रपात किया। भाषा और भाषा के विकास को लेकर उनका यह साक्षात्कार विज्ञान पत्रिका 'डिस्कवर' में 29 नवम्बर 2011 को प्रकाशित हुआ था। उनसे यह बातचीत 'डिस्कवर' के संवाददाता वेलरी रॉस ने की थी। इसका अनुवाद वरिष्ठ लेखक-पत्रकार आशुतोष उपाध्याय ने किया है।

सदियों से विशेषज्ञ यह मानते रहे हैं कि हर भाषा अनूठी होती है। फिर एक दिन 1956 में भाषाविज्ञान के एक युवा प्रोफेसर ने शीर्ष अमेरिकी शिक्षा संस्थान एमआईटी में सूचना सिद्धांत पर आयोजित एक गोष्ठी में अपना ऐतिहासिक भाषण दिया। उन्होंने तर्क दिया कि प्रत्येक अर्थपूर्ण वाक्य न सिर्फ अपनी भाषा के नियमों का, बल्कि सभी भाषाओं पर लागू होने वाले वैश्विक व्याकरण का भी पालन करता है। यही नहीं, बच्चे बड़ों की बातचीत की नकल कर या अपने बाहरी परिवेश से भाषा सीखने की बजाए भाषा में महारत प्राप्त करने की अंदरूनी क्षमता से परिपूर्ण होते हैं। यह एक ऐसी शक्ति है, जो जैविक विकास ने सिर्फ हम मनुष्यों को सौंपी है। युवा प्रोफेसर के इस क्रांतिकारी विचार ने रातों-रात भाषाविदों की सोच को बदलने की शुरूआत कर दी।

एवराम नोम चोमस्की का जन्म 7 दिसम्बर, 1928 को अमेरिकी नगर फिलाडेल्फिया में हुआ था। उनके पिता विलियम चोम्स्की हिब्रू भाषा के विद्वान थे और मां एल्सी सिमोनोफ्स्की भी विदुषी व बाल पुस्तकों की लेखिका थीं। नोम ने बचपन में ही मध्यकालीन हिब्रू व्याकरण पर अपने पिता द्वारा लिखी पाण्डुलिपि पढ़ डाली, जिसने उनके भविष्य के काम की जमीन तैयार की। सन् 1955 तक वे एमआईटी में भाषाविज्ञान पढ़ाने लगे। यहां रहकर उन्होंने अपने भाषाविज्ञान संबंधी क्रांतिकारी सिद्धांतों का सूत्रपात किया। चोम्स्की उस नज़रिए को चुनौती देते हें, जिससे हम आज भी खुद को देखते हैं। वे कहते हैं, 'भाषा हमारे अस्तित्व का मूल है। हम हर वक्त भाषा में लीन रहते हैं। जब हम सड़क पर चल रहे होते हैं, तो खुद से अपनी बातचीत को रोकने के लिए जबरदस्त इच्छाशक्ति की जरूरत पड़ती है। क्योंकि खुद के साथ हमारी बातचीत निरंतर चलती रहती है।'

चोम्स्की ने राजनीति से दूरी बनाए रखने की वैज्ञानिकों की परम्परा के विपरीत सक्रिय राजनीति में बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया। वे वियतनाम मे अमेरिकी आक्रमण के मुखर विरोधी थे और उन्होंने 1967 के प्रसिद्ध पेंटागन विरोधी मार्च के आयोजन में भी मदद दी। जब इस आंदोलन के नेता गिरफ्तार कर लिए गए तो उन्हें जेल में प्रख्यात उपन्यासकार नॉर्मन मेलर के साथ रखा गया। मेलर ने अपनी पुस्तक 'आर्मीज ऑफ द नाइट' में चोम्स्की को दुबला-पतला, तीखे नाक-नक्श और खास लहजे वाला ऐसा शख्स बताया, जिसकी सोहबत में भलमनसाहत व दृढ़ नैतिक बल की महक आती है।

चोम्स्की के साथ यहां पेश की जा रही बातचीत कनेक्टीकट की पत्रकार मैरिऑन लांग के साथ कई तयशुदा बैठकों के निरस्त होने के बाद की गई। लांग बताती हैं, 'वह चोम्स्की के लिए बहुत मुश्किल समय था। पत्नी गंभीर रूप बीमार थीं और वे उनकी सेवा में जुटे थे। इस बातचीत के महज 10 दिन पहले वे गुजर गईं। इस हादसे के बाद चोम्स्की का यह पहला साक्षात्कार होना था, लेकिन वे इसके लिए राजी हो गए। बाद में उन्होंने 'डिस्कवर' संवाददाता वेलरी रॉस के कई सवालों के जवाब दिए।

प्रश्न - आप इन्सानी भाषा को अनोखा गुण बताते हैं। कौन-सी बात इसे खास बनाती है?

मनुष्य दूसरे प्राणियों से फर्क हैं और इस लिहाज से सब मनुष्य मूलत: एक जैसे होते हैं। अगर अमेजन के शिकार-संग्राहक आदिवासी समुदाय के किसी बच्चे को बोस्टन में पाला-पोसा जाए तो वह भाषाई क्षमता के मामले में यहां पल-बढ़ रहे मेरे बच्चों से जरा भी फर्क नहीं होगा। इससे उलटी परिस्थिति में भी यही होगा। यानी बोस्टन का कोई बच्चा अमेजन आदिवासियों के बीच पले-बढ़े तो उनकी भाषा-बोली सहज ढंग से बोलने लगेगा। यह अनोखा इन्सानी खजाना, जो हम सबके पास है, हमारी संस्कृति व हमारे कल्पनाशील बौद्धिक जीवन के बड़े हिस्से का बुनियादी तत्व है। इसी वजह से हम योजनाएं बना पाते हैं, सृजनात्मक कलाकर्म करते हैं और जटिल समाजों का निर्माण कर लेते हैं।

प्रश्न - भाषा की इस ताकत का जन्म कब और कैसे हुआ?

अगर आप पुरातात्विक अभिलेखों को देखें तो करीब डेढ़ लाख से पचहतर हजार वर्ष पूर्व समय की एक छोटी सी खिड़की में रचनात्मक विस्फोट होता दिखाई पड़ता है। इस काल में अचानक जटिल हस्तशिल्प, प्रतीकात्मक निरूपण, आकाशीय घटनाओं का मापन तथा जटिल सामाजिक संरचनाओं जैसी सृजनात्मक गतिविधियों का विस्फोट देखने को मिलता है। प्रागैतिहासिक काल का लगभग हर विशेषज्ञ इस घटना को भाषा के अचानक उद्‌भव के साथ जोड़ता है। ऐसा नहीं लगता कि इस घटना का मानव के शारीरिक बदलावों से कोई संबंध है। आज के इन्सान के बोलने व सुनने के तंत्र बिल्कुल वैसे ही हैं, जैसे छह लाख साल

पहले के मनुष्य के थे। मगर मनुष्य में अभूतपूर्व संज्ञानात्मक बदलाव आया है। कोई नहीं जानता क्यों?

प्रश्न - इन्सानी भाषा में आपकी दिलचस्पी कब शुरू हुई?

बहुत छोटी उम्र में मुझे अपने पिता से आधुनिक हिब्रू साहित्य एवं अन्य पाठ्य सामग्री पढ़ने को मिली। 1940 के आसपास उन्हें फिलाडेल्फिया की एक हिब्रू संस्था ड्रॉप्सी कालेज से पीएच.डी. की डिग्री मिली। वे सीमेटिक थे और मध्यकालीन हिब्रू व्याकरण पर काम करते थे। मुझे याद नहीं कि मैंने अपने पिता की किताब के अधिकारिक तौर पर प्रूफ पढ़े थे या नहीं, लेकिन मैंने उसे पढ़ा जरूर था। कुछ हद तक व्याकरण संबंधी आम समझ मुझे इसी किताब से मिली, लेकिन इससे पीछे जाएं, तो व्याकरण के अध्ययन का मतलब था, ध्वनियों को व्यवस्थित करना, कालों को देखना, इन चीजों को सूचीबद्ध करना और यह देखना कि ये एक-दूसरे के साथ कैसे जुड़ती हैं।

प्रश्न - भाषाविद् ऐतिहासिक व्याकरण और विवरणात्मक व्याकरण में फर्क करते हैं। इन दोनों में क्या अंतर है?

ऐतिहासिक व्याकरण कुछ इस तरह का अध्ययन है जैसे, किस तरह आधुनिक अंग्रेजी का मध्यकालीन अंग्रेजी से विकास हुआ। किस तरह वह मध्यकालीन, प्रारंभिक व पुरानी अंग्रेजी से निकली और किस तरह वह जर्मेनिक से और जर्मेनिक उस भाषा स्रोत से विकसित हुई जिसे हम प्रोटो-इंडो-यूरोपियन कहते हैं और जिसे कोई नहीं बोलता। इसलिए इसे फिर से गढ़ना पड़ता है। भाषाएं समय के साथ कैसे विकसित होती हैं, यह इस बात को पुनर्निर्मित करने का एक प्रयास है। आप इसे जैविक उद्विकास (बायोलॉजिकल इवोल्यूशन) के अध्ययन के समकक्ष मान सकते हैं। विवरणात्मक व्याकरण किसी समाज या व्यक्ति-विशेष के लिए मौजूदा भाषाई व्यवस्था को जानने का प्रयास है। आप इस अंतर को जैविक विकास और मनोविज्ञान के बीच फर्क की तरह देख सकते हैं।

प्रश्न - और आपके पिता के जमाने के भाषाविद्, वे क्या करते थे?

वे वास्तविक धरातल पर इस्तेमाल की जा रही भाषाई विधियों पर काम करते थे। उदाहरण के लिए अगर आप चेरोकी समुदाय के व्याकरण पर काम करना चाहते हैं, तो आप उस समुदाय के बीच जाएंगे। और स्थानीय बोलने वालों से सूचनाएं इकट्ठी करेंगे।

प्रश्न - ये भाषाविद् किस तरह के सवाल पूछते थे?

मान लीजिए आप चीन से आए मानवशास्त्रीय भाषाविद् हैं और मेरी भाषा का अध्ययन करना चाहते हैं। पहली बात आप यह जानना चाहेंगे कि मैं किस तरह की ध्वनियों का इस्तेमाल करता हूं। और फिर आप पूछेंगे कि ये ध्वनियां एक साथ कैसे जुड़ती हैं। उदाहरण के लिए मैं 'ब्निक' न बोल कर 'ब्लिक' क्यों बोलता हूं और इन ध्वनियों को कैसे व्यवस्थित किया जाता है? उन्हें किस तरह जोड़ा जाता है? अगर आप उस ढंग को देखें, जिसके मुताबिक शब्द के ढांचे को व्यवस्थित किया जाता है, तो क्या किसी क्रिया में भूतकाल भी होता है? अगर होता है तो क्या यह क्रिया के बाद होता है या इसके पहले? या यह किसी और तरह की चीज है? और आप इसी तरह के कई और सवाल पूछते चले जाते हैं।

प्रश्न - लेकिन आप तो इस नजरिए से सहमत नहीं थे। क्यों?

मैं उस वक्त पेन यूनिवर्सिटी में था और मेरी ग्रेजुएट थीसिस का शीर्षक था- बोलचाल की हिब्रू का आधुनिक व्याकरण। इस भाषा की मेरी समझ खासी अच्छी थी। मैंने भी इस पर ठीक उसी तरह काम करना शुरू किया, जैसा हमें उस वक्त पढ़ाया जाता था। मुझे एक हिब्रूभाषी सूचनादाता मिला, जिससे मैंने सवाल पूछने शुरू किए और मुझे आंकड़े मिलने लगे। एक मौका ऐसा आया कि अचानक मुझे लगा: क्या बेहूदगी है। मैं ऐसे सवाल पूछ रहा हूं, जिनके जवाब मैं पहले से ही जानता हूं।

प्रश्न - जल्द ही आपने भाषाविज्ञान में अपने शोध की निहायत नई विधि विकसित कर ली। ये विचार कैसे जन्मे?

इससे पहले 1950 में, जब मैं हार्वर्ड में स्नातक छात्र था, यह आम धारणा थी कि अन्य मानवीय गतिविधियों की तरह भाषा भी सीखी जाने वाली आदतों का एक संग्रह है। यह उसी तरह सीखी जाती है जैसे पालतू जानवर प्रशिक्षित किए जाते हैं। यानी प्रबलीकरण के जरिए। उन दिनों यह धारणा एक तरह से अंधविश्वास की तरह व्याप्त थी। लेकिन हम दो या तीन लोग ऐसे थे, जो इस बात से सहमत थे और हमने चीजों को बिल्कुल अलग तरह से देखना शुरू किया।

खासतौर पर, हमने कुछ बनियादी तथ्यों पर गौर किया: प्रत्येक भाषा अनगिनत सुव्यवस्थित अभिव्यक्तियों को गढ़ने और प्रकट करने का एक माध्यम है, जिसमें हर अभिव्यक्ति की एक अर्थगत् व्याख्या और ध्वन्यात्मक रूप है। इसलिए यहां ऐसी चीज है जिसे हम जेनरेटिव प्रोसीजर कहते हैं, अनगिनत वाक्यों या अभिव्यक्तियों को पैदा करने और उन्हें अपने विचार व स्नायुतंत्र से जोड़ने की क्षमता। हमें हर बार इस केंद्रीय गुण को ध्यान में रखकर शुरुआत करनी होती है। व्यवस्थित अभिव्यक्तियों और उनके अर्थ के बेरोक-टोक उत्पादन का गुण। हमारे ये विचार बाद में उस सिद्धांत के रूप में घनीभूत हुए जिसे आज हम बायोलिंग्विस्टिक फ्रेमवर्क कहते हैं। यह सिद्धांत भाषा को मानव जीव विज्ञान के एक तत्व के रूप में देखता है, ठीक वैसे ही जैसे हमारा दृष्टि-तंत्र है।

प्रश्न - आपका सिद्धांत है कि सभी मनुष्यों का एक 'वैश्विक व्याकरण' होता है। इस बात का क्या अर्थ है?

इसका मतलब इन्सानी भाषा संकाय की आनुवंशिक जड़ों से है। उदाहरण के लिए आप अपने अंतिम वाक्य पर गौर करें। यह ध्वनियों का बेतरतीब क्रम नहीं है। आपने शब्दों का अत्यंत सुनिश्चित ढांचा खड़ा किया है और इसका अत्यंत विशिष्ट भाषाई अर्थ है। इसका एक खास मतलब है, कोई दूसरा मतलब नहीं और इसकी एक खास ध्वनि है, दूसरी नहीं। बताइए, आपने यह किया कैसे? यहां दो संभावनाएं हो सकती हैं। एक, इसे एक चमत्कार मान लिया जाए। या दूसरी, आपके पास नियमों की एक आंतरिक व्यवस्था है, जो शब्दों के ढांचे और उसके अर्थ को निर्धारित करती है। मैं नहीं समझता यह एक चमत्कार की देन है।

प्रश्न - आपके भाषा-वैज्ञानिक विचारों पर शुरुआत में कैसी प्रतिक्रियाएं हुईं?

शुरु-शुरु में ज्यादातर लोगों ने हमारे विचारों को खारिज किया या इनकी उपेक्षा की। यह बिहेवियरल साइंस का दौर था, मानव क्रियाओं और व्यवहार का अध्ययन, जिसमें व्यवहार का नियंत्रण तथा रूपांतरण भी शामिल जाता है। बिहेवियरिज्म कहता है कि आप किसी व्यक्ति को मनचाहे रूप में बदल सकते हैं, बशर्ते आप उसके परिवेश व प्रशिक्षण पद्धति को ठीक से व्यवस्थित

कर सकें। मनुष्य के रूपांतरण में आनुवांशिक घटक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, इस विचार को अजनबी बताकर हल्के में लिया गया। बाद में मेरे इस विधर्मी विचार को 'इन्नेटनेस हाइपोथीसिस' का नाम दे दिया गया और इसकी भर्त्सना में रचे गए साहित्य का ढेर लग गया। आज भी आप प्रमुख शोध पत्रिकाओं में ऐसे सूत्रवाक्य पढ़ सकते हैं कि भाषा सिर्फ संस्कृति, परिवेश तथा प्रशिक्षण का परिणाम है। एक तरह से यह धारणा हमारे सहजबोध का हिस्सा बना दी गई है। हम सब भाषा सीखते हैं, चाहे वह कितनी भी मुश्किल क्यों न हो। हम पाते हैं कि परिवेश भी अपना असर छोड़ता है।

इंग्लैंड में पलने-बढ़ने वाले लोग अंग्रेजी बोलते हैं, स्वाहिली नहीं। और वास्तविक सिद्धांत-वे हमारी चेतना तक नहीं पहुंच पाते। हम अपने भीतर झांककर उन छुपे हुए सिद्धांतों को नहीं देख सकते, जो हमारे भाषाई व्यवहार को निर्धारित करते हैं और हम उन सिद्धांतों को भी नहीं देख सकते, जो हमें अपने शरीर को हिलाने की इजाजत देते हैं। यह भीतर ही भीतर रहता है।

प्रश्न - भाषा वैज्ञानिक इन छुपे हुए सिद्धांतों की खोज कैसे कर लेते हैं?

आप आंकड़ों को संग्रह कर किसी भाषा के बारे में जानकारी हासिल कर सकते हैं। मसलन, मेरी भाषा का अध्ययन कर रहा चीनी भाषाविद् इस बारे में मुझसे सवाल पूछ कर जवाब इकट्ठा कर सकता है। यह एक तरह का संग्रह होगा। दूसरे तरह का संग्रह यह हो सकता है कि लगातार तीन दिन तक जो कुछ मैं बोलूं उसे वह टेप करता रहे और किसी भाषा को सीखते और इस्तेमाल करते वक्त लोगों के दिमाग में जो कुछ चल रहा है, उसका अध्ययन कर आप भाषा के बारे में जांच-पड़ताल कर सकते हैं। आज के भाषाविदों को चाहिए कि वे उन नियमों व सिद्धांतों पर ध्यान देने का प्रयास करें, जिन्हें, उदाहरण के लिए, आप ठीक इस वक्त मेरे द्वारा गढ़े जा रहे वाक्यों का अर्थ निकालने और उन्हें समझने या फिर अपने वाक्यों को बनाने के लिए इस्तेमाल कर रहे हैं।

प्रश्न - क्या यह व्याकरण की उस पुरानी व्यवस्था जैसा नहीं, जिसे आप पहले ही खारिज कर चुके हैं?

नहीं। व्याकरण के परम्परागत अध्ययन में आप ध्वनियों व शब्द रचना पर ध्यान देते हैं और शायद थोड़ा बहुत वाक्य विन्यास पर। पिछले 50 वर्षों के उत्पादक भाषाविज्ञान (जेनरेटिव लिंग्विस्टिक्स) में आप, मसलन, यह पूछ रहे हैं कि प्रत्येक भाषा के लिए नियमों व सिद्धांतों का वह कौन-सा तंत्र है जो व्यवस्थित अभिव्यक्तियों की अनगिनत श्रृंखलाओं को तय करता है। इसके बाद आप उन्हें एक निश्चित व्याख्या से जोड़ते हैं।

प्रश्न - हमारी भाषाई समझ के साथ क्या मस्तिष्क छवियां जुड़ी हुई हैं?

मिलान के एक ग्रुप ने हाल ही में भाषा के साथ होने वाली मस्तिष्क की क्रियाशीलता संबंधी एक दिलचस्प अध्ययन किया है। उन्होंने अपने शोधपात्रों को निरर्थक भाषाओं वाली दो तरह की लिखित सामग्री दी। इनमें एक प्रतीकात्मक भाषा थी, जिसे इतालवी भाषा के नियमों के आधार पर गढ़ा गया था। हालांकि शोधपात्र इसे नहीं जानते थे। दूसरी को वैश्विक व्याकरण के नियमों का उल्लंघन कर तैयार किया गया था। एक खास मामले में, माना आप किसी वाक्य का निषेध करना चाहते हैं, 'जॉन यहां था, जॉन वहां नहीं था।' कुछ निश्चित चीजें हैं, जिन्हें करने की इजाजत भाषाओं में आपको दी जाती है। आप 'नहीं' शब्द को कुछ स्थानों में रख सकते हैं, लेकिन कुछ अन्य स्थानों में नहीं रख सकते। इसलिए पहली मनघड़ंत भाषा में आप निषेधकारी तत्व को किसी स्वीकार्य जगह पर रखते हैं, जबकि दूसरे में आप इसे अस्वीकार्य जगह पर रख देते हैं। मिलान ग्रुप ने पाया कि स्वीकार्य निरर्थक वाक्य के साथ मस्तिष्क के भाषाई क्षेत्र में सक्रियता दिखाई देती है, लेकिन अस्वीकार्य वाक्य-वे जो वैश्विक व्याकरण के नियमों का उल्लंघन करते हैं-मस्तिष्क में कोई सक्रियता पैदा नहीं करते। इसका मतलब यह हुआ कि लोग अस्वीकार्य वाक्यों के साथ भाषा की तरह नहीं, बल्कि पहेली की तरह खेल रहे थे। यह एक शुरुआती परिणाम है, लेकिन यह स्पष्ट रूप से संकेत देता है कि भाषाओं की पड़ताल से निकलने वाले भाषाई सिद्धांतों का दिमागी क्रियाशीलता के साथ गहरा रिश्ता है, जैसे कि किसी को उम्मीद और अपेक्षा हो सकती है।

प्रश्न - हाल के आनुवांशिक अध्ययन भी भाषा के बारे में कुछ इसी तरह के संकेत देते हैं। क्या यह सही है?

हाल के वर्षों में एक जीन की खोज हुई है, जिसका नाम है-फॉक्सपी2। यह जीन खास तौर पर दिलचस्प है, क्योंकि इसमें किसी किस्म का उलटफेर (म्युटेशन) होने पर भाषाई इस्तेमाल संबंधी कमजोरियां सामने आने लगती हैं। इस जीन को उस क्रिया से जोड़ा जाता है, जिसे हम ऑरोफेशियल एक्टीवेशन कहते हैं, यानी बोलते वक्त हम अपने मुंह, अपने चेहरे और जीभ को किस प्रकार नियंत्रित करते हैं। इसलिए फॉक्सपी2 का संभवतः भाषा के इस्तेमाल के साथ कोई रिश्ता है। यह जीन सिर्फ मनुष्यों में ही नहीं, बल्कि कई अन्य प्राणियों में भी पाया जाता है और अलग-अलग प्रजातियों में अलग-अलग ढंग से काम करता है। ये जीन कोई एक काम नहीं करता, लेकिन इस खोज को भाषा के कुछ पहलुओं के आनुवांशिक आधार की मौजूदगी की पुष्टि की दिशा में एक दिलचस्प शुरुआती कदम माना जा सकता है।

प्रश्न - आप कहते हैं कि जन्मजात भाषाई क्षमता मनुष्यों की विशिष्टता है, मगर फॉक्सपी2 की सतत् कई प्रजातियों में देखी गई है। क्या ये दोनों बातें परस्पर विरोधाभासी नहीं हैं?

यह बात लगभग अर्थहीन है कि इसमें प्रजातिगत सततता है। इसमें किसी को संदेह नहीं कि मनुष्य का भाषाई तंत्र जीन, तंत्रिका तंत्र आदि पर आधारित है। भाषा के प्रयोग, समझ, अधिग्रहण और निर्माण में शामिल पद्धतियां एक स्तर तक सम्पूर्ण जंतु जगत में दिखाई देती हैं और सच कहें तो सम्पूर्ण जीव जगत में दिखाई देती हैं। कुछेक को तो आप जीवाणुओं में भी देख सकते हैं, लेकिन यह बात इसके उद्विकास या समान मूल से पैदा होने का शायद ही कोई संकेत देती है। भाषा उत्पन्न करने जैसे विशिष्ट मामले में कोई प्रजाति अगर मनुष्य के सबसे ज्यादा नजदीक कही जा सकती है, तो वह है पक्षी। लेकिन इसकी वजह समान उद्गम नहीं है। यह एक अलग परिघटना है, जिसे हम कनवर्जेन्स कहते हैं - लगभग एक जैसी व्यवस्थाओं का अलग-अलग स्वतंत्र रूप से विकास। फॉक्सपी2 खासी दिलचस्प है, मगर यह ज्यादातर भाषा के हाशिए पर रहने वाले हिस्सों का निर्धारण करती है, जैसे भाषा का (भौतिक) उत्पादन। इसके बारे में जो कुछ भी खोजा जा रहा है, उसका भाषा-वैज्ञानिक सिद्धांतों पर प्रभाव पड़ने की संभावना बहुत कम है।

प्रश्न – पिछले 20 वर्षों से आप भाषा की 'सरलतम' (मिनिमलिस्ट) समझ पर काम कर रहे हैं। इसकी क्या जरूरतें हैं?

मान लीजिए भाषा बर्फ के एक फाहे की तरह है। यह प्रकृति के नियम के मुताबिक आकार ग्रहण करती, इस शर्त के साथ कि यह बाहरी निर्धारकों को संतुष्ट करती है। भाषा की खोज के बारे में इस नजरिए को मिनिमलिस्ट प्रोग्राम कहा जाता है। मैं समझता हूं, इसने कुछ महत्वपूर्ण परिणाम दिए हैं। इसने दिखाया है कि भाषा यकीनन कुछ शब्दार्थ संबंधी अभिव्यक्तियों का आदर्श हल है, लेकिन स्पष्ट अभिव्यक्ति के लिहाज से बहुत खराब तरीके से डिजाइन है। एक विशिष्ट आवाज निकाल कर आप 'बेसबॉल' कहते हैं, इसके लिए 'पेड़' नहीं कहते।

प्रश्न – भाषाविज्ञान के सामने बड़े सवाल कौन से हैं?

अब भी कई अनुत्तरित रिक्त स्थान हैं। कुछ सवाल 'क्या' से शुरू होने वाले हैं। जैसे – भाषा क्या है? इस वक्त आप और मैं जो कुछ कर रहे हैं, उसके नियम और सिद्धांत क्या हैं? कुछ और सवाल 'कैसे' से शुरू होते हैं। आपने और मैंने इस क्षमता को कैसे हासिल किया। हमारे आनुवांशिक भंडार व अनुभवों में और प्रकृति के नियमों में आखिर क्या छुपा हुआ है? और इसके बाद 'क्यों' से शुरू होने वाले सवाल हैं, जो सबसे कठिन हैं: भाषा के नियम ऐसे ही क्यों हैं, कुछ और तरह के क्यों नहीं? किस हद तक यह सही है कि भाषा की बुनियादी डिजाइन उन बाहरी शर्तों के अनुकूल हल पेश करती है, जिन्हें भाषा अपरिहार्य रूप से पूरा करती है? यह एक बड़ी समस्या है। भाषा की प्रकृति के बारे में जो कुछ हम जानते हैं, उसे हम किस हद तक मस्तिष्क में होने वाली क्रियाओं से जोड़कर देख सकते हैं? और अंतत: क्या भाषा के आनुवांशिक आधार के बारे में कोई गंभीर पड़ताल हुई है? इन सभी बिन्दुओं पर बेशक प्रगति दिखाई देती है, लेकिन बड़े रिक्त स्थान अब भी बने हुए हैं।

प्रश्न – हर माता-पिता इस बात पर हैरान होते हैं कि किस तरह बच्चे भाषा सीखते हैं। यह बात सहसा अविश्वसनीय लगती है कि इस प्रक्रिया के बारे में हम अब भी बहुत कम जानते हैं।

आज हम जानते हैं कि जन्म के समय एक शिशु को अपनी मां की भाषा के बारे में बहुत थोड़ी जानकारी होती है। अगर कोई दो भाषाएं जानने वाली कोई महिला उसके सामने बोले तो वह अपनी मातृभाषा और दूसरी भाषा के बीच फर्क समझ सकता है। उसके परिवेश में तमाम तरह की चीजें घट रही होती हैं, जिसे विलियम जेम्स 'बढ़ता, उभरता विभ्रम' कहते हैं। मगर शिशु किसी तरह इस जटिल परिवेश से खुद-ब-खुद उन आंकड़ों को छांट लेता है, जो भाषा से संबंध रखते हैं। कोई भी दूसरा प्राणी ऐसा नहीं कर पाता। एक चिम्पांजी ऐसा नहीं कर पाता। और बहुत जल्दी व स्वत: ढंग से शिशु एक आंतरिक तंत्र हासिल करने की दिशा में बढ़ जाता है। यह तंत्र अंतत: उस क्षमता के रूप में प्रकट होता है, जिसका इस्तेमाल हम इस वक्त कर रहे हैं। शिशु के दिमाग में क्या चल रहा है? मानव जीनोम के कौन से-तत्व इस प्रक्रिया में योगदान कर रहे हैं? ये चीजें कैसे विकसित होती हैं?-इन सब बातों को ठीक से समझना अभी बाकी है।

प्रश्न – उच्चतर स्तर पर अर्थ के बारे में क्या कहेंगे? जो महान गाथाएं लोग पीढ़ी-दर-पीढ़ी सुनाते आए हैं, उनके विषय बार-बार दोहराए जाते हैं। क्या यह दोहराव मनुष्य की जन्मजात भाषा के बारे में कुछ संकेत देता है?

जानी-पहचानी परीकथाओं में से एक कहानी एक खूबसूरत राजकुमार की है, जिसे कोई दुष्ट जादूगरनी मेंढक में बदल देती है। कहानी के अंत में एक सुंदर राजकुमारी आकर मेंढक को चूमती है और वह फिर से राजकुमार में बदल जाता है। हर बच्चा इस बात को जानता है कि वह मेंढक दरअसल राजकुमार है, लेकिन उन्हें यह कैसे पता चलता है? वह अपने प्रत्येक शारीरिक गुण के हिसाब से मेंढक है। कौन सी बात उसे राजकुमार बनाती है? यह पता चलता है कि यहां एक नियम काम करता है: लोगों व जंतुओं तथा अन्य जीवित प्राणियों को हम उनके एक गुण से पहचानते हैं, जिसे मनोवैज्ञानिक सततता (साइकिक कंटीन्युइटी) कहा जाता है। बच्चे उसकी पहचान एक तरह के दिमाग या आत्मा या एक ऐसे अंदरूनी तत्व के रूप में करते हैं, जो उनके भौतिक गुणों से स्वतंत्र है। वैज्ञानिक इस बात पर विश्वास नहीं करते, लेकिन हर बच्चा करता है और हम मनुष्य जानता है कि इस तरह दुनिया की व्याख्या कैसे की जाती है।

प्रश्न – आपकी बातों से ऐसा लगता है जैसे भाषाविज्ञान का विज्ञान बस शुरू ही हुआ है।

भाषा के बारे में कई ऐसे सरल विवरणात्मक तथ्य हैं, जिन्हें समझा नहीं गया है: वाक्य किस तरह अपना अर्थ हासिल करते हैं? उनकी आवाज कैसे बनती है? किस प्रकार दूसरे लोग उन्हें समझ लेते हैं, भाषा संगणना (कम्प्यूटेशन) में एक-रेखीयता (लीनियर ऑर्डर) का पालन क्यों नहीं करती? उदाहरण के लिए एक सरल वाक्य लीजिए, जैसे 'क्या उड़ रहे गिद्ध तैरते हैं?' आप इसे समझते हैं, हर कोई इसे समझता है। एक बच्चा इसे इस प्रश्न के रूप में लेता है कि क्या गिद्ध तैर सकते हैं। सवाल में यह नहीं पूछा जा रहा है कि क्या वे उड़ सकते हैं। आप कह सकते हैं, 'क्या जो गिद्ध उड़ रहे हैं तैरते हैं?' मतलब क्या इसे यह माना जाए कि गिद्ध जो उड़ रहे हैं तैरते हैं? ये वे नियम हैं, जिन्हें हर कोई जानता है, बिना सोचे-समझे जान लेता है, लेकिन क्यों? यह अब भी एक रहस्य है और इन नियमों के स्रोत मूलत: अनजान हैं।

•

अपना-पराया

हरिशंकर परसाई

आप किस स्कूल में शिक्षक हैं?

मैं लोकहितकारी विद्यालय में हूं। क्यों, कुछ काम है क्या?

हाँ, मेरे लड़के को स्कूल में भरती करना है।

तो हमारे स्कूल में ही भरती करा दीजिए।

पढ़ाई-वढ़ाई कैसी है?

नंबर वन! बहुत अच्छे शिक्षक हैं। बहुत अच्छा वातावरण है। बहुत अच्छा स्कूल है।

आपका बच्चा भी वहां पढ़ता होगा?

जी नहीं, मेरा बच्चा तो आदर्श विद्यालय में पढ़ता है। •

भारत में भाषा बंटवारे की राजनीति

जोगा सिंह

भारत के राजनीतिक गठन में सैद्धांतिक स्तर पर भाषा को मुख्य आधार माना गया है, परन्तु वास्तविक रूप में ऐसा हो नहीं रहा। भाषा का शिक्षा व प्रशासन आदि के साथ सीधा संबंध होने के कारण भाषा के बारे लिए गए निर्णय से गहरे परिणाम निकलते हैं। भारतीय जनगणना विभाग की ओर से भारत भाषाओं की बांट बड़ी अवैज्ञानिक व मंदभावना से प्रेरित रही है। इस पर्चे में इस अवैज्ञानिकता के सबूत पेश किए गए हैं और भारत में भाषाई विभाजन व भाषाई व्यवहार के कुछ निष्कर्ष पेश किए गए हैं :

1. भारत में भाषाओं की संख्या : 1961 की जनगणना में भारत में 1652 नई मातृ भाषाएं चिन्हित की गई हैं। 1991 की जनगणना के अनुसार भारत में 216 मातृ भाषाओं और 114 भाषाएं हैं। परन्तु 2001 की जनगणना के अनुसार भारत में 234 मातृ भाषाएं और 114 भाषाएं हैं। मातृ भाषा और भाषा के बीच अलगाव पर जनगणना विभाग का आधार स्पष्ट नहीं है, क्योंकि भाषा वैज्ञानिक क्षेत्रों में अंग्रेजी के not her tongue और language शब्द समानार्थी हैं। अगर इस बात को एक तरफ भी रख दें तो जनगणना विभाग के अलग-अलग वर्षों के आंकड़े अपने-आप में एक प्रमाण हैं कि भारतीय जनगणना विभाग भारत में भाषाओं की स्थिति बारे या तो स्पष्ट नहीं है या फिर निर्णय ईमानदारी से नहीं कर रहा।

2. भाषा-उपभाषा विभाजन का आधार : भाषा-उपभाषा विभाजन का भाषा वैज्ञानिक आधार आपसी बोध (natural intelligibility) है। मतलब यह है कि अगर दो भाषाएं बोलने वाले बिना किसी प्रशिक्षण के एक-दूसरे के भाषा रूपों को समझ सकते हैं तो वे भाषा रूप एक ही भाषा की उपभाषाएं होती हैं। इस आधार पर परख की जाए तो भारतीय जनगणना विभाग ने कुछ भाषाओं को किसी दूसरी भाषा की उपभाषाएं और कुछ उपभाषाओं को भाषाएं घोषित किया हुआ है। नीचे दिए जा रहे उदाहरण इस तथ्य को स्पष्ट करते हैं:

राती दी बुक्कली च सुत्ती दी कञका दी अक्ख खुल्ली
कच्छ-कोल अश्कें कुतै अतरै दी शीशी डुल्ली।
कञका ने माऊ गी पुच्छेआ----
मां, ए ह् केह् झुल्लेआ जे रात उड़ी मैह्की ।

उपरोक्त पंक्तियां एक डोगरी कविता से हैं, जिसको भारत सरकार ने नई भाषा का दर्जा दिया हुआ है। कोई भी पंजाबी भाषी इन पंक्तियों को सहज ही पंजाबी की किसी उपभाषा समझेगा।

इस आधार पर अब कुछ और भाषाई रूप देखते हैं :

आज हमारि या प्राचीन अर समिर्ध भासा हरचणि च किलैकि हम अपड़ी भासा प्रयोग नि करणा छाँ । हमारि नै छ्विांळ (पीढ़ी) ईं भासाथैं छ्वड़न लगीं च ।

जु आज हम अपड़ी भासा बचौणौऽ परयास नि करला त भोळ ईंन लुप्त ह्वे जाण। ये पेजाऽ माध्यमन गढ़वळि भासा कु परचार-परसार करला अर यख अपड़ी भासामा बच्यौंला। जै भारत, जै उत्तराखण्ड, जै गढ़देस!!!

यह पंक्तियां गढ़वाली भाषा में से हैं, जिसको भारतीय जनगणना विभाग ने हिन्दी की उपभाषा घोषित किया हुआ है। परन्तु कोई भी हिन्दी वक्ता गढ़वाली को इतनी आसानी से समझ नहीं सकता, जितनी आसानी से पंजाबी वक्ता डोगरी को समझ लेता है। इसलिए स्पष्ट है कि भारतीय जनगणना विभाग भाषा-उपभाषा का अलगाव वैज्ञानिक आधार पर नहीं कर रहा।

यहां यह ध्यान देने योग्य है कि भोगौलिक रूप से गढ़वाली और राजस्थानी क्षेत्र टकसाली हिन्दी (खड़ी बोली) के क्षेत्रों के साथ लगते इलाके हैं, परन्तु फिर भी इनके बीच इतना भाषाई अलगाव है कि ये अलग-अलग भाषाएं हैं, जो इलाके खड़ी बोली के इलाके को गढ़वाली और राजस्थानी भाषा इलाके के मुकाबले बहुत दूर हैं। उनके हिन्दी के भाषाई अलगाव का अंदाजा सहज ही लगाया जा सकता है, परन्तु फिर भी भारतीय जनगणना विभाग ने अवधी, बघेली, भोजपुरी, छत्तीसगढ़ी, मगही और पवारी जैसी बड़ी संख्या वाली नई भाषाओं को भी हिन्दी की उपभाषाएं घोषित किया हुआ है।

3. 8वीं सूची का आधार : भारत सरकार के भारतीय भाषाओं संबंधी राजनीतिक निर्णय की सिद्धांतहीनता सामने है। 2001 में भारत में केवल 2,26,449 व्यक्तियों ने अंग्रेजी को अपनी मां बोली लिखाया है। परन्तु अंग्रेजी भारत के हर क्षेत्र में प्रभाव जमाए बैठी है। 14,135 मां बोली भाषाओं वाली संस्कृत अनुसूचित भाषाओं में शामिल है, परन्तु 95,82,957 वाली भीली, 27,13,790 वाली गोंडी, 20,75,258 वाली खंडेसी, 17,51,489 वाली कुरुख, 10,61,352 वाली मुंडाली, 17,22,768 वाली तुलु और ऐसे ही कई अन्य का कोई वारिस नहीं है और यह भाषाएं दम तोड़ रही हैं। हैरानी की बात तो यह है कि अंग्रेजी 8वीं सूची में न होकर भारत की मालिक बनी बैठी है परन्तु 8वीं सूची में शामिल होने के बावजूद भी संथाली को कोई सरकारी रूतबा हासिल नहीं है।

4. राष्ट्रीय भाषा : भारतीय संविधान 8वीं सूची में शामिल 22 भाषाओं को राष्ट्रीय भाषाओं का नाम देता है, परन्तु इन 22

भाषाओं को ही राष्ट्रीय भाषाएं क्यों माना जाए, दूसरी भाषाओं को क्यों नहीं। भारत की सारी भाषाएं ही भारत की राष्ट्रीय भाषाएं हैं। और तो और, 22 भाषाओं को संवैधानिक रूप से राष्ट्रीय रूतबा हासिल होने के बावजूद भी सरकार का कोई न कोई नेता चौथे दिन शरारतपूर्ण तरीके से केवल हिन्दी को ही राष्ट्रीय भाषा कहता रहता है। यह खेल बड़ा खतरनाक है।

5. कुछ भयानक परिणाम : भारतीय राजनीतिक जीवन के बहुत सारे सवाल भाषा के साथ जुड़े हुए हैं। इसमें एक सवाल भारत का राजनीतिक गठन है। अगर किसी भाषा को कोई सरकारी दर्जा हासिल नहीं है, तो उसको किसी तरह की राजनीतिक सरपरस्ती हासिल नहीं हो सकती और वह भाषा भाषाई क्षेत्रों से बाहर होती जाती है। इसका परिणाम उस भाषा की निश्चित रूप में समाप्ति है। इसी कारण भारत की 196 भाषाएं यूनेस्को की समाप्ति के खतरे वाली सूची में शामिल हैं। सरकारी सरपरस्ती कैसे भाषा को जीवन दे सकती है, इसकी मिसाल खासी भाषा है, जो पहले समाप्त होने के कगार पर थी, परन्तु मणीपुर सरकार ने स्कूलों में पढ़ाई जानी शुरू करने के बाद यूनेस्को ने इसको खत्म होने की खतरे वाली सूची से बाहर निकाल लिया है।

किसी भाषा को भाषा का दर्जा न देने के साथ और उसका भाषाई क्षेत्र में किसी और भाषा के प्रभाव के साथ शिक्षा, प्रशासन, विकास और सांस्कृतिक आदि में बड़े नुक्सान होते हैं। लगभग सारा भारत ही इस बड़े नुक्सान को झेल रहा है। यह स्थिति उन क्षेत्रों में ज्यादा भयानक है, जहां क्षेत्रीय भाषाओं की शिक्षा और प्रशासन आदि में कोई स्थान हासिल नहीं है।

6. सरकारी कामकाज की भाषा : भारत का कोई भी प्रदेश एक भाषाई प्रदेश नहीं हैं। परन्तु फिर भी लगभग हर प्रदेश में अंग्रेजी को छोड़कर केवल एक भाषा को ही सरकारी भाषा का दर्जा हासिल है। यह उस प्रदेश में रह रहे अल्पसंख्यकों के साथ ज्यादती है। भारत के संविधान की 347 और 350-ए धाराएं स्पष्ट रूप से किसी प्रदेश की अल्पसंख्यक भाषाओं को सरकारी रूतबा दिए जाने का अधिकार देती हैं। परन्तु प्रदेश सरकारें इसके लिए बिल्कुल भी गंभीर नहीं हैं। इसका परिणाम यह है कि शिक्षा और विकास में बड़े नुक्सान हो रहे हैं और बड़ी प्रशासनिक मुश्किलों का सामना करना पड़ रहा है। बड़े प्रदेशों के तो हालात यह हैं कि सरकारी कामकाज की भाषा प्रदेश के किसी व्यक्ति की भी मातृ भाषा नहीं है। ऐसे हालात में प्रशासन के सुचारू होने की कल्पना करना शेखचिल्ली के सपनों से भी दूर की बात है।

7. भाषा का सवाल और भारत की एकता : भारत एक बहुराष्ट्रीय (बहुकौमी) देश हैं। इनकी अपनी-अपनी भाषाएं हैं और अपनी-अपनी संस्कृति। भारत की सामाजिक, भाषाई, सांस्कृतिक और राजनीतिक हकीकतों को दूर करके भारत की एकता कायम नहीं रखी जा सकती। यह उन हकीकतों को स्वीकार करके और उनकी नींव पर राजनीतिक और प्रशासनिक ढांचा निर्मित करके ही कायम रखी जा सकती है। यदि भारत के राजनीतिक ढांचे का रूप भारत के भाषाई ढांचे के अनुकूल नहीं होता तो राजनीतिक स्थिरता कायम नहीं हो सकती। परन्तु कई भारतीय राजनीतिज्ञों के मन में यह बात घर कर गई लगती है कि भाषाओं के मामले छेड़ने के साथ भारत की एकता को भी खतरा होगा। यह एक भ्रम है। बात बल्कि इसके विपरीत है। अगर यह मामले न हल किए गए तो फिर भारत की एकता को खतरा जरूर है।

उपरोक्त विचार-चर्चा ये नतीजा निकाला जा सकता है कि आजादी के बाद भी भारतीय हुकूमतों ने भारत के बहुभाषाई, बहुसांस्कृतिक और बहुराष्ट्रीय होने की हकीकत को भारतीय शासन प्रबंध और नीतियों का ठोस आधार नहीं बनाया। इस का भारत को भारी मूल्य शिक्षा, ज्ञान-विज्ञान और अर्थव्यवस्था में पिछड़ेपन और अपनी भाषाओं व संस्कृति को देश निकाले के रूप में देना पड़ रहा है। जरूरत है इस हकीकत को पहचानने और भाषाई सवालों को ठीक ढंग से हल करने की।

सम्पर्क : 99157-09582

●●

लघु कथा

बदहाल मानसिकता-कृष्ण चंद्र महादेविया

आज फिर युवा बेटी के पेट में दर्द शुरू हुआ तो लक्ष्मी ने अपने पति को भिजवा कर तुरंत गांव की दाई को बुलवा लिया। बुढ़ियाई दाई ने आते ही युवा बेटी के पेट पर कई बार ऊपर से नीचे, दाएं से बाएं पेट की मालिश की, किन्तु पेट की दर्द कतई शांत न हुई। दाई ने आंखें गोल-गोल घुमाते लक्ष्मी से कहा- 'लगता है तुम्हारी बेटी के पेट में गर्भ है।'

'नहीं नहीं दाई मौसी, कंवारी बेटी के पेट में बच्चा कहां से आएगा?'....आप ध्यान से देखिए न मौसी' लक्ष्मी गिड़गिड़ाई।

'कई महीनो का है री....।' दाई ने पुन: पेट टटोलते अपनी अकल दिखाई।

'नहीं...मां, नहीं मां ये झूठ बोल रही है।' भीषण दर्द सहते युवा बेटी ने बहुत कठिनाई से कहा।

मैं झूठी, सच्ची तो यह है।... मगर मैं कहे देती हूं, इसके पेट में पाप है।' बच्चे जनाते-जनाते मैं बूढ़ी हो गई हूं, हां ...। मैं चलती हूं।

दाई भड़कती हुई चली गई, जबकि लक्ष्मी उसे रोकती ही रह गई। बेटी के पेट के दर्द के साथ अब मन में भी दर्द होने लगा था।

लक्ष्मी और उसके शौहर ने आपस में मशविरा करके दर्द में तड़पती बेटी को शहर के अस्पताल में ले जाना ही ठीक समझा। अस्पताल में महिला डाक्टर ने सांत्वना देने के साथ खूब गहराई से जांच की। अल्ट्रासाऊंड कराकर बारीकी से जांच के बाद पेट में रसौली होने की बात बताई। आप्रेशन से रसौली निकाल दी गई और बेटी को असहनीय पीड़ा से निजात मिली। स्वस्थ हो जाने पर वे बेटी को गांव से अपने घर ले आए। पर गांव में कुंवारी मां का शोर पहले ही मच चुका था। रसौली की सच्चाई किसी को भी हजम नहीं हो रही थी। जितने मुंह उतनी बातें। समाज की बदहाल मानसिकता के लिए आखिर कौर जिम्मेवार है? ...कौन? ●

मातृभाषाओं को बचाने की जरूरत

सदानंद साही

समय आ गया है कि हम भाषा के सवाल को गंभीरता से लें। भाषा मनुष्य होने की शर्त है। इसे सिर्फ अभिव्यक्ति, संपन्न और दरिद्र जैसे पैमाने लागू करना भी ठीक नहीं है। इन्हीं मान्यताओं के चलते हम अपनी भाषिक सम्पदा को गंवाते चले आ रहे हें। हमारे औपनिवेशिक प्रभुओं ने बताया कि हमारी मातृभाषाएं असभ्य, अविकसित और दरिद्र हैं। इस औपनिवेशिक ज्ञान ने मातृभाषाओं के प्रति एक सहज अवमानना का भाव पैदा कर दिया। हम सभ्य, विकसित और सम्पन्न होने के लिए दूसरी भाषाओं का मुंह जोहने लगे और इस चक्कर में अपनी मातृभाषाओं से विमुख होते चले गए। मातृभाषाओं की जगह राष्ट्रभाषा हिन्दी हमारे सामने आई। दुर्भाग्य से हम हिन्दी को लेकर खास तरह की बेपरवाही बरतते रहे हैं। अंग्रेजी के लिए सम्मान जरूर है, लेकिन उसके मूल में भाषा प्रेम नहीं है। हमें अंग्रेजी सिर्फ रोजी-रोजगार के लिए नहीं, बल्कि प्रभुत्व और प्रभुता के लिए चाहिए।

मातृभाषा से विमुखता की प्रवृत्ति भाषा विहीनता की ओर ले जाती है। यह भाषा विहीनता हमारी मनुष्यता को विकलांग बना रही है। धीरे-धीरे हम ऐसे समाज में बदल रहे हैं, जो मातृभाषाओं से पीछा छुड़ाने को बेताब, हिन्दी के प्रति बेपरवाह और अंग्रेजी के सामने लाचार है। यह तथ्य हमें समझना होगा कि अंग्रेजी हो या संसार की कोई अन्य भाषा, मातृभाषा के रास्ते ही हम उस तक पहुंच सकते हैं।

मातृभाषाओं के माध्यम से हम बहुत कुछ ऐसा सीखते हैं जो हमें सामाजिक और समावेशी बनाता है। मातृभाषाओं में एक खास तरह की सामूहिकता होती है। वह हमें समावेशी होना सिखाती है। आज दुनिया भौतिक उन्नति और विकास के पीछे पागल हो रही है, बिना यह परवाह किए कि अंत:करण का आयतन संक्षिप्त होता जा रहा है। भाषा से अंत:करण का निर्माण होता है, उसे गहराई मिलती है। भाषा के प्रति हमारी बेपरवाही से हमारा अंत:करण छीज रहा है। आलम यह है कि हम दिनोंदिन भाषाई संपदा को नष्ट हो जाने दे रहे हैं।

भाषाविद् गणेश देवी के सर्वे के मुताबिक भारत में तकरीबन 900 भाषाएं बोली जाती हैं। 1961 की जनगणना के अनुसार भारत में सोलह-सत्रह सौ भाषाएं थीं। पिछले पचास-साठ वर्षों में यह संख्या आधी रह गई है। आशंका व्यक्त की गई है कि आने वाले पचास वर्षों में इनमें से लगभग एक तिहाई भाषाएं खत्म हो जाएंगी।

भाषाओं के खत्म होने के साथ हमारा मनुष्य होना ही खतरे में पड़ गया है। भारत की भाषा बहुलता हमारी थाती है। सत्ताएं इसे समझने में नाकाम रही हैं। वे भाषा बहुलता को समस्या समझती और भाषा को वर्चस्व का हथियार बनाती हैं। वर्चस्व से जुड़ कर भाषा अपनी मूल प्रकृति -संवादधर्मिता- से अलग हो जाती और वैमनस्य पैदा करती है। इसलिए मातृभाषाओं का सवाल हमारे मनुष्य बने रहने के सवाल से जुड़ा है।

साम्राज्य और पूंजी के वर्चस्व वाली आधुनिक दुनिया भाषाओं के बारे में बेहद असंवैधानिक हुई है। पिछली शताब्दी में दुनिया की असंख्य भाषाएं या तो विलुप्त हो गई हैं या फिर होने के कगार पर हैं। फिलहाल पूरी दुनिया में तीन हजार भाषाएं हैं। ऐसी आशंका है कि शताब्दी के अंत तक उनमें से केवल तीन सौ बचें। शायद इसीलिए उन्नीस सौ निन्यानवे में यूनेस्को ने मातृभाषाओं को संरक्षित और विकसित करने की जरूरत पर बल दिया और 21 फरवरी को अंतर्राष्ट्रीय मातृभाषा दिवस के रूप में मनाने का प्रस्ताव पारित किया। इसके लिए 21 फरवरी की तिथि इसलिए निश्चित की गई क्योंकि इसी दिन 1952 में बांग्लादेश (तत्कालीन पूर्वी पाकिस्तान) में ढाका विश्वविद्यालय के बांग्ला भाषा को मान्यता देने की मांग करते हुए चार प्रदर्शनकारी छात्र शहीद हो गए। आगे चलकर मातृभाषा के लिए शुरू हुए इस आंदोलन की परिणति बांग्लादेश के उदय में हुई।

प्रत्येक भाषा की अपनी विश्व दृष्टि होती है, अपना देशज ज्ञान, प्रतिभा कोष और साहित्य होता है, जो भाषाओं के साथ नष्ट हो जाता है। भाषाओं के नष्ट होने की एक वजह उनको बोलने वाले लोगों का जीवन स्तर है। कुछ भाषाओं के साथ पिछड़ा, गंवारू होने की चिप्पी लगा दी गई है। इसलिए लोग उन भाषाओं से अपना संबंध छिपाते हैं। यह भी नहीं कि जिन भाषाओं के बोलने वालों की संख्या कम है, उन्हीं पर खत्म होने का खतरा मंडरा रहा है। भेदभाव का शिकार होने के नाते भी भाषाओं का अस्तित्व खतरे में है।

भाषा की बहुलता हमारी थाती है, जबकि सत्ताएं भाषा बहुलता को समझने समझने की भूल करती हैं और भाषा को वर्चस्व का हथियार बनाती हैं। इसी से भाषाओं को लेकर हीनताबोध उपजता है। भाषाओं के बीच संवाद नहीं हो पाता। जबकि भाषा की प्रकृति संवादधर्मी है। इसलिए जरूरत भाषाओं के बीच वैमनस्य पैदा करने वाली शक्तियों को पहचानने और उन्हें व्यर्थ करने की है। महान अफ्रीकी लेखक न्यूंगी वा थ्यांगो कहते हैं-अनेक भाषाओं वाला विश्व विभिन्न रंगों वाले फूलों के मैदान जैसा होना चाहिए। कोई ऐसा फूल नहीं है, जो अपने रंग या आकार के कारण दूसरे फूल से बढ़कर हो। ऐसे सभी फूल अपने रंगों और आकारों की विविधता में अपने सामूहिक पुष्पत्व को व्यक्त करते हैं। इसी प्रकार हमारी विभिन्न भाषाएं एक सामूहिकता के बोध को व्यक्त कर सकती हैं और उन्हें करना चाहिए। भाषाएं इस तरह मिलें जैसे नदियां मिलती हैं। हमें भाषाओं के लोकतंत्र को समझना चाहिए और उसकी अवतारणा करनी चाहिए। तभी हम भाषा की निधि को नष्ट होने से बचा सकेंगे और उसे भावी पीढ़ी को सौंप सकेंगे।

स्वाधीनता आंदोलन के साथ ही वासुदेव अग्रवाल, राहुल सांकृत्यायन, हजारी प्रसाद द्विवेदी जैसे मनीषियों ने जनपदीय आंदोलन की बात की थी। यह जनपदीय भावना भाषाई वैमनस्य नहीं, भाषाओं के

सामंजस्य की बात करती है। इन मनीषियों की सोच थी कि जनपदों में विकसित हुआ साहित्य, संगीत-कला कौशल, ज्ञान-विज्ञान उपेक्षा की वस्तु नहीं है। उनमें हजारों वर्ष का मानवीय संघर्ष, अनुभव और चेतना का इतिहास संचित है। इसलिए जनपदीय साहित्य का अध्ययन और मूल्यांकन किया जाना चाहिए। देखना यह चाहिए कि इस निधि के भीतर ऐसा क्या है जो हमारे आधुनिक जीवन को बेहतर बनाने के काम आ सकता है।

हमारे विश्वविद्यालयों में देशी भाषाएं प्राय: लोक साहित्य के रूप में पढ़ाई जाती हैं। कुछ-कुछ कृपाभाव से। यह नाकाफी ही नहीं, बल्कि चिंताजनक है। अपने परिवेश की इतिहास चेतना से रहित और मातृभाषा से वंचित और भाषाई विपन्नता के शिकार हो चुके पढ़े-लिखे लोगों ने भाषा की बहुआयामी निधि को गंवा दिया है। यह निधि, यह संपदा भाषा का यह सौंदर्य कहां बचा है? गांवों में। जिसे बेपढ़ी-लिखी जनता कहा जाता है उसने इस सम्पति को बचाया है। इसलिए भी इस महान संपदा का संरक्षण और संवर्धन जनपदीय अध्ययन के रास्ते ही संभव है। भूमि, उस पर बसने वाला जन और उस जन की संस्कृति का त्रिकोणात्मक अध्ययन करना होगा। इस अध्ययन से हम यह सीख सकेंगे कि विविधता अभिशाप नहीं है। बल्कि यह पृथ्वी के साथ घनिष्ठ रूप से संबद्ध होने के कारण है। मातृभाषाओं को उपयोग और उपभोग के नजरिए से ऊपर उठकर जनपदीय अध्ययन के नजरिए से देखने-जानने की जरूरत है।

•

रमेश कुंतल मेघ

हमारा समसमय

न जाने कब से रूढ़ियों में क़ैद समाज
काला पानी की जेल लगने लगा है।
हमारा विश्वास है कि बंद कोठरियों के ताले
तड़ातड़ टूटने लगेंगे।
घायल हथेलियों से आकाश गंगा की
लाल धाराएं बहने लगेंगी।
नीली देह सार्थकता का अशनि-संकेत हो चलेगी।
परित्याग कर पिछड़ापन, अकादमियां, लाईब्रेरियां, गोष्ठियां तथा
नवल अस्पताल, कला-स्टूडियो, ब्यूटी पार्लर
इंटरनेट से बाहर हमें लिवाकर --
सुंदर, स्वच्छ, स्वच्छंद फैलाने लगेंगे।
सड़कों के दशकों से अंधेरे खंभे
एल.ई.डी. बल्बों से रोशन हो उठेंगे
कुरीतियां अपराध नहीं बनेंगी।।
लो अब हम बेहतर साथी, प्रेमी, सिरजनहार यार,
सामयिक साबित हो रहे हैं।
हमारे लक्ष्य बदल रहे हैं।।
अब हम 'राम की शक्तिपूजा', पाब्लो नेरुदा, मुक्तिबोध
का अनिवार्य पाठ पढ़ पढ़ा रहे हैं।
जीवन-विरोधों से लंबी लड़ाई ठानकर
कुर्बानी का हौसला जन्म ले रहा है।
दिल-दिमाग-कर्म एक होते जा रहे हैं।।
इस बलिदानी लड़ाई में
कबूतर की मोटी गर्दन
कौवे की कुटिलता
गरुड़ के गरूर को
हम पहचानने लगे हैं। •

सम्पर्क : 9780774224

रचनाकारों से अपील

हरियाणा में विभाजन संबंधी साहित्य पर विशेषांक

भारत विभाजन की विभीषिका स्मृति पटल पर इस तरह है जैसे युरोप में द्वितीय विश्व युद्ध की। इस त्रासदी में लाखों लोग उजड़े, आबादियों का स्थानांतरण हुआ। हरियाणा भी इससे अछूता नहीं रहा। 'देस हरियाणा' का निकट भविष्य में हरियाणा में विभाजन संबंधी साहित्य पर विशेषांक निकालने की योजना है। रचनाकारों से अपील है कि विभाजन संबंधी प्रकाशित-अप्रकाशित सामग्री (कविता, कहानी, लेख, संस्मरण, रागनी) 'देस हरियाणा' के पते पर भेजें। - सम्पादक

अंग्रेजी भाषा को भारत ने कैसे बदला

लेखक-राहुल वर्मा, अनु. सौम्य मालवीय

वे एक नई ज़बान में रच बस गए हैं। वे शब्द जो प्रतिदिन की अंग्रेजी का अभिन्न हिस्सा बन चुके हैं। लूट, निर्वाण, पायजामा, शैम्पू, शॉल, बंगला, जंगल, पंडित और ठग।

इन भारतीय शब्दों की जड़ें और अंग्रेजी में पहुंचने के इनके रास्ते क्या हैं? उन्होंने ये यात्रा कैसे और कब तय की। कैसे वे लोक में बसी अंग्रेजी से ऑक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी तक पहुंचे। और यह सब हमें भारत और ब्रिटेन के रिश्ते के बारे में क्या बताता है।

ब्रिटिश राज के बहुत पहले-उससे भी पहले जब ईस्ट इंडिया कंपनी ने भारतीय उपमहाद्वीप में पहला क्षेत्र अपने अधीन किया था - दक्षिण एशियाई भाषाओं के कुछ शब्द, जैसे उर्दू, हिन्दी, मलयालम और तमिल के कुछ शब्द, विदेशी ज़बानों का हिस्सा बन गए थे। एक कमाल की किताब में बोलचाल की भाषा के एंग्लो-इंडियन शब्दों, मुहावरों और वाक्यांशों की उत्पत्ति के रोचक ब्यौरे मिलते हैं। यह दो भारत प्रेमियों हेनरी यूल और आर्थर सी बर्नेल द्वारा तैयार की गई थी और 'हॉब्सन-जॉब्सन' द डेफिनिटिव ग्लॉसरी ऑफ इंडिया नामक यह किताब सन् 1886 में आई थी। कवि दलजीत नागरा के अनुसार 'यह एक शब्दकोश होने के बजाए औपनिवेशिक भारत का जबरदस्त संस्मरणात्मक आख्यान है। बल्कि हम इसे एक खब्ती अंग्रेज के शब्द संसार के रूप में देख सकते हैं।'

इस किताब के हाल में ही छपे पेपरबैक संस्करण के संपादक यह बताते हैं कि कैसे इसके कई सारे शब्द ब्रिटिश शासन से भी पहले के हैं। केट तेल्ट्सशर कहती हैं कि, ''जिंजर, पेपर और इंडिगो इंग्लिश में एक बहुत प्राचीन रास्ते से दाखिल हुए।' ये यूनान और रोम से भारत के व्यापारिक संबंधों के गवाह हैं और इंग्लिश में ग्रीक और लैटिन भाषा के मार्फत शामिल हुए।''

''जिंजर शब्द मलयालम भाषा से आता है और ग्रीक और लैटिन के रास्ते होते हुए पुरानी फ्रेंच और पुरानी अंग्रेजी में जगह बनाता है। और अब यह पौधा और शब्द दोनों वैश्विक कमोडिटी बन चुके हैं। पंद्रहवीं सी में ये कैरेबियन द्वीप समूहों में और अफ्रीका में पहुंचा और अब यह शब्द, यह पौधा, सारी दुनिया में पाया जाता है।'

जैसे-जैसे यूरोपीय शक्तियों ने पूर्वोत्तर हिस्सों में अपना साम्राज्य बढ़ाया। वैश्विक व्यापार बढ़ता गया और भारतीय शब्दों की अंग्रेजी में उपस्थिति भी जोर पकड़ती गई। कई सारे शब्द पुर्तगाली भाषा के रास्ते आए। केट तेल्ट्सशर बताती हैं, ''पुर्तगालियों ने 16वीं सदी में गोवा पर शासन कायम किया और मैंगो एवं करी जैसे शब्द अंग्रेजी में पुर्तगाली भाषा के जरिए दाखिल हुए - मैंगो शब्द की शुरुआत तमिल और मलयालम के 'मंगाई' से हुई, फिर पुर्तगाली में इसका रूप बना 'मंगा' और फिर अंग्रेजी में इसके अंत में 'ओ' की ध्वनि जुड़ गई और यह हो गया मैंगो।''

पर दक्षिण एशियाई शब्दों का अंग्रेजी में प्रवेश केवल पूरब से पश्चिम की सरल स्कीम के तहत ही नहीं हुआ। तेल्ट्सशर बताती हैं कि 'आया' दरअसल एक पुर्तगाली भाषा का शब्द है, जिसका मतलब गवर्नेस या नर्स होता है और पुर्तगाली भारत में उसे इसी रूप में प्रयोग करते थे। फिर यह भारतीय भाषाओं का हिस्सा बना और उनके रास्ते फिर अंग्रेजी में उतर गया।

और मैं आज तक इसे भारतीय भाषा का शब्द समझता था, उस अर्थ में जिसमें नई दिल्ली में मेरा पूरा परिवार इसे घरेलू मदद या बूढ़ी दाई के संदर्भ में प्रयोग करता आया है।

हॉब्सन-जॉब्सन शब्द संग्रह में 'चिली' शब्द की रोचक यात्रा बयान की गई है जहां यह दर्ज किया गया है कि यह 'लाल मिर्च का लोक प्रचलित आंग्ल-भारतीय शब्द है।' यूल और बर्नेल के अनुसार, 'इसमें कोई शक नहीं कि यह शब्द दक्षिण अमेरिका में चिली में से लिया गया और भारतीय प्रायद्वीप तक पहुंचा और फिर भारत तक।'

शौक और खुशबुएं

16वीं और 17वीं सदी में हिन्दी, उर्दू, तमिल, मलयालम, पुर्तगाली और अंग्रेजी के शब्द सारी दुनिया में टहल रहे थे और इस बात को उजागर करते हुए कि कैसे भाषाएं, जैसे-जैसे संस्कृति के रूप बदलते हैं और लोग बदलते परिवेश के अनुसार जीना सीखते जाते हैं, समय के साथ विकसित होती है। इन तीन शब्दों - शॉल, कश्मीरी और पचौली जो साथ-साथ 18वीं सदी की अंग्रेजी का हिस्सा बन गए थे - के उदाहरण से उपरोक्त बात की तसदीक होती है।

तेल्ट्सशर बताती है, 'कश्मीरी शब्द को हम ऊन से जोड़कर देखते हैं और इसका उद्गम कश्मीर में और कश्मीरी भेड़ के ऊन में है। यह शब्द शॉल शब्द से गहरे जुड़ा हुआ है। शॉल एक ऐसा शब्द जो फारसी में पैदा हुआ, उर्दू और हिन्दी के जरिए भारत पहुंचा और फिर अंग्रेजी में दाखिल हो गया।'

वे आगे कहती हैं, 'शॉल 18वीं और 19वीं सदी में अंग्रेजी में पहुंचा, क्योंकि अभिजन समाज में औरतों के लिए एक प्रिय और ऐश्वर्य सूचक परिधान बन गया था। अगर किसी महिला का भाई ईस्ट इंडिया कम्पनी के लिए काम करता था तो वे अपेक्षा रखती थी कि उसका भाई उसके लिए एक खूबसूरती से बुना हुआ शॉल भेजेगा। पचौली, शॉल से जुड़ा हुआ है, क्योंकि पचौली इत्र का इस्तेमाल शॉलों को ब्रिटेन ले जाते वक्त कीड़ों को दूर रखने के लिए किया जाता था। इस तरह यह तेज खूशबूदार इत्र ब्रिटेन की पसंद बन गया।'

पर पचौली ने जल्द ही अपना ग्लैमर खो दिया। तेल्ट्सशर बताती हैं, 'उन्नीसवीं सदी के बीतते-बीतते पचौली फ्रेंच वेश्याओं और तथाकथित चरित्रहीन औरतों से जोड़कर देखा जाने लगा। इस तरह पचौली ने एक राजसी शौक होने से लेकर और फिर असभ्य समाज का सूचक बन जाने तक का रास्ता तय किया और

फिर सन् 60 तक आते-आते यह हिप्पी समुदाय से जोड़कर देखा जाने लगा।'

शब्द और उनके संसार

लन्दन में पैदा हुए, ब्रिस्टल में बसे लेखक निकेश शुक्ला का मानना है कि रोजमर्रा की अंग्रेजी में भारत के योगदान से ब्रिटिश साम्राज्य के कुछ हद तक अपने उपनिवेशों पर निर्भर होने का पता चलता है। 'यह लाजिमी ही था कि उपनिवेशवाद के साथ ब्रिटेन स्थानीय संस्कृतियों से प्रभावित होगा और इसके असर दूरगामी होंगे। क्योंकि उपनिवेशवाद कोई एकआयामी चीज नहीं होती। जरा उन चीजों पर ध्यान दीजिए जो ब्रिटिश संस्कृति में कॉमनवेल्थ राष्ट्रों से आईं और यहीं की होके रह गईं जैसे चाय और भाषा भी इसी प्रक्रिया का हिस्सा रही है।

निकेश शुक्ला, जिनका ताजा उपन्यास 'मीटस्पेस' सोशल मीडिया और स्मार्ट फोन तकनीक की पड़ताल करता है, का मानना है कि साम्राज्य ने अंग्रेजी भाषा को वैसे ही प्रभावित किया है जैसे आज तकनीक कर रही है। उनका कहना है कि, 'इस परिघटना को देखने का एक सीधा तरीका यह है कि इन शब्दों ने अंग्रेजी भाषा में इसलिए उथल-पुथल मचाई, क्योंकि वे अंग्रेजी का हिस्सा ही नहीं थे। उदाहरण के लिए वेरांडा (बरामदा) शब्द को लीजिए। ब्रिटेन में मौसम ठंडा रहता है अत: यहां बरामदे नहीं होते और न ही पैजामे या ढीले-ढाले सूती पतलून, क्योंकि ये गर्म मौसम के लिए उपयुक्त रहते हैं।'

वे आगे जोड़ते हुए कहते हैं कि 'आज वाईएफआई, इंटरनेट, गूगल, ईमेल और सेल्फी' जैसे शब्द सारी दुनिया में फैल चुके हैं और इनके लिए कोई और शब्द दिखाई ही नहीं पड़ता। इस तरह से ये शब्द अंग्रेजी का ही नहीं, अन्य सारी भाषाओं का भी हिस्सा बन चुके हैं। सोशल मीडिया ने भी हमारे बातचीत के ढंग को गहरे प्रभावित किया है। मसलन अब 'लाइक' या 'फॉलोइंग' जैसे शब्दों का अर्थ ही बदल चुका है। हम कह सकते हैं कि 'लोल' (LOL)जैसे शब्दों के साथ तकनीक अंग्रेजी भाषा में खलबली पैदा करने वाली नयी चीज बन गई है। पर मुझे यह बेहद रोचक लगता है कि किस तरह से उपनिवेशवाद ने खुद ब्रिटेन की संस्कृति को दूसरी संस्कृतियों से रूबरू करवाते हुए अंग्रेजी भाषा में कैसे-कैसे नए दरीचे खोले हैं।

शुक्ला का प्रिय अंग्रेजी-भारतीय शब्द है 'ब्लाएटी', (blighty)जो यह साबित करता है कि कैसे भाषा लगातार विकसित होती रहती है। वे बताते हैं कि यह शब्द प्रवासी ब्रितानियों द्वारा ब्रिटेन और अपनी मातृभूमि के संदर्भ में कुछ इस तरह प्रयोग होता है कि, 'गुड ओल-'ब्लायटी'। जबकि यह शब्द यूरोप के लोगों या विदेशियों के लिए प्रयोग किए जाने वाले उर्दू शब्द 'विलायती' से आता है। यानी यह शब्द अंग्रेजों द्वारा बिगाड़ कर घर को याद करने के संदर्भ में इस्तेमाल किया जाने लगा और इस तरह अंग्रेजी भाषा का हिस्सा बन गया।'

भारत का अंग्रेजी पर प्रभाव इस बात को साबित करता है कि भाषाएं हमेशा गतिमान रहती हैं और आधुनिक जगत जैसा है उसमें भूतपूर्व उपनिवेशों का भी गहरा योगदान है। तेल्ट्सशर कहती हैं, 'शब्दों को देखना कितना अद्‌भुत होता है। आपको अनचीन्हे रास्ते, अनपेक्षित तरंगे और अद्‌भुत संगतियां स्पष्ट होने लगती हैं।' •

आभार - समरथ सितम्बर-अक्तूबर 2015 नई दिल्ली

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर

एकला चलो, एकला चलो रे

यदि तोर डाक सुने केउ न आसे
तबे एकला चलो रे, एकला चलो, एकला चलो, एकला चलो रे।

यदि केउ कथा न कय, ओरे ओ अभागा!
यदि सबाई थाके मुख फिराये, सबाई करे भय तबे परान खुले
ओरे तुई मुख फुटे तोर मनेर कथा, एकला बोलो रे !

यदि सबाई फिरे जाय, ओरे ओ अभागा! ओरे ओ अभागा!
यदि गहन पथे , जाबार काले
केउ फिरे न चाय, तब पथरे कांटा
ओ तुई रक्त माखा, चरन तले एकला दलो रे !

यदि आलो ना धरे ,ओरे ओ अभागा!
यदि झड़ बादले ,आन्धार राते
दुआर देय धरे, तबे बज्रानले
आपन बुकेर पांजर ज्वालिये, निये एकला चलो रे !

यदि तुम्हारे बुलाने पर कोई नहीं आता, तो तुम अकेले ही चल पड़ो! रे अभागे , यदि सब लोग भयभीत हों, तुम से बात करने से भी कतरा रहे हों , तो भी चिन्ता न करो ! दिल खोल कर अपने मन से ही अपने मन की बात बोलते रहो! यदि विपत्ति के मार्ग पर तुमसे कोई सहानुभूति प्रकट न करे , कोई देखे नहीं कि तुम पीछे छूट गये हो ,तुम्हारे पैर कांटों से घायल हो गये हों, तब भी तुम कांटों को रोंदते हुए चलते रहो,चलते रहो,चलते रहो। आंधी - तूफान की काली रात में यदि तुम्हें कोई रोशनी नहीं दिखा रहा न कोई आश्रय देता हो तो भी तुम अपने अस्थिपंजर से वज्राग्नि को जला कर अग्नि पैदा करो! चलते रहो,चलते रहो, चलते रहो।

•

युवा कलम

सुरेश बरनवाल

स्त्री-स्त्री-स्त्री

स्त्री
अगर पत्नी है
तो स्त्री है
या फिर बेटी, मां, बहन
जो भी।

जब तक वह
समाज की परिभाषाओं से
बंधी रहती है
स्त्री होती है।

पर जब जागती है
स्त्री के भीतर एक स्त्री
और देखना चाहती है आसमां
होना चाहती है परिभाषाओं से मुक्त
स्त्री
कहीं अधिक स्त्री होकर
तब स्त्री नहीं कहलाती।

युद्ध और प्रेम

युद्ध के दौर में
विद्रोह, क्रोध, हिंसा
बारूद, बन्दूक
और शरीर के चिथड़े
मिल जाते थे हर राह
टूटे भग्नावशेष
कब्रगाह बन गए थे
इन्सानी सभ्यता के।

सभी कुछ समाप्त था
सिवाय नफरत के।

आज तक कोई नहीं गिन सका
हर युद्ध में
कितने इन्सान
नाम में तब्दील हो गए
कितनी लोरियां चीखें बन गईं
कितने गीत रूदन हो गए
कितना प्रेम पत्थर हो गया।

पर टूटी सड़कों पर नंगे पांव चलते कुछ लोग
खून से सने रूमालों को उठा लेते थे
उन्हें धोकर सूखाते थे
और पढ़ते थे उसपर लिखे नाम।

दरवाजों पर ठिठकी कितनी आंखों में
इन्तजार लरजता था
बाहें बरबस खुल जाती थीं
कोई आएगा और इनमें समा ही जाएगा।

कितने हाथ पानी लिए
सड़क के किनारे खड़े होते थे
क्या पता
कब कोई थका प्यासा सैनिक
आंखों से पानी मांग ले।

सैनिकों की हुंकार के साथ
उनके मुंह से
बरबस निकल जाता था कोई नाम
और सामने से गोली मारने वाला
अकबका कर ठिठक जाता था
वैसा ही कोई नाम
उसे भी याद आ जाता था।

कितनी ही औरतें होंठों पर
तब भी लिपस्टिक लगाती थीं
क्या पता अभी दरवाजा खुले
और प्रेमी उसे पुकारता भीतर आ जाए।

कितने ही बच्चे
गोद में लिए जाने के लिए
सूनी सड़कों को तकते
दरवाजे से चिपके खड़े होते थे।

कितनी मांए
अधपकी रोटी तवे पर छोड़
खुद धुंआ होती हुई
खिड़कियों से बाहर झांक आती थीं।

हर औरत के लिए
हर घायल
उनका भाई, पिता, बेटा, प्रेमी हो जाता था।

उफ! इतना प्रेम
इतना इतना प्रेम
पनपता था
युद्ध के दौर में।

युद्ध की अनिवार्यता

युद्ध इसलिए होते हैं
ताकि भविष्य में और युद्ध न हो।
और
भविष्य के युद्ध को रोकने के लिए
हमेशा युद्ध होते रहेंगे।

युद्ध की विभीषिका

युद्ध की विभीषिका
इससे मत गिनो
कितने मरे
कितने घायल हुए
कितना रक्त बहा।

युद्ध की विभीषिका
इससे गिनो
कितने जिन्दा आदमी
मर चुके लोगों की लाश ढोते
खुद लाश बन गए
उनकी आंखों से
कितना आंसू बहा।

मजदूर बनाम राष्ट्र

यह भी तो एक युद्ध है
कि एक मजदूर
दिन भर की दिहाड़ी के बाद
आधा राशन लिए घर लौटता है।
उसके बच्चे
हर रोज युद्धभूमि में उतरते हैं
हसरतों को मारते हैं।
यह ऐसा युद्ध है
जिसमें
दो राष्ट्र तो नहीं लड़ते
पर एक राष्ट्र
फिर भी हार जाता है।

कटते हुए दरख्त की चीखें

तुम्हें पूरा हक है
खुद के खिलाफ युद्ध छेड़ देने का
दरख्तों की हत्या करने का।

कटे हुए इन दरख्त की चीखें
अमानत होंगी तुम्हारे भविष्य की।

यह तमाम चीखें
तुम्हारी संतानों को विरासत में मिलेंगी
और वह भी चीखेंगे
उनकी चीख कराहों में भी बदलेगी
वह भी झेलेंगे विभीषिका युद्ध की।

वह चाहेंगे तो भी
उस दरख्त को नहीं ढूंढ सकेंगे
जिसने तुम्हारे हाथों कटते हुए
चीखों के बीज फैला दिए थे।

आग

यह घटना थी
या वारदात
या युद्ध।

बहुत कुछ जला था तब हरियाणा में
दुकानें, इन्सानियत

मासूमियत

स्कूल, किताबें।
जिन्होंने दुकानें जलाईं
वह नहीं हो सकते थे पिता
एक पिता जानता होता है
बिना कमाए घर लौटना
बच्चों का अपराधी हो जाना होता है
जिसकी सजा
चाह कर भी मर नहीं सकना है।

जिन्होंने मानवता रौंदी
डर उपजाया
आंसुओं को कुचला
वह इन्सान नहीं हो सकते
एक इन्सान जानता है
प्रेम से हट जाना
मरने से बदतर है।

जिन्होंने किताबें जलाईं
उनपर लानत भी शर्मसार है
क्योंकि यह वह लोग थे
जिन्होंने नहीं पढ़ी थीं किताबें।

वह घटना नहीं थी
वह तो निरा युद्ध था।

माटी

नहीं
अब चाक नहीं चलते कुम्हारों के
गीली माटी अब नहीं महकती
पहिया नहीं घूमता
हमारी पृथ्वी सा
न ही कुम्हार के हाथ
माटी से सने मिलते हैं
धूप में नहीं सूखतीं
अब छोटी दिपलियां
कोरे मटके के पानी का स्वाद
जीभ नहीं महसूस करती अब।

तुम्हें नहीं पता
देश के रेगिस्तानों से
कितनी ही रेत उड़ती है रोज
कुम्हारों के मकानों तक आती है
और
उसके आंगन को सूना देख
फिर रेगिस्तान लौट जाती है।

वक्र -चक्र

बहुत जरूरी है
देश के लिए प्रजातन्त्र
प्रजातन्त्र के लिए वोट
वोट के लिए गरीब
गरीब के लिए झूठे वादे
झूठे वादों के लिए नेता
नेता के लिए दल
दल के लिए राजनीति
राजनीति के लिए देश
देश के लिए प्रजातन्त्र।

सवालों का जंगल

तुमने फिर वही किया
सवाल जो उठा था
उसे वहीं छोड़ दिया/अनुत्तरित
हालांकि वह पथरीली सड़क है
पर सवाल के बीज को उगना है
प्रश्न-प्रतिप्रश्न बनना है
उसे पथरीली सड़क का सीना फोड़ना है।

उसकी जड़ें भूमिगत यात्रा करेंगी
वहां-वहां जाएंगी
जहां-जहां तुम जाओगे
या तुम्हारी संतानें बसेंगी
वह तुम्हारे साथ रहेंगी हमेशा
यदि तुमने उनका उत्तर नहीं दिया।

संभव है
तुम और भी सवाल उठाओ
और उन्हें भी अनुत्तरित छोड़ दो
वही होगा
उनके बीज भी उगेगें
और भूमिगत उनकी जड़ें
आपस में उलझकर
सवालों का जंगल बनाएंगीं।

तुम अपने ही बनाए इन जंगलों से
नहीं बच सकोगे
एक दिन तो विद्रोह की कोई चिंगारी उठेगी
और तुम जल जाओगे।

कितनी ही बार

कितनी ही बार
कोई पिघलती नदी
पहाड़ों से उतरती ठिठक जाती है
मैं किसी चट्टान पर
जब उसे उदास बैठा मिलता हूं।

कितनी ही बार
आसमां पर चढ़ता सूरज
बादल की ओट से
एक किरण मुझें फेंक मारता है
और छिप जाता है
मानो आंख मिचौली खेल रहा हो।

कितनी ही बार
तेजी से बहती हवा
मेरे पास आती है
मुझे छूती है, पुचकारती है
मेरा हाल पूछती है
और मेरे गालों पर थपकी देती है।

कितनी ही बार
अपनी मां की उंगली पकड़े
राह चलता कोई बच्चा
मुड़ कर मुझे देखता है
मुस्कराता है
और एक अनजान रिश्ता बांध जाता है।

कितनी ही बार
मैं खुद को
यूं कभी अकेला नहीं पाता।

मानव हाट

मजदूर
हाट पर खड़ा मांस का जिन्स
ठेकेदार
आंखों में तराजू लिए
इस मांस का वजन लेता है
और कीमत लगाता है एक दिन की
उस दिन वह मांस
ठेकेदार का कहा मानेगा
पिसेगा सीमेन्ट कंक्रीट के ढेर में
और शाम को
खुद को समेटता घर लौटेगा

उस शाम
उसकी पत्नी, बच्चे और वह खुद
रोटी खाकर
जश्न मनाएंगे।

दल-दल

हमने चाहा था
कमल पुष्पदल खिलें
हमारे देश के आंगन में।

कमल खिल सकें
हमने इसके लिए दलदल रचे
दिल्ली से लेकर
दिलों तक।

पर यह हमारी भूल थी
या स्वार्थ था
कि हमारा हर दल
दलदल फैलाता गया
और पुष्प के बीज डालना
हम भूल गए। ●

सम्पर्क 94662-00712

कविताएं

मीनाक्षी गांधी

आज किसी ने कहा

वो बहादुर है बहुत
सब हंसते हंसते झेल लेती है
वो बहादुर है बहुत
जो सब सह लेती है
और उफ्फ़ तक नहीं करती
ऐसी बहादुरी किस काम की
जो उसे दर्द तो दे
पर कोई मरहम ना दे
जो अन्दर ही अन्दर
उसे खोखला कर दे
और डर के घेरे में?
वो ऐसी फंस जाये की
बाहर आने का
उसे कोई राह दिखाई ना दे
लोग कहते हैं
की वो समझदार है बहुत
सबकी खुशी का ध्यान रखती है
वो समझदार है बहुत
जो सबकी उम्मीदों पर खरी उतरती है
ऐसी समझदारी भी किस काम की
जो उसकी खुद की
खुशी का गला घोट दे
उसकी उम्मीदों
और उसके अस्तित्व को
इस क़दर ख़तम कर दे
की वो अपने सपने भूल
और अपनी उम्मीदों को तोड़
अपनी ज़िंदगी के मक़सद
को ही भूल जाये

सम्पर्क :

कविता वर्मा

काठ का मन

काठ का मन
काठ का तन
काठ सा जीवन
काठ सी बेजान
ख्वाहिशें ।
टक-टक ठुकती कींल
एक एक चाहत में।
काठ की हसरतें,
संवेदना शून्य ,काठ सी।
जमती,गलती सपनों
की
फफूँदी से सड़ता ,गलता
काठ
सा मन।
विश्वास की धूप को
तरसता
काठ,
सीलन में सिसकता
काठ ,
निरंतर चल
पर काठ सा स्थिर।

सुनो

सुनो! मुट्ठी भर
रंग घोल दो ,
जिंदगी में ।
नही देखे रंग और रौशनी
के त्यौहार ।
एक उमर और जी लूं ,
हवाँए नई साँसों में
घोल दो।

सुनो, फीके सा
ज़ायका है
ढलते से दिनों का ,
कोई सूरज चमका दो
कहीं।
सुनो मुट्ठी भर रंग घोल
दो,
बहती उमर में ,
ओढनी तो ओढ लूँ,
सुर्खी छाँव की।

सम्पर्क: 9992483318

संगम वर्मा

आलोचक

आलोचक
आंखों पर लगे
एक चश्मे की तरह होता है
किताब का जब
ऑपरेशन करता है
तो एक पैरामीटर बनाता है

कलेवर से लेकर
भावगत-वस्तुगत और कलागत
सभी तत्वों को
विश्लेषित करता है

अर्थ के गर्भों से
नया विज़न
सहृदयों को देता है

शोधपूर्ण तत्वों से
तार्किक तथ्यों से
पुरातन मान्यताओं का
नवीन मान्यताओं से
एकाकार करते हुए
कृतिकार के मूल मंतव्य को
सम्प्रेषित करता है

सृजनात्मकता की
सार्थकता को
सटीक मार्ग दिखलाता है
पठनीयता का
पाठालोचन करता है
सैद्धांतिक और
व्यावहारिक पक्षों का
ब्यौरेबार वर्णन करता है

कभी कभार
आमूल चूल परिवर्तन लाकर
मूल पाठ का न्यायोचित
वर्णन कर
सृजनकार की
सृजनधर्मिता को
औचित्यपूर्ण बनाता है

आलोचक
लेखन के
क्या, क्यों,
और कैसे
जैसे मानदंडों को
प्रश्नचिह्नों की
कसौटी पर लाकर
सारगर्भित अभिव्यक्ति
प्रदान करता है

विधा कोई भी हो
आलोचक की आलोचना उसका
आलोचक धर्म है
और यही
आलोचना की
रचनाधर्मिता का
आलोक पर्व है

सम्पर्क: 9463603737

गोपाल सिंह नेपाली की कविता

बाबुल तुम बगिया के तरुवर

बाबुल तुम बगिया के तरुवर, हम तरुवर की चिड़ियाँ रे
दाना चुगते उड़ जाएँ हम, पिया मिलन की घड़ियाँ रे
उड़ जाएँ तो लौट न आएँ, ज्यों मोती की लड़ियाँ रे

आँखों से आँसू निकले तो पीछे तके नहीं मुड़के
घर की कन्या बन का पंछी, फिरें न डाली से उड़के
बाजी हारी हुई त्रिया की
जनम-जनम सौगात पिया की
बाबुल तुम गूँगे नैना, हम आँसू की फुलझड़ियाँ रे
उड़ जाएँ तो लौट न आएँ ज्यों मोती की लड़ियाँ रे

हमको सुध न जनम के पहले, अपनी कहाँ अटारी थी
आँख खुली तो नभ के नीचे, हम थे गोद तुम्हारी थी
ऐसा था वह रैन बसेरा
जहाँ साँझ भी लगे सवेरा
बाबुल तुम गिरिराज हिमालय, हम झरनों की कड़ियाँ रे
उड़ जाएँ तो लौट न आएँ, ज्यों मोती की लडियाँ रे

छितराए नौ लाख सितारे, तेरी नभ की छाया में
मंदिर-मूरत, तीरथ देखे, हमने तेरी काया में
दुख में भी हमने सुख देखा
तुमने बस कन्या मुख देखा
बाबुल तुम कुलवंश कमल हो, हम कोमल पंखुड़ियाँ रे
उड़ जाएँ तो लौट न आएँ, ज्यों मोती की लड़ियाँ रे

बचपन के भोलेपन पर जब, छिटके रंग जवानी के
प्यास प्रीति की जागी तो हम, मीन बने बिन पानी के
जनम-जनम के प्यासे नैना
चाहे नहीं कुँवारे रहना
बाबुल ढूँढ़ फिरो तुम हमको, हम ढूँढ़ें बावरिया रे
उड़ जाएँ तो लौट न आएँ, ज्यों मोती की लड़ियाँ रे

चढ़ती उमर बढ़ी तो कुल-मर्यादा से जा टकराई
पगड़ी गिरने के डर से, दुनिया जा डोली ले आई
मन रोया, गूँजी शहनाई
नयन बहे, चुनरी पहनाई
पहनाई चुनरी सुहाग की, या डालीं हथकड़ियाँ रे
उड़ जाएँ तो लौट न आएँ, ज्यों मोती की लड़ियाँ रे

मंत्र पढ़े सौ सदी पुराने, रीत निभाई प्रीत नहीं
तन का सौदा करके भी तो, पाया मन का मीत नहीं
गात फूल-सा, काँटे पग में
जग के लिए जिए हम जग में
बाबुल तुम पगड़ी समाज के, हम पथ की कंकड़ियाँ रे
उड़ जाएँ तो लौट न आएँ, ज्यों मोती की लड़ियाँ रे

माँग रची आँसू के ऊपर, घूँघट गीली आँखों पर
ब्याह नाम से यह लीला जाहिर करवाई लाखों पर
जो घूँघट से डर-डर झाँके, वारा उसे बाजे बजवा के
गुड़ियाँ खेल बढ़े हम फिर भी, दुनिया समझे गुड़िया रे
उड़ जाएँ तो लौट न आएँ, ज्यों मोती की लड़ियाँ रे

नेह लगा तो नैहर छूता, पिया मिले बिछुड़ी सखियाँ
प्यार बताकर पीर मिली तो नीर बनीं फूटी अँखियाँ
हुई चलाकर चाल पुरानी
नयी जवानी पानी पानी
चली मनाने चिर वसंत में, ज्यों सावन की झड़ियाँ रे
उड़ जाएँ तो लौट न आएँ, ज्यों मोती की लड़ियाँ रे

देखा जो ससुराल पहुँचकर, तो दुनिया ही न्यारी थी
फूलों-सा था देश हरा, पर काँटों की फुलवारी थी
कहने को सारे अपने थे
पर दिन दुपहर के सपने थे
मिली नाम पर कोमलता के, केवल नरम काँकड़िया रे
उड़ जाएँ तो लौट न आएँ, ज्यों मोती की लड़ियाँ रे

वेद-शास्त्र थे लिखे पुरुष के, मुश्किल था बचकर जाना
हारा दाँव बचा लेने को, पति को परमेश्वर जाना
दुल्हन बनकर दिया जलाया
दासी बन घर बार चलाया
माँ बनकर ममता बाँटी तो, महल बनी झोंपड़िया रे
उड़ जाएँ तो लौट न आएँ, ज्यों मोती की लड़ियाँ रे

मन की सेज सुला प्रियतम को, दीप नयन का मंद किया
छुड़ा जगत से अपने को, सिंदूर बिंदु में बंद किया
जंजीरों में बाँधा तन को
त्याग-राग से साधा मन को
पंछी के उड़ जाने पर ही, खोली नयन किवड़ियाँ रे
उड़ जाएँ तो लौट न आएँ, ज्यों मोती की लड़ियाँ रे

जनम लिया तो जले पिता-माँ, यौवन खिला ननद-भाभी
ब्याह रचा तो जला मोहल्ला, पुत्र हुआ तो बंध्या भी
जले हृदय के अन्दर नारी
उस पर बाहर दुनिया सारी
मर जाने पर भी मरघट में, जल-जल उठीं लकड़ियाँ रे
उड़ जाएँ तो लौट न आएँ, ज्यों मोती की लड़ियाँ रे

जनम-जनम जग के नखरे पर, सज-धजकर जाएँ वारी
फिर भी समझे गए रात-दिन हम ताड़न के अधिकारी
पहले गए पिया जो हमसे अधम बने हम यहाँ अधम से
पहले ही हम चल बसें, तो फिर जग बँटे रेवड़ियाँ रे
उड़ जाएँ तो लौट न आएँ, ज्यों मोती की लड़ियाँ रे

●●

रपट

गुड़गांव के आटोमोबाइल सेक्टर में मजदूरों के हालात

अजय स्वामी

गुड़गांव के हाई-वे पर बने अपार्टमेण्ट-शापिंग मालों, आईटी पार्क, साफ्टवेयर व आटो सेक्टर की कम्पनियों की चमक-दमक के कारण गुडगांव की चर्चा पूरे देश में है। अकेले हरियाणा कुल आटोमोबाइल सेक्टर के 48 प्रतिशत का योगदान दे रहा है। आज गुड़गाँव-मानेसर-धारूहेड़ा-बावल से भिवाड़ी तक की औद्योगिक पट्टी देश के आटोमोबाइल कम्पनियों के सबसे बड़े केन्द्र में से एक है।

गुड़गाँव-मानेसर-धारूहेड़ा-बावल-भिवाड़ी के आटोमोबाइल की अत्याधुनिक कम्पनियों की चमक-दमक के पीछे की सच्चाई है कि एक बहुत बड़ी मज़दूर आबादी से बेहद कम मज़दूरी पर आधुनिक गुलामों की तरह काम कराया जाता है। मारुति सुजुकी, हीरो मोटर, होण्डा से लेकर बजाज जैसी आटो कम्पनियाँ करोड़ों-अरबों का मुनाफा पीट रही हैं जबकि दूसरी ओर हरियाणा के आटोमोबाइल सेक्टर के मज़दूर अमानवीय परिस्थितियों में गुलामों की तरह खटने को मजबूर हैं।

गुड़गाँव-मानेसर-धारूहेड़ा-बावल में आटोमोबाइल और आटो पार्टस बनाने की करीब 1000 इकाइयों में काम करने वाले मज़दूरों की आबादी 10 लाख से ज़्यादा है जिनमें से 80 फीसदी आबादी ठेका या कैजुअल मज़दूरों की हैं जो आम तौर पर 12-12 घण्टे कमरतोड़ मेहनत के बाद बमुश्किल-तमाम आठ-दस हज़ार रुपये पाते हैं। यह स्थाई मज़दूर के वेतन से 4-5 गुना कम होता है। आटो सेक्टर के मुनाफे में मज़दूरों का हिस्सा नगण्य है क्योंकि मौजूदा तकनीक के हिसाब से आज आटो मज़दूर अपने 8 घण्टे के कार्यदिवस में केवल 1 घण्टे 12 मिनट के काम का वेतन पाता है। बाकी 6 घण्टे 48 मिनट का कार्य वह बिना भुगतान के करता है। कैजुअल और ठेका मज़दूरों के सिर पर हमेशा छँटनी की तलवार लटकी रहती है। मज़दूर के लिए श्रम-कानूनों से लेकर लेबर कोर्ट मौजूद है लेकिन सारे कानून प्रबन्धन और ठेकेदारों की जेब में रहते हैं।

श्रमिक की कार्यस्थितियों बेहद कठिन है मशीनों की रफ्तार बढ़ाकर उनसे बेतहाशा काम लिया जाता है। इसका एक उदाहरण मारुति सुजुकी का मानेसर प्लाण्ट है जहाँ इंजन शाप के ब्लाक लाईन में एक मज़दूर द्वारा अपने कार्य के लिए 46 से 52 सेकेण्ड में ही 13 अलग-अलग प्रक्रियाएँ पूरी करनी होती है। वहीं कम तनावयुक्त मानी जाने वाली सीट असेम्बली लाइन पर अलग-अलग कन्वेयर बेल्ट में आने वाली कारों पर सीट लगायी जाती है जिसमें कि 30 अलग माडलों की सीट लगानी होती है। सीट लगाने को लिए एक मज़दूर को कम्पनी द्वारा 36 सेंकेण्ड तय किये गये थे किन्तु श्रमिकों के दबाव के कारण अब ये 50 सेकेण्ड है जिसमें लगभग 15 प्रक्रियाएँ पूरी करनी होती हैं। औसतन मज़दूर 8.30 घण्टे की शिफ्ट में 530 कारों में सीट लगाते है। मज़दूरों को मशीन की तरह लगातार इन कामों को करना होता हैं, इन्हें दोहराना होता है और गति बरकरार रखनी होती है।

फैक्टरियों से बाहर भी मज़दूरों की ज़िन्दगी कम नारकीय नहीं है। आटो सेक्टर में अधिकांश मज़दूरप्रवासी हैं। असल मेंप्रबन्धन, प्रशासन और ठेकेदार ज़्यादा से ज़्यादा प्रवासी मज़दूरों को काम पर रखना पसंद करते हैं इस तरह वे आसानी से मज़दूरों के बीच हरियाणवी व ग़ैर-हरियाणवी या फिर राजस्थानी व ग़ैर-राजस्थानी के नाम पर उनको बाँट सकते हैं।

ज़्यादातर मज़दूरों की रिहायश औद्योगिक क्षेत्र के आस-पास बनी नयी कालोनियों और गाँवों में है। जहाँ किराये के एक-एक कमरे में 4-5 मज़दूर रहते हैं। ठेका मज़दूरों के वेतन का एक अच्छा-ख़ासा हिस्सा कमरों के किराये पर चल जाता है।

स्वास्थ्य सुविधा के नाम लाखों मज़दूर आबादी पर केवल एक ईएसआई अस्पताल और ईएसआई डिस्पेंसरी है। यहाँ भी स्वास्थ्य सुविधाएँ बड़ी लचर हालत में हैं। यहाँ पर मज़दूरों के लिए न तो मनोरंजन केन्द्र है न ही शाम को आराम करने के लिए पार्क।

लेकिन यह भी सच है कि मज़दूर इस घुटन-भरे माहौल को चुपचाप बर्दाश्त नहीं कर रहे हैं।पिछले दस बरसों में गुड़गाँव से लेकर बावल व भिवाड़ी तक मज़दूर अपने कानूनी हक़ों के लिए संघर्ष कर रहे हैं।

आज ऐसा लगता है कि गुड़गाँव ही नहीं बल्कि देश के स्तर पर मज़दूर आन्दोलनों के दमन में विभिन्न राज्यों की सरकारें परस्पर प्रतिस्पर्धा कर रही हैं। इसके अलावाफैक्टरी-प्रबन्धन श्रमिक-आंदोलन को तोड़ने के लिएबांउसरों से लेकर बदमाशों का इस्तेमाल करता है।मज़दूरों के अधिकारों की रक्षा के लिए बना श्रम-विभाग भी मालिकों के पक्ष में खड़ा दिखता है।मज़दूरों के ज़्यादातर संघर्ष अपने कानूनी अधिकारों को लेकर होते हैं। ये हक़ श्रम कानूनों के रूप में कागज़ों पर तो दर्ज़ हैं लेकिन हकीकत में मज़दूर इसे लागू करने के लिए लगातार संघर्ष कर रहे हैं।

आटो सेक्टर में मज़दूर आन्दोलन के सामने चुनौती है कि पूँजीपतियों ने मज़दूरों की कारखाना-आधारित एकता तोड़ने के लिए उत्पादन प्रक्रिया को काफी हद तक बिखराने की नीति बनायी है।

साथ ही सस्ते कच्चे माल से लेकर सस्ती श्रमशक्ति के निर्बाध दोहन के लिए मालिकों ने बड़ी फैक्टरियों को तोड़कर कई छोटी-छोटी फैक्टरियों में बिखरा दिया है। आज एक कार बनाने वाले कारखाने के नीचे सैकड़ों वेण्डर कम्पनियों के मज़दूर काम करते हैं।

कारखाने के भीतर भी स्थायी, कैजुअल और ठेका की श्रेणियों में मज़दूरों का बँटवारा करके मज़दूरों की एकता को तोड़ने की कोशिश की है फैक्टरी यूनियनें सभी मज़दूरों को साथ लेने की आवाज़ उठती हैं लेकिन समझौते के वक्त कैजुअल या ठेका मज़दूरों की माँग को दबा दिया जाता है। आन्दोलन तभी सफल हो सकता है जब स्थायी, कैजुअल और ठेका मज़दूरों की व्यापक एकता बने।

सम्पर्क: 8685030984

गुम हो रहा देश का भविष्य

रामफल द्योरा

अक्सर सार्वजनिक स्थानों, बस स्टैंड व रेलवे स्टेशनों पर भीख मांगते, होटल-ढाबों व कहीं बंधुवा मजदूर के रूप में काम करते हुए 'छोटू' देखते हैं। हमारी जिज्ञासु प्रवृत्ति कभी यह जानने के लिए प्रेरित नहीं हुई कि आखिर ये 'छोटू' बने बच्चे हैं कौन? कहां से पैदा होते हैं? कभी दो कदम आगे बढ़कर उनसे दो बातचीत करने की कोशिश नहीं की। इनके प्रति एक ही धारणा बनी हुई है कि इनके माता-पिता पैसों के लालच में जान-बूझकर ये सब करवाते हैं। लेकिन सभी का केवल यह सच नहीं होता है।

हाल ही में बीती 25 मई को 'इंटरनेशनल मिसिंग चिल्ड्रन डे' गुजरा है। इस दौरान सोशल मिडिया में भी जमकर ट्रेंडिंग हुई। हम अक्सर अपनी बातचीत में, बच्चों संबंधी शिक्षा के विषय में कहते हैं कि बच्चे देश का भविष्य होते हैं। आदतन बोले या लिखे जाने वाले इस वाक्य को शायद ही कोई गंभीरता से लेता हो। हमारी सरकारें तो निश्चित रूप से नहीं लेती। यही वजह है कि बीते कुछ वर्षों से बच्चों के लापता होने के मामले लगातार बढ़ने की हकीकत एक बार नहीं कई बार सामने आने पर भी हमारी सरकारों ने गंभीरता से नहीं लिया है।

जुलाई 2014 में गृह मंत्रालय के द्वारा 2011 से 2014 जून तक की पेश हुई रिपोर्ट के अनुसार 3 वर्षों के बीच 3.25 लाख बच्चे लापता हुए। औसतन प्रतिवर्ष एक लाख बच्चे लापता हो रहे हैं। एनसीआरबी (नेशनल क्राईम रिपोर्ट ब्यूरो) के अनुसार हर 6वें मिनट में देश में एक बच्चा गुम होता है। यहां ध्यान देने वाली बात ये है कि गायब होने वाले बच्चों में 55 प्रतिशत लड़कियां हैं, जो बहुत ही गंभीर है और गुम हुए बच्चों में से 45 प्रतिशत बच्चों का आज तक कोई अता-पता नहीं मिला है। संयुक्त राष्ट्र संघ की एक रिपोर्ट के अनुसार भारत में हर साल औसतन 44500 बच्चे गुम हो जाते हैं। हमारे पड़ोसी देश पाकिस्तान का यह आंकड़ा 3 हजार प्रति वर्ष है और आबादी में हमसे ज्यादा चीन में बच्चे गुम होने का आंकड़ा 10 हजार प्रति वर्ष है। इससे यह अंदाजा लगाया जा सकता है कि हमारी व्यवस्था इस पर कितनी गंभीर है।

देश में राज्यवार लापता होने वाले बच्चों की संख्या महाराष्ट्र नंबर वन रहा है। जहां पिछले 3 वर्षों में 50 हजार बच्चे गुम हुए हैं। दूसरे नंबर पर मध्य प्रदेश में 24836 बच्चे गुम हुए हैं। दिल्ली 19948 व आंधे प्रदेश में 18540 गुम हुए बच्चों में तीसरे व चौथे नंबर पर है।

बचपन बचाओ आंदोलन के अनुसार जनवरी 2008 से 2010 तक के बीच देशभर के 392 जिलों में 1,14,480 बच्चे लापता हुए। बचपन बचाओ आंदोलन ने अपनी किताब 'मिसिंग चिल्ड्रन आफ इंडिया' में कहा है कि उसने ये आंकड़े 392 जिलों में आरटीआई दायर कर हासिल किए, जो पंजीकृत भी हैं और इस तरह के बच्चों की संख्या भी हजारों में है, जिनके अभिभावक अपनी परिस्थितियों के चलते स्वयं छोड़ देते हैं, ऐसे में उनकी गुमशुदगी की रिपोर्ट संभव ही नहीं।

जाहिर है कि राज्यों की कानून व्यवस्था की मशीनरी का बच्चों को ढूंढने पर कोई फोकस नहीं है। जिन राज्यों ने अपने यहां लापता व्यक्तियों के ब्यूरो बनाए हैं, वहां भी बच्चों की तलाश प्राथमिकता में नहीं है।

राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग हर साल 'एक्शन रिसर्च आन ट्रेफिकिंग इन वूमेन एंड चिल्ड्रन' रिपोर्ट जारी करता है कि जिन बच्चों का पता नहीं लगता, वास्तव में लापता नहीं होते हैं, बल्कि उनका अवैध व्यापार किया जाता है। बड़ी संख्या में बच्चों को यौन पर्यटन के नृशंस कारोबार में फैंक दिया जाता है। बाल बंधुआ मजदूरी करने पर मजबूर किया जाता है। उनके अंग भंग करके उनसे भीख मंगवाई जाती है। बच्चों के कीमती अंगों को निकालकर उनका कारोबार किया जाता है और उनको अपने हाल पर छोड़ दिया जाता है। बच्चों को ज्यादातर लड़कियों को दूसरे देशों में बेच दिया जाता है। पिछले दिनों एक लड़की जो मध्य प्रदेश से गुम हुई थी, वो ईरान से मिली, जो इस बात का सबूत है।

सरकारी आंकड़ों के मुताबिक दुनिया में हर साल 72 लाख बच्चे बाल दासता अर्थात बंधुआ आधुनिक गुलामी का शिकार होते हैं। इनमें से एक तिहाई बच्चे दक्षिण एशियाई देशों के होते हैं। भारत में इस स्थिति की गंभीरता इस बात से पता चलती है कि हर साल यहां 7 लाख बच्चों की गुमशुदगी की रिपोर्ट दर्ज करवाई जाती है।

जून 2016 के पहले सप्ताह में जारी आस्ट्रेलिया आधारित मानवाधिकार समूह 'वॉक फ्री फाऊंडेशन' की तरफ से एक रिपोर्ट में 'वैश्विक गुलामी सूचकांक' के अनुसार दुनिया भर में महिलाओं व बच्चों समेत चार करोड़ 58 लाख लोग आधुनिक गुलामी यानी बंधुआ मजदूरी, वेश्यावृति और भीख की जकड़ में हैं। रिपोर्ट के अनुसार भारत में एक करोड़ 83 लाख 50 हजार लोग आधुनिक गुलामी में जकड़े हुए हैं।

लापता और अपहृत बच्चों के मामलों में सरकार के इरादों में भी बेरूखी देखी है। पिछली सरकार के गृह राज्य मंत्री ने संसद में एक विपक्षी नेता द्वारा पूछे गए सवाल के जवाब में गुम हुए बच्चों के माता-पिता को जिम्मेवार बताया। तत्कालीन गृह राज्य मंत्री ने इस बड़ी सच्चाई को बयान करना जरूरी नहीं समझा कि बच्चों के अवैध व्यापार में लिप्त गिरोह ने देश ही नहीं, बल्कि अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अपना नेटवर्क कायम कर रखा है। कुछ ही दिन पहले मध्य प्रदेश के तत्कालीन गृह मंत्री का एक मिले अपहृत बच्चे के घर पहुंच कर उससे किए सवाल-जवाब चर्चा में रहे। उसने बच्चे को धमकाते हुए पूछा नशा करते हो क्या? घर से क्यों भागे? अगर दोबारा घर से भागे तो तुम्हें और तुम्हारे घर वालों को अंदर कर

देंगे।

यह बात सर्वविदित है कि प्रशासन बच्चों से जुड़े मामलों में असंवेदनशील और अकर्मण्य है। क्योंकि इतने बड़े पैमाने पर बच्चों का यूं लापता होना अपने-आप में यह बताने के लिए काफी है कि इसके पीछे बच्चों की तस्करी में लिप्त लोगों का हाथ हो सकता है। देखने में आया कि बच्चों के लापता होने जैसे बेहद चिंताजनक विषय पर पुलिस का यह मानना रहता है कि बच्चे ज्यादातर कमजोर तबकों यानी अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के होते हैं और इनके गायब होने वाले बच्चे या तो कहीं भाग जाते हैं या भटक जाते हैं और कुछ समय बाद खुद वापिस लौट आते हैं। पर सच्चाई कुछ ओर है, क्योंकि विभिन्न शोध, मानवाधिकार आयोग और गैर सरकारी संगठनों के अध्ययन बताते हैं कि लापता हुए ज्यादातर मासूम बच्चे तस्करी का शिकार होते हैं। मानव तस्कारों के हत्थे चढ़े बच्चों के सामने शोषण और अपराध की अंधेरी दुनिया से बाहर निकलने का कोई रास्ता नहीं होता है।

ये भी सच है कि कमजोर तबकों के प्रति पुलिस का रवैया हमेशा गैर जिम्मेदाराना व उदासीन रहता है। सदियों से सामाजिक व आर्थिक रूप से पिछड़े ये लोग ना तो पुलिस तंत्र पर अपना दबाव बना पाते हैं और न ही वे कोई कानूनी सहायता हासिल कर पाते हैं। मानव तस्करी में लिप्त गिरोहों को भी यकीन होता है कि इस तबके के बच्चों को गायब करना उनके लिए ज्यादा आसान व सुरक्षित है। वे कुछ दिनों बाद हार-थककर अपने-आप चुप होकर बैठ जाते हैं क्योंकि गरीबी सहन करना और सब्र करना जल्दी सिखा देती है।

कहने को तो बाल अधिकारों को लेकर हमारे देश में कई कड़े कानून बने हुए हैं। संयुक्त राष्ट्र घोषणा पत्र में दर्ज बच्चों के सभी अधिकार सुनिश्चित कराने की वचनबद्धता भी भारत ने दी हुई है। मगर हकीकत सरेआम सड़कों पर भीख मांगते, कचरा उठाते, घरों-दुकानों में कोल्हू के बैल की तरह पिसते नाबालिग बच्चों पर प्रशासन की नजर नहीं जा पाती।

इस भयावह स्थिति को जानते हुए भी गुम हुए बच्चों के संदर्भ में दिल्ली पुलिस के एक उच्च पदस्थ अधिकारी की ओर से एक परिपत्र भेजा गया कि गायब या अपहृत बच्चों के मामलों में अंतिम रिपोर्ट लगाने की समयावधि तीन साल की बजाए एक साल कर दी जाए। स्पष्ट है कि पूर्व में किसी बच्चे के गायब या अपहृत होने के बाद रिकार्ड में दर्ज रहता था। इस परिपत्र पर दिल्ली बाल अधिकार संरक्षण आयोग ने आपत्ति जताते हुए रद्द कर दिया।

बचपन बचाओ आंदोलन की सरकारी हीला-हवाली पर 2012 की एक याचिका (75/2012) बचपन बचाओ आंदोलन बनाम भारत सरकार व अन्य के मामले पर सुप्रीम कोर्ट ने टिप्पणी करते हुए कहा कि पुलिस तंत्र में गरीबों की सुनवाई नहीं होती है सिर्फ अमीरों की सुनवाई होती है। गरीबों के लापता बच्चों के माता-पिता को ये कहकर टाला जाता है कि कुछ समय बाद अपने-आप घर लौट आएंगे। यह 'कुछ समय' मानव तस्करों को अपना खेल खेलने के लिए पर्याप्त होता है।

एक रिकार्ड के अनुसार असम व पश्चिमी बंगाल से मुस्लिम व आदिवासियों के बच्चे उठाकर हरियाणा में बेचे जाते हैं और बिहार से कृषि कार्य के लिए बंधुवा मजदूर के रूप में हरियाणा में बेचे जाते हैं, जिनसे गन्ना आदि के खेतों में काम करवाया जाता है। अप्रैल 2015 में फरीदाबाद में एक ऐसा मामला पाया गया। पुलिस ने एक धनी परिवार के घर से प. बंगाल की 14 वर्ष की रेखा मुण्डा (काल्पनिक नाम)की लड़की को मुक्त करवाया। जिसको घर में बंधक बनाकर रखा गया था। उससे सारा काम करवाया जाता था।

लेकिन इस बात से कुछ संतोष होता है कि बाल तस्करी व गुम होते बच्चों पर बीते वर्षों में सुप्रीम कोर्ट ने कठोर व संवेदनशील रुख अपनाया है। लापता बच्चों के प्रति पुलिस की लापरवाही के संदर्भ में सुप्रीम कोर्ट ने फरवरी 2013 में स्पष्ट कर दिया था कि बच्चों के गायब होने के हर मामले को संज्ञेय अपराध के तौर पर दर्ज करना होगा और उसकी जांच करनी होगी। ऐसे तमाम लंबित मामले, जिनमें बच्चा अब भी गायब है, मगर एफआईआर दर्ज नहीं की गई है। उनमें एक माह के भीतर रिपोर्ट दायर करनी होगी। गायब होने वाले हर मामले में मानना होगा कि बच्चा अपहृत हुआ है और अवैध व्यापार का शिकार हुआ है। वर्ष 2014 में सुप्रीम कोर्ट ने छत्तीसगढ़ व बिहार की सरकारों को फटकार लगाते हुए पूछा था कि उन्होंने लापता बच्चों के मामलों में 2013 में दिए गए निर्देशों का पालन क्यों नहीं किया। सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि मशीनी तरीके से जवाब दाखिल करने और जमीन पर कुछ नहीं करने का तमाशा बंद होना चाहिए और न्यायालय ने कठोरता से कहा कि केंद्र व राज्य सरकारें सुनिश्चित करें कि यदि बच्चे गायब होते हैं तो वे राज्य के डीजीपी और मुख्य सचिव की जवाबदेही मानते हुए उनसे जवाब तलब करे।

बच्चों को मुक्त करवाने या तलाश करने में हरियाणा पुलिस का सराहनीय कदम रहा है। केंद्रीय गृहमंत्री राजनाथ सिंह ने 2015 में चलाए 'आप्रेशन स्माइल' के द्वारा कुल 19000 बच्चों को आधुनिक गुलामी से मुक्त करवाया गया और उसमें हरियाणा पुलिस कुल 5366 बच्चों को मुक्त कराके इस आप्रेशन में सबसे अग्रणी रही।

हरियाणा में 1 जुलाई 2015 से 31 जुलाई 2015 तक 'आप्रेशन मुस्कान' चलाया गया, जिसके तहत गुम हुए बच्चों की तलाश करना था। 24 प्रशिक्षित टीमों को इस कार्य में लगाया गया। गुड़गांव पुलिस कमिश्नर नवदीप सिंह विर्क ने बताया कि 'मुस्कान आप्रेशन' के द्वारा हरियाणा में (एक महीने के दौरान) ऐसे बच्चों की पहचान की गई, जो बच्चे लापता थे। अकेले गुड़गांव से ऐसे 1094 बच्चे थे और उन्होंने बताया कि 809 बच्चों को उनके परिवार वालों से दोबारा मिलाया गया। पुलिस रिकार्ड के अनुसार प्रत्येक गुम हुए 3 बच्चों में से 2 बच्चे बिना पहचान के रह जाते हैं।

कड़े कानूनों के बाद भी देश में लापता होने वाले बच्चों की संख्या में हर साल इजाफा हो रहा है। ऐसे मामलों में तब तक कमी नहीं आएगी, जब तक न्यायिक तंत्र व कानून लागू करने वाले महकमों में ऐसे मामलों को प्राथमिकता ना दी जाए।

लापता बच्चों का ना मिलना उन अभिभावकों की अंतहीन पीड़ा है, जिन्हें जीवनभर अपने बच्चों से अलग होकर जीना पड़ता है। बच्चे किसी देश और समाज का भविष्य व बुनियाद होते हैं और उनके प्रति संवेदनहीनता, देश के भविष्य के लिए घातक हैं। इसलिए जरूरी है कि बच्चों के संरक्षण व उनके अधिकारों की रक्षा को पहली प्राथमिकता दें, ताकि इस त्रासदी का अंत हो। ●

सम्पर्क: 9466544638

जोहड़ जैसे प्राकृतिक जल स्रोतों को बचाना होगा

सत्यवीर नाहड़िया

देहात की मनोरम छटा में चार चांद लगाने वाले जोहड़ों का अस्तित्व खतरे में है। कभी लोकजीवन की अगाध श्रद्धा व आस्था के केंद्र रहे जोहड़ आज प्रदूषण के गढ़ बन चुके हैं। सांस्कृतिक धरोहर के रूप में सुविख्यात रहे ये प्राकृतिक जल स्रोत आज अपनी बदहाली पर आंसू बहाने पर विवश हैं। जोहड़ वाटर हार्वेस्टिंग तथा वाटर रिचार्जिंग जैसी जल संरक्षण की विधियों के ये प्राकृतिक नायाब नमूने थे और पर्यावरण के संतुलन संरक्षण एवं संवर्धन में अहम भूमिका निभाते थे। किंतु इन सब पहलुओं की चिंता किसे है – यह पहलू भी चिंतनीय है।

लोक आस्था के प्रतीक रहे जोहड़ हमारे लोकजीवन के अभिन्न अंग रहे हैं जिसका अनुमान लोक कथाओं तथा लोकगीतों में जोहड़ों के चित्रण से बखूबी लगाया जा सकता है। लोकसाहित्य में गांव की सांस्कृतिक समृद्धि में जोहड़ को उच्च स्थान प्राप्त है। जोहड़ के बिना गांव की कल्पना तक नहीं की जा सकती। एक ओर जहां इन जोहड़ों के किनारे स्थित शिवालयों के साथ इन जलस्रोतों के प्रति भी जन आस्था के प्रमाण आज लोकजीवन में रचे-बसे हैं वहीं दूसरी ओर हमारी यह प्राचीन जोहड़ संस्कृति पर्यावरण संरक्षण तथा पेड़-पौधों के प्रति मानवीय प्रेम से जुड़ी रही है। यही कारण है कि आज भी इन जोहड़ों के किनारे बड़, पीपल व नीम की त्रिवेणी के अलावा अनेक पेड़-पौधों की विशिष्ट पहचान इन्हें प्राप्त है।

एक वक्त था जब जोहड़ों के किनारे पेयजल के प्रमुख स्रोत कुएं व पनघट हमारी प्राचीन ग्रामीण संस्कृति के केंद्र के रूप में जाने जाते थे। पनघट की रौनक देखते ही बनती थी जहां न केवल सभी सुख-दुख सांझे किये जाते थे बल्कि गांव देहात की तमाम खबरों का आदान-प्रदान इन्हीं धरोहरों पर होता था। गांव के दानवीर जोहड़ों के घाट, पनघट व कुएं आदि के निर्माण में विशेष रूचि लेते थे तथा इसे पुण्य का कार्य माना जाता था। इन पनघटों पर नेजू-डोल, कुंए की चकली, हास-परिहास की स्वर लहरियों से जो से जो आपसी सौहार्द का माहौल बनता था उसमें सारे दुख तकलीफ हल्के हो जाते थे। जोहड़ों की पवित्रता बनी रहे इसके लिए गांव की अपनी-अपनी आचार-संहिताएं होती थी जिसे अभी महिला-पुरुष, नौजवान व बच्चे लोकलाज से निभाते थे। जोहड़ों का यह रखरखाव तथा मान-सम्मान आज बीते युग की बात हो चुकी है।

आज चिंतनीय पहलू यह है कि जोहड़ न केवल अपने प्राचीन स्वरूप को याद करके किंकर्त्तव्यविमूढ़ हैं बल्कि वर्तमान बदहाली व वीरानी के कारण अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ते प्रतीत हो रहे हैं। बढ़ते पर्यावरण प्रदूषण, मानवीय मूल्यों में आई गिरावट तथा सामाजिक संवेदनशून्यता के चलते आज देहात की ये प्राचीन धराहरें तिल-तिल कर नष्ट हो रही हैं। प्रदूषण की मार झेल रहे इन जोहड़ों की चहुमुंखी बेकद्री जारी है। ग्रामीण अंचलों में पेयजल व अन्य उद्देश्यों के लिए पानी की जरूरतों के संसाधनों के विकल्प मुहैया होने के कारण इन जोहड़ों के रखरखाव के प्रति घोर उपेक्षा बरती जा रही है। आलम यह है कि अधिकांश गांवों में जोहड़ आजकल गंदगी के प्रमुख केन्द्र बने हुए हैं। गांव की गलियों की गंदगी की निकासी जोहड़ों में की जा रही है जिसके चलते जोहड़ों के माथे पर कालिख पुत चुकी है।

एक ओर जहां सरकारें हमारी प्राचीन संस्कृति में अहम स्थान रखने वाले इन जोहड़ों की चारदीवारी व रखरखाव के लिए विशेष अनुदान मुहैया कराती हैं तथा जोहड़ों के साथ प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से अनेक परियोजनाएं जोड़ी गयी हैं किंतु जोहड़ों को प्रदूषण की इस मार से बचाने के लिए अभी तक किसी स्तर पर कोई पहल न होना चिंतनीय है। पर्यावरण संरक्षण में अहम भूमिका निभाने वाले इन जोहड़ों के अस्तित्व को बचाने के लिए नये सिरे से प्रयास करने होंगे जिसके लिए सामाजिक संगठनों तथा पर्यावरण प्रेमियों को आगे आना होगा। यदि समय रहते इन सांस्कृतिक धरोहरों को नहीं सहेजा गया तो जल संचयन, संरक्षण एवं संवर्धन में प्रमुख भूमिका वाले इन जोहड़ों के अस्तित्व को बचाने में बहुत देर हो चुकी होगी।

रेवाड़ी-9416711141

अफवाहों का समाजशास्त्र

सुरेन्द्रपाल सिंह

अफवाह की मारक शक्ति समाज को छिन्न-भिन्न कर सकती है, खून की नदियां बहा सकती है, तबाही का मन्जर और ना भरने वाले जख्मों को पैदा कर सकती है।

हरियाणा में जाट आरक्षण आंदोलन से पनपी सामाजिक दरार को पाटने के उद्देश्य से गठित किये गए सद्भावना मंच के राज्य सयोंजक के नाते मार्च और अप्रैल 2016 के राज्य भर में घूमते हुए अफवाह के खतरनाक चरित्र के व्यवहारिक पक्ष को समझने का मौका मिला। समझ में आया कि एक सामान्य घटना को अफवाह के माध्यम से अतिरंजित रूप में फैलाया जा सकता है और और जिसके भयंकर परिणाम निकल सकते हैं।

ऐसी क्या खास बात है जो एक सूचना खतरनाक हथियार में बदल जाती है। अफवाह में परिवर्तित होने वाली सूचना का स्वरूप अतिरंजित बहुप्रसारित व असत्यापित होता है।

अभी फरवरी 2016 में हरियाणा में जाट आरक्षण आंदोलन के बहाने आगजनी और जातिगत हिंसा का एक खतरनाक खेल देखा गया। इस आंदोलन के दौरान अफवाहों ने उत्प्रेरक की भूमिका निभाई।

18 फरवरी 2016 को रोहतक के कॉलेजों में पुलिस ने छाँट छाँट कर जाट छात्रों को गोलियों से भून के लाशों के ढेर लगा दिए जबकि सच्चाई ये थी कि पुलिस ने हॉस्टल में घुसकर जो भी छात्र मिला उन सबकी निर्मम पिटाई की थी। वास्तविक स्थिति का अधिकारिक सूत्रों से जब तक इस मामले में सत्यापित सूचना दी जाती है, तब तक असत्यापित एवम् बहुप्रचारित अफवाह ने अपना खेल खेल लिया होता है।

अफवाह किसी विशेष प्रसंग में एक प्रभावी उपकरण का काम करती है। संवेदनशील माहौल में जब लोगों की बड़ी संख्या एक विशेष मानसिक व्यग्रता के दौर से गुजर रही होती है तो उन्हें कुछ सवालों के जवाब की तलाश होती है और ऐसे में कोरे झूठे व सनसनीखेज जवाब अफवाह के रूप में अपना काम कर जाते हैं। चूंकि नाजुक परिस्थितियों में प्रभावित समुदायों की एक सहज मानसिक व्यग्रता होती है कि वह स्थिति का मूल्यांकन करे और इसी छटपटाहट में अफवाह रिक्त स्थान को भरने का काम बखूबी कर देती है।

कोई भी वस्तु बिना धरातल के नहीं टिक पाती। अफवाहों के लिए भी एक विशेष मानसिक धरातल की आवश्यकता पड़ती है। जब वातावरण में किसी ऐसी वारदात के फलस्वरूप जिसका संभावित असर एक बड़ी संख्या के लोगों पर हो सकता है तो ऐसे अनिश्चय के माहौल में स्थिति को भाँपने के लिए सूचनाएं प्राप्त करने की एक नैसर्गिक उत्कुंठा होती है और ऐसा भी होता है कि प्रभावित समुदाय उस वक्त अपने मन माफिक सूचना की तलाश करता है या ऐसी सूचना गढ़ने का प्रयास करता है जो उसे अपने हित में लगती हुई दिखाई देती है। ऐसे में अफवाहों का बाजार गर्म होने की पूरी पूरी संभावनाएं रहती है। जैसे कि रोहतक में 'एक बुत को तोड़ दिया गया' ये अफवाह एक विशेष भीड़ के बड़े हिस्से की आक्रामक कार्यवाही को वैध ठहरा देती है जबकि उस भीड़ की व्यग्रता के अनेक राजनैतिक-सामाजिक उत्प्रेरक पहले से मौजूद थे।

इस प्रकार अनिश्चय एवम् व्यग्रता के वातावरण में अफवाहों के लिए एक धरातल का निर्माण होता है और लोग अपनी आर्थिक-राजनैतिक-सामाजिक पैतरों के

अनुरूप उस संवेदनशील माहौल में अपनी समझ पैदा करने या अपना दांव खेलने की प्रक्रिया में असत्यापित सूचना को या तो सही मान बैठते हैं या ऐसी बातों को सही ठहराने की चेष्टा करते हैं। इस विषय में शोध ये बताता है कि विशेष परिस्थिति में अधिक व्यग्रता के शिकार लोग अफवाहें फैलाने में अधिक सक्रिय पाए जाते हैं और ऐसे में ऐसी अफवाहें जिनके भयँकर दुष्परिणाम हो सकते हैं, अधिक तेजी से फैलती हैं जबकि इसका उल्टा कम होता है। यानी, ऐसी अफवाहें जिनका नतीजा कुछ अच्छे में निकल सकता है आमतौर पर तेजी नहीं पकड़ पाती।

18 फरवरी 2016 को रोहतक में कोर्ट परिसर में धरने पर बैठे कुछ वकीलों और एक जलूस में शामिल कुछ कार्यकर्ताओं के बीच तनातनी और मार-पिटाई हुई जिसमें गैर जाट वकीलों को अधिक चोटें लगी। लेकिन इस घटना का जो संस्करण म द वि वि के सामने जाट आरक्षण के समर्थन में धरना स्थल पर गया उसके अनुसार 35 बिरादरी वालों ने जाट वकीलों को पीट पीट कर अधमरा कर दिया है। फूस सूखा था और खाली एक दियासलाई की आवश्यकता थी उसे जलाने के लिए। बस वकीलों वाली घटना की अफवाह ने दियासलाई का काम कर दिया और इसके बाद से हिंसा, लूट, आगजनी, मौत का खेल इस प्रकार हुआ कि हरियाणा प्रदेश जल उठा। नई नई अफवाहें अपना गुल खिलाती रहीं और गाँवों से ट्रॉलियां भर भर के रोहतक, कलानौर, झज्जर, लड़सौली आदि इलाकों में पहुँचती रही। सारी लामबंदी अफवाहों के उत्प्रेरक के सहारे होती रही और प्रदेश बर्बरता का भुक्तभोगी बनता रहा।

अफवाहें ऐसी सूचना होती हैं जो किसी समुदाय विशेष की भावनात्मक आवश्यकता की पूर्ति करती हैं और इसका सबसे बड़ा माध्यम मुख से उच्चारित शब्द होते हैं। पिछले कुछ वर्षों से सोशल मीडिया का दुरूपयोग अफवाहों के तेज गति से प्रसार होने लगा है। ऑडियो, वीडियो क्लिप का व्हाट्सएप्प, फेस बुक आदि के माध्यम से प्रसार ने अफवाहों की मारक शक्ति को हज़ारों गुना बढ़ा दिया है। कितनी ही हिंसक घटनाएं ऐसी हुई हैं जिनके पीछे ऐसी वीडियो क्लिप का सहारा लिया गया है जिसका वास्तविकता से कोई संबंध नहीं था।

अफवाहें फैलाने में ऐसे तत्वों की खास भूमिका होती है जो विशेष सामाजिक राजनैतिक मंशा रखते हुए किसी घटनाक्रम को अंजाम देना चाहते हैं। इसमें कोई शक नहीं है कि अफवाहें तभी प्रभावी होती हैं जब कहीं ना कहीं सामाजिक-राजनैतिक परिस्थितियां इनके लिए ग्राह्य हों। डर और नफरत के बीज अफवाहों में होते हैं जो प्रस्फुटित होकर हमलों व सामाजिक बंटवारे का काम करते हैं। इस प्रक्रिया में एक ऐसी सामूहिक समझ की प्रक्रिया काम करती है जो झूठी परिकल्पनाओं पर आधारित होती है।

ऐसा भी होता है कि राज सत्ता अपने किसी मंसूबे को पूरा करने के लिए अत्यंत सुनियिजित तरीके से अफवाह फैलाने का कार्य करें। जैसा कि युद्ध के दौरान बहुत सी सूचनाएं एकदम झूठी होती है लेकिन देशभक्ति की भावना और कथित दुश्मन देश के विरुद्ध नफरत फैलाने के लिए ये जरुरी माना जाता है। उदाहरण के लिए 1940 में द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान अमेरिका में रयूमर प्रोजेक्ट ने अपना काम इसी उद्देश्य से किया।

अफवाह के चरित्र और इसकी मारक शक्ति को समझते हुए इस बात को हम बखूबी समझ सकते हैं कि किसी भी संवेदनशील माहौल को अगर बिगड़ने और बेकाबू होने से बचाना है तो सबसे जरुरी काम अफवाहों के तंत्र को ध्वस्त करना है। सरकार के लिए सत्यापित सूचनाओं को जनता तक पहुँचाने का कार्य सुनियोजित और तेज गति से करना आवश्यक है। सोशल मीडिया पर आधारहीन और नफरत फैलाने के उद्देश्य से फैलाई जा रही भ्रांतियों को रोकने के लिए कठोर कदम उठाने बहुत जरूरी है। नागरिक समूहों की भी संवेदनशील वातावरण में बड़ी जिम्मेवारी बन जाती है कि अफवाह तंत्र को कमजोर करने के लिए यथाशक्ति भरसक प्रयास करे। ●●

सम्पर्क: 9872890401

अश्लील

हरिशंकर परसाई

शहर में ऐसा शोर था कि अश्लील साहित्य का बहुत प्रचार हो रहा है। अखबारों में समाचार और नागरिकों के पत्र छपते कि सड़कों के किनारे खुलेआम अश्लील पुस्तकें बिक रही हैं।

दस-बारह उत्साही समाज-सुधारक युवकों ने टोली बनाई और तय किया कि जहां भी मिलेगा हम ऐसे साहित्य को छीन लेंगे और उसकी सार्वजनिक होली जलाएंगे।

उन्होंने एक दुकान पर छापा मारकर बीस-पच्चीस अश्लील पुस्तकें हाथों में ली। हरेक के पास दो या तीन किताबें थीं। मुखिया ने कहा-आज तो देर हो गई। कल शाम को अखबार में सूचना देकर परसों किसी सार्वजनिक स्थान में इन्हें जलाएंगे। प्रचार करने से दूसरे लोगों पर भी असर पड़ेगा। कल शाम को सब मेरे घर पर मिलो। पुस्तकें में इकट्ठी अभी घर नहीं ले जा सकता। बीस-पच्चीस हैं। पिताजी और चाचाजी हैं। देख लेंगे तो आफत हो जाएगी। ये दो-तीन किताबें तुम लोग छिपाकर घर ले जाओ। कल शाम को ले आना।

दूसरे दिन शाम को सब मिले पर किताबें कोई नहीं लाया था। मुखिया ने कहा - किताबें दो तो मैं इस बोरे में छिपाकर रख दूं। फिर कल जलाने की जगह बोरा ले चलेंगे।

किताब कोई लाया नहीं था।

एक ने कहा-कल नहीं, परसों जलाना। पढ़ तो लें।

दूसरे ने कहा-अभी हम पढ़ रहे हैं। किताबों को दो-तीन बाद जला देना। अब तो किताबें जब्त ही कर लीं।

उस दिन जलाने का कार्यक्रम नहीं बन सका। तीसरे दिन फिर किताबें लेकर मिलने का तय हुआ।

तीसरे दिन भी कोई किताबें नहीं लाया।

एक ने कहा-अरे यार, फादर के हाथ किताबें पड़ गईं। वे पढ़ रहे हैं।

दूसरे ने कहा-अंकिल पढ़ लें, तब ले आऊंगा।

तीसरे ने कहा-भाभी उठाकर ले गई। बोली की दो-तीन दिनों में पढ़कर वापस कर दूँगी।

चौथे ने कहा-अरे, पड़ोस की चाची मेरी गैरहाजिर में उठा ले गईं। पढ़ लें तो दो-तीन दिन में जला देंगे।

अश्लील पुस्तकें कभी नहीं जलाई गईं। वे अब अधिक व्यवस्थित ढंग से पढ़ी जा रही हैं। ●●

स्टेज पर वह मां की आखिरी रात थी

संजीव ठाकुर

मैं तब साढ़े तीन बरस का था। सिडनी, मेरा भाई, मुझसे चार बरस बड़ा था। मां थिएटर कलाकार थीं, हम दोनों भाइयों को बहुत प्यार से लिटाकर थिएटर चली जाती थीं। नौकरानी हमारी देखभाल किया करती थी। रोज रात को थिएटर से लौटकर मां हम दोनों भाईयों के लिए खाने की अच्छी-अच्छी चीजें मेज पर ढंक कर रख देती थीं। सुबह उठकर हम दोनों खा लेते थे और बिना शोर मचाए मां को देर तक सोने देते थे।

सिडनी हाथ के करतब दिखाना जानता था। एक बार उसने दिखाया कि वह सिक्का निगल कर अपने सिर के पीछे से निकाल सकता है। बस मैंने उसकी नकल कर डाली। मैंने एक सिक्का निगल लिया। मां को डाक्टर बुलवाना पड़ा।

मेरी स्मृति में पिता भी हैं जो मां के साथ नहीं रहा करते थे और दादी भी जो हमेशा मेरे साथ छोटे बच्चों जैसी बातें किया करती थीं। उनका घर का नाम स्मिथ था। मैं छह साल का भी नहीं हुआ था कि वे चल बसीं।

मां को कई बार मजबूरी में भी काम पर जाना पड़ता था। सर्दी-जुकाम के चलते गला खराब होने पर भी उन्हें गाना पड़ता था। इससे उनकी आवाज कभी-कभी गायब हो जाती और फुसफुसाहट में बदल जाती। श्रोता चिल्लाना और मां का मजाक उड़ाना शुरू कर देते। इस चिंता में मां मानसिक रूप से बीमार जैसे होने लगीं। उनको थिएटर से बुलावा आना भी बंद होने लगा। मां की इस परेशानी की वजह से केवल पांच वर्ष की उम्र में ही मुझे स्टेज पर उतरना पड़ा। मां उन दिनों मुझे भी अपने साथ थिएटर ले जाया करती थीं। एक बार गाते-गाते मां की आवाज फट गई और फुसफुसाहट में बदल गई। श्रोतागण कुत्ते और बिल्लियों की आवाजें निकालने लगे। मेरी समझ में नहीं आ रहा था कि क्या हो रहा है। मां स्टेज छोड़ कर चली गईं। स्टेज मैनेजर मां से मुझे स्टेज पर भेज देने की बात कर रहा था। उसने मां की सहेलियों के

सामने मुझे अभिनय करते देखा था। स्टेज मैनेजर मुझे स्टेज पर लेकर चला ही गया और मेरा परिचय देकर वापिस लौट आया। मैं गाने लगा। गाने के बीच में ही सिक्कों की बरसात होने लगी। मैंने सिक्कों को बटोरना ज्यादा जरूरी समझा और दर्शकों को साफ-साफ कह दिया कि पहले मैं सिक्के बटोरूंगा, फिर गाऊंगा। इस बात पर दर्शक ठहाके लगाने लगे। स्टेज मैनेजर एक रूमाल लेकर स्टेज पर आया और सिक्के बटोरने में मेरी मदद करने लगा। मुझे लगा कि वह मेरे सिक्के ले लेगा, सो दर्शकों से भी यह बात मैंने कह दी। इस बात पर ठहाकों का दौर ही चल पड़ा। स्टेज मैनेजर जब सिक्के बटोर कर जाने लगा, तब मैं भी उसके पीछे-पीछे चल पड़ा। सिक्के की पोटली मां को सौंपे जाने पर ही मैं वापिस स्टेज पर आया। फिर जमकर नाचा, गाया, मैंने तरह-तरह की नकल करके दिखाई।

अपने भोलेपन में मैं मां की खराब आवाज और फुसफुसाहट की भी नकल कर बैठा। लोगों को इससे और अधिक मजा आया और वे फिर सिक्के बरसाने लगे। मैं अपने जीवन में पहली बार स्टेज पर उतरा था और वह स्टेज पर मां की आखिरी रात थी।

यहीं से हमारे जीवन में अभाव का आना शुरू हो गया। मां की जमा पूंजी धीरे-धीरे खत्म होती गई। हम तीन कमरों वाले मकान से दो कमरों वाले मकान में आए, फिर एक कमरे के मकान में। हमारा सामान भी धीरे-धीरे बिकता गया। मां को स्टेज के अलावा कुछ आता नहीं था, लेकिन उन्होंने सिलाई का काम शुरू कर दिया। इससे कुछ पैसे हाथ में आने लगे। घर का सामान तो धीरे-धीरे बिक ही गया, पर मां थिएटर की पोशाकों वाली पेटी सम्हाले हुए थीं। शायद कभी उनकी आवाज वापिस आ जाए और उन्हें थिएटर में काम मिलना शुरू हो जाए। उन पोशाकों को पहन कर मां तरह-तरह के अभिनय कर मुझे दिखलातीं। ढेर सारे गीत और संवाद सुनाती। अपनी अज्ञानता में मैं मां को फिर से स्टेज पर जाने को कहता। मां मुस्कुरातीं और कहती, 'वहां का जीवन नकली है, झूठा

है।'

हमारी गरीबी की कहानी यह थी कि सर्दियों में पहनने के लिए कपड़े नहीं बचे थे। मां ने अपने पुराने रेशमी जैकेट को काट कर सिडनी के लिए एक कोट सी दिया। सिडनी वह कोट देखकर रो पड़ा। मां के समझाने-बुझाने पर वह कोट पहन कर स्कूल तो चला गया, लेकिन लड़के उसे चिढ़ाने लगे। मां की ऊंची एड़ी की सैंडिलों को काट-छांट कर बनाए गए सिडनी के जूते भी कम मजाक के पात्र नहीं थे! और मां के पुराने लाल मोजों को काटकर बनाए मोजों को पहनकर जाने की वजह से लड़कों ने मेरा भी खूब मजाक बनाया था।

इतनी तकलीफों को सहते-सहते मां को आधी सीसी सिरदर्द की शिकायत शुरू हो गई। उन्हें सिलाई का काम भी छोड़ देना पड़ा। अब हम गिरिजाघरों की खैरात पर पल रहे थे, दूसरों की मदद के सहारे जी रहे थे। सिडनी अखबार बेचकर इस गरीबी के विरुद्ध थोड़ा लड़ रहा था। ऐसे में एक चमत्कार जैसे हुआ। अखबार बेचते हुए बस के ऊपरी तल्ले की एक खाली सीट पर उसे एक बटुआ पड़ा हुआ मिला। बटुआ लेकर वह बस से उतर गया। सुनसान जगह पर जाकर उसने बटुआ खोला तो देखा कि उसमें चांदी और तांबे के सिक्के भरे पड़े हैं। वह घर की तरफ भागा। मां ने बटुए का सारा सामान बिस्तर पर उलट दिया। बटुआ अब भी भारी लग रहा था। बटुए के भीतर भी एक जेब थी। मां ने उस जेब को खोला तो देखा कि उसके अंदर सोने के सात सिक्के छुपे हुए हैं। हमारी खुशी का ठिकाना नहीं था। बटुए में किसी का पता भी नहीं था। इसलिए मां की झिझक थोड़ी

© ullstein bild via Getty Images

चार्ली चैपलिन की फिल्में

1914 1. बिट्वीन शावर्स
2. ए बिजी डे
3. कौट इन ए कैबरे
4. कौट इन द रेन
5. क्रुएल क्रुएल लव
6. डी एण्ड डायनामाइट
7. द फेस ऑन द बाररूम प्लोर
8. ए फिल्म जौनी
9. जेन्टलमेन ऑफ नेर्व
10. गेटिंग एक्वेन्टेड
11. हर फ्रेंड द बैण्डिट
12. हिज फेवरिट पासटाइम
13. हिज न्यू प्रोफेशन
14. हिज प्रीहिस्टोरिक पास्ट
15. हिज रिजेनेरेशन
16. किड ऑटो रेसेज एट वेनिस
17. द नौकाउट
18. लाफिंग गैस
19. मेबल एट द व्हील
20. मेबल्स बिजी डे
21. मेबल्स मैरिड लाइफ
22. मेबल्स पंक्चर्ड रोमांस
23. प्रेडिकामेन्ट
24. मेकिंग अ लिविंग
25. द मास्कवेरेडर
26. द न्यू जैनिटर
27. द प्रोपर्टी मैन
28. रिक्रिएशन
29. द राउंडर्स
30. द स्टार बोर्डर
31. टैंगो टैंगल्स
32. दोज लव पैंग्स
33. टिलीज पंक्चर्ड रोमांस
34. ट्वेंटी मिनट्स ऑफ लव

1915 35. द बैंक
36. बाय द सी
37. कर्मेन
38. द चैम्पियन
39. हिज न्यू जॉब
40. इन द पार्क
41. ए जिटनी इलोपमेंट
42. ए नाइट इन द शो
43. शांगहाइड
44. द ट्रैम्प
45. ए वोमन
46. वर्क

1916 47. बिहाइंड द स्क्रीन
48. द काउंट
49. द फायरमैन
50. द फ्लोरवॉकर
51. वन ए एम
52. द पॉनशॉप
53. पोलीस
54. द रिंक
55. द वैगाबांड

1917 56. द क्योर
57. ईजी स्ट्रीट
58. द इम्मिग्रेण्ट

1918 59. द बॉण्ड
60. ए डॉग्स लाइफ
61. शोल्डर आर्म्स
62. ट्रिपल ट्रबल

1919 63. चार्ली द बार्बर
64. ए डेज प्लेशर
65. सनीसाइड

1921 66. ए आइडल क्लास
67. द किड

1922 68. पे डे

1923 69. द पिलग्रिम
70. ए वोमन ऑफ पेरिस

1925 71. द गुड फॉर नथिंग
72. द गोल्ड रश

1928 73. द सर्कस

1931 74. सिटी लाइट्स

1936 75. मॉडर्न टाइम्स

1940 76. द ग्रेट डिक्टेटर

1947 77. मांसर वारडॉक्स

1952 78. लाइमलाइट

1957 79. ए किंग इन न्यूयॉर्क

1967 80. ए काउंटेस फ्रॉम हांग-कांग

कम हो गई। मां ने इसे ईश्वर के वरदान के रूप में ही देखा।

धीरे-धीरे हमारा खजाना खाली हो गया और हम फिर गरीबी की ओर बढ़ गए। कहीं कोई उपाय नहीं था। मां को कोई काम नहीं मिल रहा था। उनका स्वास्थ्य भी ठीक नहीं चल रहा था। इसलिए उन्होंने तय किया कि हम तीनों यतीमखाने में भर्ती हो जाएं

यतीमखाने में भी कम कठिनाइयां नहीं थी। कुछ दिनों बाद हम वहां से निकल आए। सिडनी जहाज पर नौकरी करने चला गया। मां फिर से कपड़े सीने लगीं। मैं कभी फूल बेचने जाता तो कभी कागज के खिलौने बनाता। किसी तरह गुजारा हो रहा था।

एक दिन मैं बाहर से आ रहा था कि गली में बच्चों ने बताया, 'तुम्हारी मां पागल हो गई है।' उन्हें पागलखाने में भर्ती करवाना पड़ा। सिडनी जहाज की नौकरी छोड़ कर चला आया। उसके पास जो पैसे थे वह मां को देना चाहता था। लेकिन मां की स्थिति ऐसी नहीं थी कि उस पैसे को ले पातीं। जहाज से लौट कर सिडनी ने नाटकों में काम करना शुरू कर दिया। मैंने कई तरह के काम किए - अखबार बेचे, खिलौने बनाए, किसी डाक्टर के यहां नौकरी की, कांच गलाने का काम किया, बढ़ई की दुकान पर रहा। इन कामों से जब भी समय बचता मैं किसी नाटक कम्पनी के चक्कर लगा आता। लगातार आते-जाते आखिर एक दिन एक नाटक में मुझे काम मिल ही गया। मुझे मेरा रोल दिया गया। मैं उसे पढ़ना ही नहीं जानता था। उसे लेकर मैं घर आया। सिडनी ने बड़ी मेहनत की और तीन ही दिनों में मुझे अपना रोल रटवा दिया।

नाटकों का यह हाल था कि कभी प्रशंसा मिलती तो कभी टमाटर भी फैंके जाते। ऐसे में एक दिन मैंने अमरीका जाने का निश्चय कर दिया। सिडनी के लिए चिट्ठी छोड़ कर एक नाटक कम्पनी के साथ अमरीका चला गया। वहां कई नाटक किए। एक नाटक में मेरा काम देखकर एक व्यक्ति ने फैसला किया कि जब कभी वह फिल्में बनाएगा, मुझे जरूर लेगा। बहुत दिनों बाद ही सही वह दिन आया और मैक सीनेट नाम के उस व्यक्ति ने मुझे ढूंढ निकाला। अपी 'की-स्टोन कॉमेडी कम्पनी' में नौकरी दी। फिल्मों का यह काम मेरे पिछले कामों से बिल्कुल अलग था। एक बार शूटिंग करते वक्त निर्देशक ने कहा, 'कुछ मजा नहीं आ रहा है। तुम कोई कॉमिक मैकअप करके जाओ।' मैं ड्रेसिंग रूम में गया। इधर-उधर देखा। पास ही एक ढीली-ढाली पतलून थी। मैंने उसे पहन लिया। उस पर एक खराब-सा बैल्ट बांध दिया। ढूंढ-ढांढ कर एक चुस्त कोट पहन लिया। अपने पैरों से बहुत बड़े जूते पहन लिए। छोटी सी टोपी सिर पर डाल ली। बूढ़ा दिखने के ख्याल से टूथब्रश जैसी मूछें लगा ली। एक पतली-सी छड़ी को उठा लिया। आईने में देखने मैं खुद को ही नहीं पहचान पा रहा था। छड़ी लहराते और कमर लचकाते जब मैं बाहर आया तो लोग जोर-जोर से हंसने लगे, ठहाके लगाने लगे। लोगों की हंसी की आवाज सुनकर जब निर्देशक ने मेरी ओर देखा तो वह खुद भी पेट पकड़कर हंसने लगा। हंसते-हंसते उसे खांसी होने लगी। यही मेरा वह रूप था, जो मेरे साथ हमेशा चिपका रहा, लोगों की तारीफें पाता रहा।

'मैं हर उस आदमी से नफरत करता हूं, जो दूसरों के लिए समस्या पैदा करता है। कोई मुझे कहे कि तुम इसके लिए या उसके लिए अपनी जान दे दो तो मैं ऐसा नहीं कर सकता। देशभक्ति के नाम पर भी नहीं। देशभक्ति सबसे बड़ा पागलपन है। यह मनुष्यता को कट्टरता की ओर ले जा सकती है। मुझे ऐसी देशभक्ति से चिढ़ है। मैं किसी राजा, राष्ट्राध्यक्ष या तानाशाह की जिद्द पूरी करने के लिए युद्ध नहीं कर सकता। मैं उन विचारों के लिए कतई नहीं लड़ सकता, जिनमें मेरी आस्था नहीं। देशभक्ति को कोई कैसे स्वीकार कर सकता है, जब 48 लाख यहूदियों को नस्लीय शुद्धता के नाम पर मार डाला गया हो! कोई कह सकता है कि यह जर्मनी में हुआ था। पर मैं कहता हूं कि ऐसा हर देश में छोटे-बड़े रूप में मौजूद है। देशभक्ति अंततः नाजीवाद में बदल जाती है।'

साभार : बड़ों का बचपन, एकलव्य प्रकाशन

•

किशन लाल शर्मा की लघु कथाएं

अस्तित्व

सुबह उठते ही वह छत पर चला आया। दूर क्षितिज में सूर्योदय हो रहा था। उगते समय सूर्य लाल आग के गोले सा प्रतीत हो रहा था। वह सूर्य के सामने नमस्कार की मुद्रा में खड़ा हो गया। उसे अपने शरीर में स्फूर्ति, ऊर्जा और जोश का संचार होता महसूस हुआ। सूर्य को देखकर अचानक एक प्रश्न उसके दिमाग में कौंधा। अगर सूर्य न होता तो?

गहन अंधकार में डूबते हुए उसे अपना अस्तित्व मिटता हुआ नजर आया।

विकास

शाम ढलने पर पक्षी लौटे तो अपने आशियाने न देखकर दंग रह गए। सुबह तो वे पेड़ों से उड़कर ही गए थे। फिर पेड़ कहां गए। वे आकाश में मंडरा रहे थे, तभी उनकी नजर जमीन पर पड़े पेड़ों पर पड़ी। सड़क बनाने के लिए हजारों पेड़ काट दिए गए थे। कटे पेड़ों को देखकर आकाश में मंडरा रहे पक्षी सोचने लगे।

आदमी अपने विकास के लिए दूसरों का आशियाना ही क्यों उजाड़ता है।

आशियाना

तेंदुये के कालोनी में घुस आने से लोग दहशत में थे। आए दिन शहर के बाहर बनी कालोनियों में से किसी ने किसी में कोई जंगली जानवर घुस आता था। जानवर भी क्या करे? पहले यहां जंगल था। बिल्डरों ने जंगल पर कब्जा करके कालोनियां बसा दी थी।

जानवर अपने आशियाने की तलाश में कालोनियों में चले आते थे।

रामस्वरूप कालोनी शाहगंज, आगरा
मो: 09458740296

•

चार्ली की फिल्म 'द ग्रेट डिक्टेटर' का आखिरी भाषण

मुझे माफ कीजिएगा, मैं कोई सम्राट नहीं बनना चाहता। यह मेरा काम नहीं है। मैं किसी पर शासन करना या किसी को जीतना नहीं चाहता। मैं हर किसी की- यहूदी, जेंटाइल, काले-सफेद सबकी-हर संभव सहायता करना चाहता हूं...हम सब एक-दूसरे की सहायता करना चाहते हैं। आदमी ऐसा ही होता है। हम एक-दूसरे की खुशियों के सहारे जीना चाहते हैं। दुखों के सहारे नहीं। हम आपस में नफरत और अपमान नहीं चाहते। इस दुनिया में हर किसी के लिए जगह है। यह प्यारी पृथ्वी पर्याप्त सम्पन्न है और हर किसी को दे सकती है।

जिंदगी का रास्ता आजाद और खूबसूरत हो सकता है, पर हम यह रास्ता भटक गए हैं। लोभ ने मनुष्य की आत्मा को विषैला कर दिया है...दुनिया को नफरत की बाड़ से घेर दिया है...हमें तेज कदमों से पीड़ा और खून-खराबे के बीच झटक दिया गया है। हमने गति का विकास कर लिया है, लेकिन खुद को बंद कर लिया है। इफरात वस्तुएं पैदा करने वाली मशीनों ने हमें अनंत इच्छाओं के समंदर में गिरा दिया है। हमारे ज्ञान ने हमें सनकी व आत्महंता बना दिया है और हमारी चतुराई ने हमें कठोर और बेरहम। हम सोचते बहुत ज्यादा है और महसूस बहुत कम करते हैं। मशीनों से ज्यादा हमें जरूरात है इंसानियत की, चतुराई से ज्यादा हमें जरूरत है दया और सज्जनता की। इन गुणों के बिना जिंदगी खूंखार हो जाएगी और सब कुछ खो जाएगा।

हवाई जहाज और रेडियो ने हमें और करीब ला दिया है। इन चीजों का मूल स्वभाव मनुष्य में अच्छाई लाने के लिए चीख रहा है...सार्वभौमिक बंधुत्व के लिए चीख रहा है...हम सबकी एकता के लिए। यहां तक कि इस वक्त मेरी आवाज दुनिया के दसियों लाख लोगों तक पहुंच रही है...दसियों लाख हताश पुरुषों-स्त्रियों और छोटे बच्चों तक...एक ऐसी व्यवस्था के शिकार लोगों तक जो आदमी को, निरपराध मासूम लोगों को कैद करने और यातना देने का सबक पढ़ाती है। जो लोग मुझे सुन रहे हैं, मैं उनसे कहूंगा, निराश मत हो। पीड़ा का यह दौर जो गुजर रहा है, लोभ की यात्रा है...उस आदमी की कड़वाहट है जो मानवीय उन्नति से घबराता है। इंसान की नफरतें खत्म हो जाएंगी और तानाशाह मर जाएंगे और जिस सत्ता को उन्होंने छीना है, वह सत्ता जनता को मिल जाएगी और जब तक लोग मरते रहेंगे, आजादी पुख्ता नहीं हो पाएगी।

सैनिको, अपने-आपको इन धोखेबाजों के हवाले मत करो, जो तुम्हारा अपमान करते हैं...जो तुम्हें गुलाम बनाते हैं...जो तुम्हारी जिंदगी को संचालित करते हैं...तुम्हें बताते हैं कि क्या करना है, क्या सोचना है और क्या महसूस करना है। जो तुम्हारी कवायद करवाते हैं, तुम्हें खिलाते हैं...जानवरों-सा व्यवहार करते हैं और अपनी तोपों का चारा बनाते हैं। खुद को इन अप्राकृतिक लोगों, मशीनी दिमाग और मशीनी दिलों वाले मशीनी आदमियों के हवाले मत करो...। तुम लोग इंसान हो, तुम्हारे दिलों में इंसानियत है, घृणा मत करो। घृणा करनी ही है, तो बिना प्रेम वाली नफरत से करो...बिना प्रेम की, अनैसर्गिक!

सैनिको! गुलामी के लिए मत लड़ो, आजादी के लिए लड़ो। सेंट ल्यूक के सत्रहवें अध्याय में लिखा है कि ईश्वर का राज्य आदमी के भीतर होता है...किसी एक आदमी या किसी एक समुदाय के आदमी के भीतर नहीं, बल्कि हर आदमी के भीतर! तुममें...आप सब लोगों में...जनता के पास ताकत है इस जिंदगी को आजाद और खूबसूरत बनाने की, साहस है इस दुनिया को एक अद्भुत दुनिया में तबदील करने की, तो लोकतंत्र के नाम पर हम उस ताकत का इस्तेमाल करें...आओ, हम सब एक हो जाएं, हम एक नई दुनिया के लिए संघर्ष करें, एक ऐसी सभ्य दुनिया के लिए जो हर आदमी को काम करने का मौका दो...तरुणों को भविष्य दे और बुजुर्गों को दे सुरक्षा।

इन्हीं चीजों का वायदा करके इन धोखेबाजों ने सत्ता हथिया ली। लेकिन वे झूठे हैं, वे अपना वायदा पूरा नहीं करते, वे कभी नहीं करेंगे। तानाशाह खुद को आजाद कर लेते हैं, लेकिन जनता को गुलाम बना देते हैं। हम दुनिया को आजाद करने की लड़ाई लड़ें...राष्ट्रीय बाड़ों को हटा देने की लड़ाई, लोभ, नफरत व असहिष्णुता को उखाड़ फैंकने की लड़ाई! एक ऐसी दुनिया के लिए लड़ें, जहां विज्ञान और उन्नति हम सबके लिए खुशियां लेकर आए। सैनिकों, लोकतंत्र के नाम पर हम सब एक हो जाएं।

हाना, क्या तुम मुझे सुन सकती हो? तुम जहां कहीं भी हो, देखो यहां! देखो यहां, हाना! ये बादल छंट गए हैं, पौ फट रही है, हम अंधेरे से निकलकर उजाले में आ रहे हैं, हम एक नई दुनिया में आ रहे हैं...एक ज्यादा रहमदिल दुनिया में...जहां आदमी अपने लालच, घृणा और नृशंसता से ऊपर उठेगा। देखो हाना, मनुष्य की आत्मा को पंख मिल गए हैं और अंतत: उसने लड़ने की शुरुआत कर दी है। वह इंद्रधनुष में उड़ रहा है...उम्मीदों की रोशनी में...देखा हाना! देखो! ●

बाल कहानी

काकी –सियारामशरण गुप्त

उस दिन शामू की नींद बड़े सवेरे खुल गई। उसने देखा कि घर में कोहराम मचा हुआ है। उसकी काकी जमीन पर सो रही है। उस पर कपड़ा ढंका हुआ था। घर के सब लोग उसे घेरे हैं। सब बुरी तरह रो रहे हैं।

काकी को ले जाते समय शामू ने बड़ा उधम मचाया। वह काकी के ऊपर जा गिरा। बोला–'काकी सो रही हैं। उन्हें कहां लिए जा रहे हो? मैं न जाने दूंगा।'

लोग बड़ी कठिनता से शामू को हटा पाए। काकी के दाह–संस्कार में वह न जा सका। एक दासी ने उसे घर पर ही रखा।

शामू को कहा गया कि काकी उसके मामा के यहां गयी है। पर सच बहुत समय तक छिपा न रह सका। पड़ोस के बालकों से पता चल ही गया। वह जान गया कि काकी, ऊपर राम के यहां गई है। कई दिन तक लगातार रोता रहा। फिर उसका रुदन तो शांत हो गया। पर शोक शांत न हो सका। बारिश के बाद जमीन के ऊपर का पानी सूखने में देर नहीं लगती। लेकिन जमीन के नीचे की नमी बहुत दिन तक बनी रहती है। वैसे ही शामू के मन में शोक बस गया था। वह अकेला बैठा रहता। खाली मन से आकाश की ओर ताका करता।

एक दिन शामू ने एक पतंग उड़ती देखी। न जाने क्या सोचकर वह एकदम खिल उठा। बिसेसर के पास जाकर बोला–'काका, मुझे पतंग मंगा दो।'

पत्नी की मौत के बाद से बिससेर उखड़े से रहते थे। 'अच्छा, मंगा दूंगा।' कहकर वे उदास भाव से कहीं और चले गए।

शामू पतंग के लिए बहुत बेचैन था। वह अपनी चाह किसी तरह रोक न सका। खूंटी पर बिसेसर का कोट टंगा हुआ था। इधर–उधर देखकर उसने उसके पास स्टूल सरकाया। ऊपर चढ़कर कोट की जेबें टटोलीं। जेब से एक चवन्नी निकाली। शामू भागकर भोला के पास गया।

भोला सुखिया दासी का लड़का था। वह शामू की ही उम्र का था। शामू ने उसे चवन्नी देकर कहा–'अपनी जीजी से गुपचुप एक पतंग और डोर मंगा दो। देखो,

खूब अकेले में लाना। कोई जान न पाए।'

पतंग आई। एक अंधेरे घर में उसने डोर बांधी जाने लगी। शामू ने धीरे से कहा–'भोला, किसी से न कहो, तो एक बात कहूं।'

भोला ने सिर हिलाकर कहा–'नहीं, किसी से नहीं कहूंगा।'

शामू ने कहा–'मैं यह पतंग ऊपर राम के यहां भेजूंगा। इसे पकड़ कर काकी नीचे उतरेंगी। मैं लिखना नही जानता। नहीं तो इस पर उनका नाम लिख देता।'

भोला शामू से अधिक समझदार था। भोला ने कहा–'बात तो बड़ी अच्छी सोची। पर एक कठिनाई है। इसे पकड़कर काकी उतर नहीं सकती। इसके टूट जाने का डर है। पतंग में मोटी रस्सी हो, तो ठीक रहेगा।'

शामू गंभीर हो गया। बात तो लाख रुपए की सुझायी गई है। पर परेशानी यह थी कि मोटी रस्सी मंगाए कैसे? पास में दाम हैं नहीं। घर के आदमी तो उसकी काकी को बिना दया–मया के जला आए थे। वे उसे इस काम के लिए कुछ नहीं देंगे। शामू को चिंता के मारे बड़ी रात तक नींद नहीं आई।

शामू ने पहले दिन की तरकीब दूसरे दिन भी अपनाई। उसने बिसेसर के कोट से एक रुपया निकाला। ले जाकर भोला को दिया। बोला–'देख भोला, किसी को मालूम न होने पाए। दो बढ़िया रस्सियां मंगा दे।' एक रस्सी छोटी पड़ेगी। जवाहिर भैया से मैं एक कागज पर 'काकी' लिख लूंगा। नाम की चिट रहेगी तो पतंग ठीक वहीं पहुंच जाएगी।'

खुशी–खुशी शामू और भोला अंधेरी कोठरी में बैठे पतंग में रस्सी बांध रहे थे। अचानक शुभ काम में बाधा आ गई। कुपित बिसेसर वहां आ घुसे। भोला और शामू को धमकाकर बोले–'तुमने हमारे कोट से रुपया निकाला है?'

एक ही डांट में भोला मुखबिर हो गया। बोला–'शामू भैया ने रस्सी और पतंग मंगाने के लिए के लिए निकाला था।' बिसेसर ने शामू को दो तमाचे जड़कर कहा, 'चोरी सीखकर जेल जाएगा? अच्छा, तुझे आज ठीक से समझाता हूं।' अब रस्सियों की ओर देखकर पूछा, 'ये किसने मंगाई?'

भोला ने कहा–'शामू भैया ने मंगायी थी। कहते थे, इससे पतंग तानकर काकी को राम के यहां से नीचे उतारेंगे।'

बिसेसर हैरान से वहीं खड़े हो गए। उन्होंने फटी हुई पतंग उठाकर देखी। उस पर चिपके हुए कागज पर लिखा हुआ था–'काकी।'

•

हौसलों से उड़ान होती है

राजेश कुमार

मेरे पांव लड़खड़ाते हैं
लेकिन मेरे हौसलों को
कभी लड़खड़ाने नहीं दिया
क्योंकि मुझे बहुत आगे तक जाना है
इन्हीं पांवों से चलकर
और बस आगे बढ़ते जाना है।'
सुनील कुमार

कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग से पीएचडी कर रहे सुनील कुमार का जन्म जींद जिले के थुआ नामक गांव में 6 सितम्बर 1988 को हुआ। उनका आरंभिक जीवन बहुत हीं कष्टमयी व संघर्षशील रहा है। जब 6 महीने के थे, तभी वो पोलियो से ग्रसित हो गए। जीवन के आरंभिक दस सालों तक तो केवल हाथों के बल पर ही चलते थे। अनेक आप्रेशनों के बाद वो बैसाखी के बल पर चलने में सक्षम हुए। आप्रेशनों के कारण शारीरिक पीड़ा बहुत होती है थी।

दस साल के हुए तब तक सड़क दुर्घटना में पिता की रीढ़ की हड्डी टूट गई। खेती करके परिवार का पेट पाल रहे व्यक्ति की नहीं, बल्कि पूरे परिवार की ही रीढ़ टूट गई। और के दुर्घटना के एक साल बाद वो चल बसे। सुनील की मां को अपने पति की मौत का इतना गहरा सदमा लगा कि वो मानसिक रूप से बीमार रहने लगी। सुनील व उनके पिता के इलाज के खर्च में परिवार की आर्थिक हालत खस्ता हो गई थी।

प्राईमरी तक की शिक्षा घर के ही नजदीक गली के स्कूल में हुई, जहां मां सुबह छोड़ जाती व दोपहर बाद ले जाती। हाई स्कूल तक की शिक्षा गांव के सरकारी स्कूल में हुई, जो घर से तो काफी दूर परंतु उनके खेतों के नजदीक था। और यह दूरी ही तब वरदान बन गई। खेत में चारा लेने के लिए जाने वाली बैलगाड़ी स्कूल आने-जाने का साधन बन गई।

12वीं तक की पढ़ाई नजदीक के गांव छात्तर में हुई। अब स्नातक की पढ़ाई करना सबसे चुनौतीपूर्ण कार्य था। सबसे नजदीक कालेज 35 किलोमीटर की दूरी पर जींद में था। यहां पहुंचने के लिए 2 से 3 बसें बदलनी पड़ती। यह हिमालय चढ़ने से कम नहीं, उस व्यक्ति के लिए जो अपने पांव पर सीधा खड़ा भी नहीं हो सकता। सुनील कुमार ने तमाम कठिनाइयों के बावजूद स्नातक की पढ़ाई पूरी कर की।

स्नातक की पढ़ाई के बाद उन्होंने जेबीटी की प्रवेश परीक्षा दी और हरियाणा में 106 वां रैंक हासिल किया। डीआईईटी पलवल जिला कुरुक्षेत्र से जेबीटी किया। इसके बाद कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय से एम.ए. हिन्दी प्रथम श्रेणी से पास की। एम.ए. के बाद बी.एड. में दाखिला ले लिया।

सुनील कुमार की मेहनत और लगन का परिणाम है कि इसी दौरान HTET, CTET, NET व JRF की परीक्षा पास की। वर्तमान में सुनील कुमार विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की शांधवृति प्राप्त करके कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में 'भगवानदास मोरवाल के साहित्य में मेवाती संस्कृति' विषय पर पीएचडी कर रहे हैं। जिस बालक की शिक्षा का जिक्र आते ही कह दिया जाता हो कि 'ये पढ़कर क्या करेगा, इसको टेलर का काम सिखा दो' उसका शिक्षा के सर्वोच्च सोपान पर कदम रखना बड़ी उपलब्धि है।

व्यक्ति अपनी क्षमताओं को पहचान लेता है तो उसने दुनिया को जीत लिया। स्कूल में अपने सहपाठियों को खेल-कूद व सांस्कृतिक गतिविधियों में भाग लेते देखकर सुनील का भी मन करता। तो शिक्षकों व सहपाठियों से सुनने को मिलता कि 'तू रहने दे, तेरे बस का नहीं है'। अपनी इस भूख को शांत करने के लिए नायाब रास्ता निकाला वे खेल-कूद के दौरान स्कोरर, रैफरी-अम्पायर की भूमिका निभाने लगे और मैच की कमेंटरी करके खिलाड़ियों को हौंसला बढ़ाते हुए खुद को जोड़ लिया।

सुनील कुमार विभिन्न संगठनों के माध्यम से सामाजिक कार्यों के प्रति भी समर्पित रहते हैं। सरपंच अमित कुमार का कहना है कि 'सुनील गांव की प्रत्येक गतिविधि में शामिल रहते हैं। गांव के लिए प्रेरणास्त्रोत हैं। सामाजिक कार्यों में अग्रणी भूमिका अदा करते हैं।' युवा क्लब के प्रधान समुद्र सिंह सुनील के योगदान को रेखांकित करते हैं कि 'गांव में सामाजिक बुराइयों जैसे कन्या भ्रूण हत्या, नशा आदि के खिलाफ विशेष जागरूकता अभियान चलाने में विशेष योगदान रहा है।'

मास्टर कृष्ण कुमार का कहना है कि 'गांव में बच्चों को खेलों व शिक्षा में भाग लेने के लिए प्रेरित करते हैं तथा युवाओं को शिक्षा व कैरियर निर्माण में मार्गदर्शन करते हैं तथा युवाओं को बुराइयों से दूर व चरित्र निर्माण के लिए प्रेरित करते हैं।'

सुनील कुमार के प्रयासों से गांव में खेल का मैदान बना, जहां गांव के सैंकड़ों लड़के-लड़कियां प्रशिक्षण लेकर गांव का नाम रोशन कर रहे हैं। सुनील कुमार ने 'साक्षर भारत अभियान' के तहत सैंकड़ों बुजुर्गों को अक्षर ज्ञान भी करवाया। गांव की पंचायत के चुनाव में धन-बल पर रोक लगाने का भी प्रयास किया। वे विकलांग साथियों में अधिकारों की जागरुकता के लिए संघर्षरत हैं।

सुनील कुमार को पढ़ने-लिखने का बहुत शौक है। किसान, मजदूर तथा वंचित वर्गों से जुड़ी समस्याओं पर लिखना इनको पसंद है। 22 अगस्त 2012 को उच्च शिक्षा में अच्छे प्रदर्शन के लिए शास्त्री भवन नई दिल्ली में राजीव गांधी फाउंडेशन की ओर से राहुल गांधी के हाथों 'उत्कृष्ट राजीव गांधी विकलांग शिक्षित छात्र' पुरस्कार दिया गया। तमाम कठिनाइयों के बावजूद सुनील कुमार की उपलब्धियां व संघर्षपूर्ण व्यक्तित्व युवाओं की प्रेरणा बनेगा।

सम्पर्क : 94681-83394

जसबीर लाठरों

सरपंची

गाम मां सरपंची के लेक्शन का, घणा इ रोळा ओर्‌या था,
जोणसा बी लेक्शन मां खड्‌या था, ओइयो बोळा ओर्‌या था,

भरतु शराबी देसी दारू कैढ का, लोगां ना रोज़ो पलाया करदा,
बिना पीण आळे ना बी, धक्के ते पलाया करदा,

खागड़ रूळदा अपणे आप ना, रान्डयां की फौज का कमांडर लाया करदा,
बोट्टां खातर रान्डयां ते ओ, ब्याह के सुपणे दखाया करदा,

सुण्ढा पैलवान बी अपणे पीस्यां ते, गरीबां ना गैस सलैन्डर दवार्‌या था,
उनके ब्याह तक के ख़र्चे, अपणे ठाढे सिर पा ठार्‌या था,

मोल्लू गरीबां की बस्ती मां, दिन-रैत आंड्या करदा,
कदे-कदे तो बोट्टां के चक्कर मां, पीसे बी बांड्या करदा,

डेरे आळा लँगड़ा फ़ौजी, बेसक टाँग पा गोळी खार्‌या था,
इस सरपंची की दौड़ मां ओ, सबते आगा जार्‌या था,

पराणे सरपंचां की गोज मां ओ, दो-दो लाख पार्‌या था,
इबकै उसका कणिया छोरा, बारले मुलक ते आर्‌या था,

खड़कु पंडत बी अपणा ब्योंत, ठीक-ठाक बणाण लगर्‌या था,
अपणे रूठे भाईयाँ ना ओ, पैरां मां पडकै मणाण लगर्‌या था,

मोल्लड अपणे खेतां की ढयोळ पा, कदै किसे ना नी चढ़ाया करदा,
लेक्शन आए पाछा ओ सबना, खेतां ते बरसीम की पांडां ठवाया करदा,

फत्ता मरोड़ी कदै राम-राम बी ना लेदां, ओ बी आथ-पैर जोड़ण लाग्या था,
ओल्ली-ओल्ली दिल मां गढ़का, ओ सारयां की बोट्टां तोडण लाग्या था,

इशमां बोळा कुणबे की बोट्टां ना देख, घणियो शेखी मार्‌या करदा,
आए बारी सरपंची के लेक्शन मां ओ, चौखी बोट्टां ते आर्‌या करदा,

पाछले सरपंच के कार-ट्रैक्टर तो, कतै सरकारी ओरे थे,
सारे गाम की सवारियाँ ना वाँ, दिन-रैत न्यूंए ढोरे थे,

आए एंतवार उनके ग्वाड मां, बण्डारा चाल्या करदा,
गरीबां के ब्याह मां ओ, घणा कन्यादान घाल्या करदा,

पंचैत की काळी कमाई देखका, आठ-दस सींग ठैरे थे,
कोए अपणे अर कोए लोन के, नोट लेक्शन मां लुटैरे थे,

इस ठण्ड मां सरपंची का, जमां कसूत्ता महोल गरमार्‌या था,
जिसते बी पुछां ओइयो, अपणे-आप ना सरपंच बणार्‌या था,

यें सारे अपणे-अपणे स्याब ते, अपणे जुगाड बठैरे थे,
इस सरपंची के लेक्शन मां, गाम के लोग बी मजे डैरे थे,

एक दिन अख़बार मां, इसा फतवा जारी ओया,
उस फतवे ना पढ़कै लोगो, म्हारा सारा गाम रोया,

इस सरकार ना, किसे ते अनपढ़ अर किसे ते डफाल्टर कै दिया,
सरपंची के इस लेक्शन मां, इन सार्‌यां ते ठेंगा दखै दिया ,

सरकार की या नीति, जमां उलटा काम करगी,
या ख़बर सुणदेई गामां, सबकी माँ सी मरगी,

मोल्लड ना तो उसै दिन अपणा, बरसीम का खेत बै दिया,
सुण्डे पैलवान ना बी गैस-सलैन्डर खातर, गरीबां ते कै दिया,

भरतु शराबी अपणी दारू, दिन-रैत आप्पे पीण लागग्या,
लँगड़ा फ़ौजी बी अपणे डेरे मां, इब फुट्टी भागग्या,

मोल्लु इस सरपंची मां, तीस लाख तळा अग्या,
खड़कु पंडत अस्पताळ मां जैका, कतई मुँह बैग्या,

पंचैत ते कमाई करका, पाछला सरपंच असली मळाई खैग्या,
खागड रूळदा कमान्डर बचैरा, इब रान्डे का रान्डा रहग्या,

सरपंची मां सारे कूद-काद का, अपणे घरां बैठगे,
लोग उनके पिस्यां ना, डीमक की तरियाँ चैटगे,

सारे गामां कोए बी, सरपंची के लायक नी दिख्या,
पूरे गाम मां कोए नी था, असली पढ्या लिख्या,

जसबीर बी सरपंची खातर, आथ मळदाइ रैग्या,
पाछला सरपंच चंदरा म्हारी, गांम की बोट कटैग्या,

सारे गाम ना झूठ बोल कै, रूण्डे के छोरे का रिश्ता करवाया,
जिद जैका ओ बुण्डा छोरा, पढ़ी-लिखी बऊ नां लेका आया,

फेर सारे गाम ना वा बऊ, सर्वसम्मति ते सरपंच बणाई,
इस पढ़ी-लिखी जसरीत ना, म्हारे गाम की लाज बचाई!

सम्पर्क : 94161-12638

••

महादे-पारवती

एक बर की बात सै। पारबती महादे तैं बोल्ली - महाराज, धरती पै लोग्गाँ का क्यूकर गुजारा हो रह्या सै? मनै दिखा कै ल्याओ।

महादे बोल्ले- पारबती, इन बात्ताँ मैं के धरया सै? अडै सुरग मैं रह, अर मोज लूट। धरती पै आदमी घणे दुखी सैं। तू किस-किस का दुख बाँटैगी।

पारबती बोल्ली- महाराज, मैं नाँ मान्नू। मैं तै अपणी आँख्या तै देक्खूँगी। संद्यक देक्खे बिना पेट्टा क्यूकर भरै?

महादे बोल्ले- तै चाल पारबती। देख धरती की दुनियादारी। न्यूँ कह कै वे दोन्नूँ अपणे नादिया पै बैठ, थोड़ी हाण मैं आ पोंहचे धरती पै। उन दिनां गंगाजी का न्हाण था। पारबती बोल्ली- महाराज, मैं बी गंगाजी न्हाऊंगी। गंगा न्हाण का बड़ा फळ हो सै। जो गंगा न्हाले उननै थम मुकती दे द्यो सो। मर्याँ पाच्छै वो आदमीं सिदा सुरग मैं जावै। अड़ै आए-ऊए दो गोत्ते बी मार ल्याँ गंगा जी मैं।

महादे बोल्ले- पारबती, लोग हमनैं पिछाण लैंगे। अक न्यूँ कराँ, दोन्नूँ अपणा-अपणा भेस बदल ल्याँ। न्यूँ कह कै दोनुवां नै मरद-बीर का भेस भर लिया। भेस बदलकै दोन्नूँ चाल पड़े, गंगाजी कैड़।

राह मैं पारबती नैं देख्या दुनियाँ ए गंगाजी न्हाण जा सै। कोए गाड्डी जोड़ रहे, तै कोए मँझोल्ली, कोए रेहडू , तै कोए पाहयाँ पाहयाँ चाल्ले जाँ सै। लुगाई गंगाजी के गीत गांवती जाँ सै। अक जड़ बात या थी, सारी ए खलखत पाट्टी पड़ै थी गंगाजी के राह म्हं।

पारबती बोल्ली- महाराज, धरती पै तै घणा एक धरम-करम बध रहया सै। देक्खो नाँ, टोळ के टोळ आदमी गंगाजी न्हाण जाण लागरे। मेरै तै एक साँस्सै सै। थम कहो थे-जो गंगा न्हावेगा वो सिधा सुरग मैं जागा। जै ये सारे न्हाणिये सुरग मैं आगे तै सुरग मैं तै तिल धरण की जघाँ बी नाँ रहैगी। सुरग मैं तै खड़दू मचजैगा।

महादे हँस्से अर बोल्ले- पारबती, तूँ तै भोळी की भोळी ए रही। ये सारे आदमी गंगाजी न्हाण कोन्या आए। कोए तै मेला-ठेला देक्खण आया सै। कोए खेत-क्यार के काम तैं बच कै आया सै। कोए-कोए अपणा बड्डापण जितावण ताँहीं आया सै। कोए-कोए अपणा मैल काड्ण आया सै। कोए बेट्टे माँगण ताँही आया सै, तै कोए पोत्ते माँगण ताँही। कोए बेट्टी नैं परणा कै सुख की साँस लेण आया सै। कोए अँघाई करण ताँही आया सै। गंगाजी न्हाणियाँ तै इनमैं उड़द पै सफेद्दी जितणा कोए-कोए ढूँढ्या पावैगा।

महादे की बात सुण कै पारबती बोल्ली- महाराज, थम तै मेरी बात नैं न्यूँ एँ टाळो सो। कदे न्यूँ बी होय करै?

महादे बोल्ले- तूँ मेरी बात नैं बिचास कै देख ले, जै मेरी बात न्यूँ की न्यूँ साच्ची नाँ लिकड़ै तै।

पारबती बोल्ली- महाराज, बात नैं बिचास्सो। महादे बोल्ले- बिचास ले।

इतणी कह कै महादे नैं कोड्ढी का रुप धारण कर लिया अर पारबती रुपमती लुगाई बणगी। राह चालते नहाणियाँ नैं वो कोड्ढ़ी अर लुगाई देक्खी। बीरबान्नी तै हाथ मल मल कै रहगी। देख दुनियाँ मैं कितणा कु न्या सै? सुरत सी बीरबान्नी कोड्ढ़ी कै पल्लै ला दी। डूबगे इसके माई-बाप। के सारी धरती पाणी तैं भरी सै जो इसनैं जोड़ी का बर नाँ मिल्या?

कोए उनतैं अँघाई करकै लिकड़ै। कोए कहै छोडदै नैं इस कोड्ढ़ी नैं। मेरै साथ चल, राज उडाइये।

वा लुगाई सब आवणियाँ-जाणियाँ ताँही एक्कैं बात कहै- सै कोए इसा धरमातमाँ जो इसनैं कोड्ढी की जूण तैं छुटवादे। इसका हाथ पकड़ कै गंगीजी मैं झिकोळा लुवादे? जै कोए इसनैं गंगाजी मैं नुहादे उसका राम भला करैगा। वो दूदधाँ न्हागा अर पूत्ताँ फळैगा। गंगाजी मैं न्हात्याँ हे इस की काया पलट हो ज्यागी। सै कोए धरमातमाँ जो इसका कस्ट मेट्टै? सब महादे-पारबती की बात सुणैं अर मन मन म्हं हँस्सैं।

उस लुगाई की बात दुनियाँ सुणै पर मुंह फेर कै लीक्कड़ ज्या। जिसके हाड हाड मैं कोढ़ चूवै उसनैं कूण छूहवै।

अक जड़ बात या थी अक कोए बी उसकै हाथ लावण नैं त्यार नाँ हुआ। लाक्खाँ न्हाणियाँ डिगरगे अर वा लुगाई न्यूँ की न्यूँ खड़ी डिडावै।

जिबभोत्तै हाण होली जिब एक धरमातमाँ उत आया। उस बिचारे नैं बी उस बीरबान्नी की गुहार सुणी। कोड्ढ़ी नैं देख कै उसका मन पसीजग्या। उसनै सोच्या- हे परमेस्सर, इसे कूण से पाप करे अक यो कोड्ढ़ी बण्या? अर कूण से आच्छे करम करे थे अक इतणी सुथरी बहू मिल्ली। उस आदमी नैं जनान्नी की सारी बात सुणी अर बोल्या- जै इसका कोढ़ गंगा मैं न्हवाए तैं मिट ज्यागा तै मैं इसका झिकोळा लगवा दयूँगा। थारा दोनुवाँ का अगत सुधर ज्यागा। तूँ न्यूँ कर, एक कान्नी तैं तै तू इसकी बाँह पकड़ और दूसरी कान्नी तै मैं थामूंगा।

उस आदमी का तै उस कोड्ढ़ी कै हाथ लाणा था अर वो तैं साँच माँच का सिबजी भोला बणकैं खड़्या होग्या,अर बोल्या- देक्ख्या पारबती! मैं तनैं कहूँ था नाँ, अक सारे माणस गंगाजी न्हाण नहीं आंवते। लाक्खाँ मैं कोए कोए पवित्तर भा तैं गंगा न्हाण आवै सै जिसा यो आदमी लिकड़्या।

सिबजी भोळे नैं उस आदमी ताँही आसीरबाद दिया अर वै दोन्नूँ अंतरध्यान होगे।

(जयनारायण कौशिक जी ने इस लोक कथा को संकलित किया है)

लांक कथा

झोटा अर शेर

एक आदमी कै दो मैंस थी। उसका छोरा उननै चराण जाया करदा। दोनू मैंस ब्यागी। एक नै दिया काटड़ा अर दूसरी नै दी काटड़ी। वो काटड़ा घणा ऊत था। वो उस काटड़ी नै सारा दिन तंग करदा। काटड़ी नै आपणी मां तै शकैत करी पर काटड़ा तै उसनै तंग करण तै हटाए कोनी। सारा दिन उसकै टाक्कर मारदा। काटड़ी की मां ने काटड़े की मां तै लाणा दीया- तेरा छोरा मेरी छोरी नै सारा दन तंग करै। वो उसकी मां नै भी समझाया- ना बेटा तम तै दोनू भाई अर बाहण सो, आपणी बाहण नै तंग नीं करया करदे। पर काटड़ा तौ काटड़ी कै टक्कर मारदा रहंदा। फेर एक दन दोनू मैसां नै कट्ठी होकै काटड़े तै घणाए समझाया-ना बेटा आपणी बाहण नै तंग नीं राख्या करदे। पर काटड़े कै नीं लागी अर बोल्या मेरे में हांगा ए ईतना मैं के करूं? जड़ वो काटड़ा कोनी मान्या। वा काटड़ी उसके दुख में घणीए माड़ी होगी।

एक दन काटड़ी बिना मुंडेर के कूए धोरै चरै थी। काटड़े नै उसकै एक जोर की टाक्कर मारी। लागदे ए टक्कर काटड़ी तो कूए में गिरगी।

जब काटड़ी नीं आई तै काटड़ी की मां नै होई सोच। वा काटड़े तै पूछण लागी कै बेटा तेरी बाहण कड़ै। वो बोल्या पहला आपणा एक थण चुंघण दे फेर बताऊंगा। उसनै एक थण चुंघा दिया। फेर पूछया तै कह दिया दूसरा बी चुंघण दे। दूसरा बी चुंघा दिया। इस तरां च्यारों थण चुंघकै बोल्या - उसका पैर तिसळग्या अर कूए में गिरगी। या सूणकै काटड़ी की मां ने घणाए दुख ओया।

काटड़ा पहलां तो च्यार थणां का दूध पीया करदा ईब आठ थणां का दूध पीणं लागग्या। वा तो गिणेमिणे दिनां में ए ठाढा झोटा होग्या।

उसे ईलाके में एक शेर ने चणे बो राखै थे अर रूखाळ खातर एक बान्दर छोड़ राख्या था। जब वो चणे पाक कै कतई गरड़स हो रहे थे तो या झोटा उस खेत में जांदा अर चणे खायांदा। बान्दर उसनै देख के रूख पै जा कै लूकदा। झोटा रोज आंदा अर मजे सै चणे खाजणदा। चणां का खेत तो जमीं जाड़ दिया।

एक दन शेर आया अर देख्या खेत का हाल। बान्दर कानी करकै अँख लाल बोल्या- किसेनै खेत म्हं ना बड़ण दीए। जै इब नुकसान होग्या तो मेरतै बुरा नीं होगा कोए।आगले दिन बान्दर नै हिम्मतसी करकै झोटे तै कह दीया-यूह मेरे मामा शेर का खेत सै ईसमें ना बड़्या कर। झोटा तै बोल्या-

आठ थणां का दूध चुंघू खाऊं चणा की खेती,
कह दीये तेरे मामां नै लड़ूंगा सिर सेती।

या बात बान्दर नै शेर तै बता दी। शेर के छोह उठणाए था। आग्या शेर कै खेत धोरै। न्यूनै तै झोटा भी आग्या। अर दोनूवां की होई लड़ाई। कोए एक पहर तक दोनूं लड़े गए। आखरकार झोटे नै शेर भजा दीया।

ईस लड़ाई नै एक छोरा एक रूख पै चढ़्या देखै था। उसनै शेर भाजदा देख लीया। बान्दर नै बी वा छोरा देख लिया। बान्दर छोरा तै बोल्या-या बात किसे तै ना बताईये नहीं तो शेर तनै खाजैगा।

बात तै सारे कै बताण की थी- झोटे नै शेर हरा दीया। पर डर का मारया किसे तै नीं बतावै। वा चिन्ता में सूककै माड़ा होग्या। एक दिन उसके बाप नै बात पूछी तो उसनै शेर हारण आली बात बता दी। बाबू बोल्या तों रूख पै चढ़कै खूब रूके मार- झोटे नै शेर हरा दीया। छोरै नै न्यूवैं करया।

सारे लाके में शेर के हारण का रूका पड़ग्या अर शेर ने छोरे पै घणा गुस्सा आया। वो उसनै खाण चाल्या। छोरे के बाप नै एक मंजी पै सण गेरकै ऊपर चादर ढकदी। शेर नै सोच्या कै वा छोरा सोवै। खाट नै ठाके जंगल चाल पड़्या। मंजी तोड़ण लाग्या। इतनै म्हं झोटा आग्या। वा शेर नै देखकै बोल्या -

आठ थणा का दूध चुंघू खाऊं चणां की खेती
खाट नै क्यूं तोड़ै आ लड़ले मेरी सेती।

शेर तो सरम के मारे उस ईलाके नै छोड़ कै भाजग्या।

(यह लोककथा सुमेर चंद ने भी 'म्हारी दादी नानी वाली काहणी...' पुस्तक में संकलित की है) ●

लोक कथा

दुनिया जीण कोनी दींदी

एक बर एक जवान आपणी घरआळी नैं लेण गया। सवारी खातर उसनैं घोड़ी ले ली। वापसी म्हं दोनों घोड़ी पै सवार होकै चाल पड़े।

रास्ते म्हं एक गाम तै लिकड़रे थे तो उननैं देख कै लोग बोल्ले, 'रै देखो, जुल्म। माड़ी सी घोड़ी अर दो-दो सवारी।'

उनकी बात सुणकै जवान घोड़ी की लगाम पकड़ कै पैरें पैरें चालण लाग्या।

आगले गाम तै लिकड़रे थे तो उननैं देख कै लोग हांसण लागै अर बोल्ले, 'रै देखो, कै टेम आग्या। बन्नो तो घोड़ी पै बिठा राखी ए। अर, आप पैर तुड़ार्‍या।'

उनकी बात सुणकै जवान तो घोड़ी पै बैठग्या अर लगाम घरआळी तै पकड़ादी।

आगले गाम तै लिकड़ण लागै तो लोग जवान पर त्योरी चढ़ाकर बोल्ले, 'देखो रै, जमांए शर्म तार कै बगादी। मुस्टंडा तो घोड़ी पै बैठ्या। अर, या बच्यारी बईयर तै लगाम पकड़ा राखी ए।'

उनकी बात सुणकै दोनों पैदल चलण लाग गे।

आगले गाम तै लिकड़रे थे तो उननैं देख कै लोग हांसण लागै अर बोल्ले, 'रै देखो, अक्ल बिना ऊंट उबाणें फिरैं। जै पैरें ए मरणा था तो यो घोड़ी क्यानै सिंगार राखी ए।'

लोगां की बात सुणकै दोनों सोच म्हं पड़गे। सोचण लागे कै जै लोगां के हिसाब तै चालण लागै तो इब दो काम कर सकां। चै तो घोड़ी नै दबाद्यां चै घोड़ी नै सिर पै ठाकै चालां।

दुखी तो बोत ओए फेर या बात समझ म्हं आगी। अक जिस्तरां मरजी करले दुनिया जीण कोनी दींदी। हरेक स्थिति की अलग व्याख्या संभव है।

अनुभव

माई दे मालोटा

कमलेश चौधरी

हरियाणा के जिस स्थान पर मैं रहती हूं, वह कुछ सालों पहले तक ठेठ गांव था। धीरे-धीरे वह विकसित होकर कस्बे का रूप धारण कर गया। अब वह कस्बाई सीमाओं मं कसमसाता हुआ शहर बन जाने को बैचेन हैं दो प्राइवेट बैंक एक राष्ट्रीय बैंक, अनाज मंडी, सब्जी मंडी, सरकारी व प्राइवेट स्कूल, दो पेट्रोल पम्प आदि शहर की सब सुविधाएं यहां देखी जा सकती हैं। कुछ वर्षों पहले तक खाद के कट्टे से सिल कर बनाए गए बस्ते पीठ पर लादे सरकारी स्कूल में जाते बच्चों से गांव की गलियां गुलजार हो उठती थी। अब पीली बसें घूमती हैं जो घर के दरवाजे से बच्चों को इस अंदाज में लपकती हैं, जैसे उनका अपहरण करके ले जा रही हो। दोपहर को दरवाजे पर पटकती है मानो कह रही हो- यह लो संभालो अपनी औलाद को। गांव के बाहर सड़क के साथ-साथ नई कालोनी बस गई है जो दिनोंदिन फैलती जा रही है। मगर गांव के अंदर वहीं परम्परा को दर्शाते चिन्ह दिखाई देते हैं, जैसे गली में टोला बना कर बतियाती औरतें, गली में गड़े हुए भैंसों के खूंटे, कहीं पर घास लेकर आती झोटा बुग्गी, सिर पर चारे का बोझ उठाए महिलाएं दिखाई दे जाती हैं। मगर बाहर की कालोनी पर पूरी तरह शहर का रंग चढ़ा हुआ दिखाई देता है।

एक व्यक्ति ने गांव के अंदर वाला घर छोड़ कर बाहर की कालोनी में कोठी बना ली। पुराने घर को ताला लगाकर वे बाहर वाली कोठी में रहने के लिए चले गए। एक दिन मैंने देखा कि उसके बरामदे में एक कुतिया और उसके तीन पिल्ले ठंड से ठिठुर रहे थे। मैं एक पुरानी बोरी वहां पर बिछा कर आ गई। कुछ बची-खुची रोटी भी उनके आगे डाल दी। बच्चे बहुत ही छोटे थे। वे केवल मां का दूध ही पी सकते थे। दो दिन तक मैं उसे रोटी डाल कर आती रही। तीसरे दिन मैं रोटी देने गई तो एक दिल दहलाने वाला नजारा देखकर मैं हिल गई। कुत्तिया मर चुकी थी और उसके पिल्ले कूं-कूं करते सूखे उदर में दूध ढूंढ रहे थे। कुत्तिया के मृत शरीर को वहां से उठवा दिया गया। मेरा घर निकट होने के कारण मैं उन बच्चों को यदा कदा संभालती रही। बच्चे जोकि पिल्लों से प्रेम करते थे, शायद वक्त बदल गया था कोई भी उनकी रक्षा करने के लिए सामने नहीं आया। एक नर पिल्ले को मैंने अपने निजी परिचित को दे दिया। उनको अपने ट्यूबवैल पर रखने के लिए कुत्ता पालना था। सो वे खुश होकर उस छोटे पिल्ले को ले गए। तीन दिन तक मैं दो पिल्लों की देखरेख करती रही।

एक दिन में उनमें से भी एक पिल्ला मर चुका था और दूसरा कड़कड़ाती ठंड में नाली में गिरा हुआ पूरी ताकत से आर्तनाद कर रहा था। अब मुझ से उसका तड़पना देखा नहीं गया और नाली से निकाल कर अपने घर ले आई। हल्के गर्म पानी से उसको साफ किया। अचानक वह तड़पा और उसकी निर्जीव देह मेरे हाथ में लटक गई। इस धरती पर जो जीव आता है, उसका अन्त निश्चित है। मगर इस प्रकरण में पड़ोसियों की संवेदनहीनता, छोटे बच्चों का इस तरह पिल्लों से नाता तोड़ लेना, साथ में मेरा उपहास करना, साथ देना दूर ऊपर से मजाक भी बनाना मुझे बुरी तरह व्यथित कर गया। देहाती समाज में जीव-जंतुओं के प्रति जो अपनापन होता था वह शायद मिट गया है। कुत्ते का टुकड़ा निकालना, गौ ग्रास अलग से रखना, जेठ के महीने पेड़ों के नीचे पानी का कुल्हड़ रखना, छत पर दाने फैंकना ये परम्पराएं खत्म होती जा रही हैं। यह बात अब मेरी समझ में आने लगी थी। इस घटना से मुझे अपना बचपन याद आ गया।

हम बच्चे कुत्तिया के पेट को देखकर पहचान जाते थे कि यह पिल्ले देने वाली है। फिर हम उसके लिए भिठ बनाते। ऐसी जगह जहां उसके बच्चे सुरक्षित रह सकें। टूटे-फूटे ईंट रोड़े उठाकर दीवार बनाई जाती। बांस के डंडों की छत बनाकर उस पर घास-फूंस ढक दिया जाता। नीचे पराली बिछा दी जाती। फिर रोटी का टुकड़ा दिखा कर कुत्तिया को भिठ तक ले कर जाते। जब कुत्तिया बच्चे देती तो फिर पूरी गली के बच्चों का मलोटा मांगने का अभियान शुरू हो जाता। कुम्हार के घर से खराब मटका मांग कर लाते उसके नीचे वाले भाग को उठाकर घर-घर जाकर कुत्तिया के लिए मलोटा मांगते थे। घर की मालकिन को गीत गा-गा कर आर्शीवाद देते और कुत्तिया के लिए खाना देने की प्रार्थना करते। देखिए हमारा मलोटा गीत -

माई दे मलोटा, तेरा जीवै नन्हा मोटा
तेरी छलनी में कपास, तेरी नौ बेटों की आस
तेरे बार आगे रोड़े, तेरी बहू ल्यावे घोड़े
तेरे बार आगे ईंट, तेरी बहू ल्यावै छींट

जिस घर में जवान लड़की हो, तो बच्चे कहते-बुआ दे मलोटा, बुढिया को कहते-ताई दे मलोटा। घर में नई बहू होती तो कहते-भाभी दे मलोटा। जब तक कुछ खाने का सामान मिलता, हमारा मलोटा कीर्तन जारी रहता। कोई घर ऐसा नहीं था, जहां से हमें कुछ ना मिलता हो। यदि कभी ऐसा हो भी जाता, तो हम बच्चों का बद्दुआ देने का भजन शुरू हो जाता-

जो न दे मलोटा, उसका मर जा नन्हा मोटा
उसकी छलनी में कपास, उसके बेटे मारैं लात
उसके बार आगै घोड़े, उसकी बहू मारै रोड़े
उसके बार आगे छींट, उसकी बहू मारै ईंट

जैसे ही हमारी बद्दुआओं का पिटारा खुलता तो घर से कोई न कोई आकर मलोटा दे ही जाता। रोटी, दलिया, खिचड़ी, लस्सी तो अकसर मिल जाते थे। कभी-कभी कोई दयालु औरत थोड़ा-मक्खन व गुड़ की डली भी मलोटे में डाल देती थी। जब तक कुत्तिया के बच्चे घर-घर फिर कर पेट भरने लायक नहीं हो जाते, तब तक

हमारा मलोटा अभियान जारी रहता। मलोटा मांगते समय एक और गीत जो हम अक्सर गाया करते, मुझे पांच दशकों के बाद भी ज्यों का त्यों याद है। जो गली के कोने से शुरू होकर पूरे समाज को अपनी सीमाओं में समेटने वाला है–

माई दे दे रोटियां, जीवें तेरी झोटियां
झोटियों के पाली, जीवें तेरे हाली
हालियों की जूती, जीवें तेरी कुत्ती
कुत्तियों के पंजे, जीवें तेरे गंजे
गंजों के रोड़े, जीवें तेरे घोड़े
घोड़ों की काठी, जीवें तेरे हाथी
हाथियों के सूंड, जीवें तेरे भूण्ड
भूंडों की दांतरी, जीवें तेरी बान्दरी
बांदरी कातें चरखे, जीवे तेरे घर के
घर के करें काम, जीवें तेरे सारेगाम
गांव राम एक, जीवे म्हारा देश

जब आज के बचपन से उस बचपन की तुलना करती हूं तो लगता है दिल में कुछ दरक गया है। बहुत कुछ खो गया है। जो कुछ खो गया है, उसकी निश्चित परिभाषा देनी नामुमकिन है। जेट-नेट के युग में जीने वाली पीढ़ी चाहे कितनी ही तरक्की कर ले मगर उस मानवीय संवेदना को कभी नहीं पा सकेंगे, जिसको पाकर मानव सच्चे अर्थों में मानव बनने का अधिकारी बनता है।

मैंने उस पिल्ले को गर्म स्वेटर में लपेट कर धूप में रख दिया। तनिक सी आशा थी कि शायद सांस बाकी हों और गर्मी पाकर इसके प्राण लौट आएं। धूप का प्राकृतिक सेक भी व्यर्थ हो गया। मैंने जमादार को नमक और पैसे देकर कहा- भाई इसकी मिट्टी को ठिकाने लगा दो। जमादार की पत्नी भी उसके साथी थी। अगले दिन वह आई तो मेरा दिल नहीं माना और मैं उससे पूछ बैठी-पिल्ले को ठीक से दबा दिया था ना? वह बोली-बीबी जी, झूठ नहीं बोलूंगी। आपके दिये पैसों की तो वह कम्बख्त दारू पी गया। पिल्ले को कहीं कुरड़ी पर फैंक दिया होगा। मैं जड़ हो गई। मानवीय कुटिलता का वीभत्स रूप मेरे सामने था। लाख कोशिश के बाद भी आंसू नहीं रुक पाए। मेरे दिमाग की स्क्रॉल पट्टी पर लिखा हुआ दिखाई दे रहा था-माई दे मलोटा।

सम्पर्क : 98134-46370

कर्मचंद 'केसर' की गजलें

यार छोड़ तकरार की बातां।
आजा कर ले प्यार की बातां।

एक सुपना-सा बणकै रह्गी,
आपस के इतबार की बातां।

आजादी म्हं भी जस की तस सैं,
जबर जुल्म अत्याचार की बातां।

अखबारां की बणी सुरखियां,
बलात्कार, दुराचार की बातां।

सूई का के काम ओड़ै सै,
जड़ै चलैं तलवार की बातां।

लोगां नैं उलझाकै राक्खैं,
बाब्यां के दरबार की बातां।

बूढ़िया बोली छोड़ बहू इब,
नां छेड़ै नसवार की बातां।

सारे देस म्हं फैल रह्यी सैं,
जालिम भरस्टाचार की बातां।

लोभ लालच टैंशन म्हं उलझी,
हंसी खुशी अर प्यार की बातां।

बजुरगां गेल्यां चली गई सैं,
वैं सांझे परिवार की बातां।

इब कौन सुणैगा तेरी-मेरी,
चाल रह्यी सरकार की बातां।

दिमाग खराब करैं माणस का,
बेमतलब बेकार की बातां।

बनड़ी नैं लाग्गैं सैं प्यारी,
होण आले भरतार की बातां।

मतलब के इस दौर म्हं 'केसर'
कौण करै ब्यौहार की बातां।

2

हेल्ली-महल चबारे देक्खे।
छान-झोंपड़ी ढारे देक्खे।

तरसें सैं किते बूंद-बूंद नैं,
चलते किते फुहारे देक्खे।

गरमी-सरदी कदे मींह् बरसै,
कुदरत तिरे नजारे देक्खे।

होणी सै बलवान जगत म्हं,
राजे हाथ पसारे देक्खे।

सूरज नैं हड़ताल करी तो,
हमनै दिन म्हं तारे देक्खे।

मां बिन गूंगे की कुण जाणैं,
करकै बोह्त इशारे देक्खे।

गफलत म्हं मार्या था कुत्ता,
लक्खी से बणजारे देक्खे।

चुरमा-खांड, कसार गुलगले,
खाकै शक्कर पारे देक्खे।

गजब हुस्न के चमकै लाग्गैं,
तिरछे नैन कटारे देक्खे।

खावैं सैं किते खोस-खोस कै,
लाग्गे किते भण्डारे देक्खे।

बालकपण-सी मौज नहीं सै,
लेकै बोह्त नजारे देक्खे।

गीत गावती झूलण ज्यां थी,
मिरगां कैसे लारे देक्खे।

पह्लां जिसे न रह्ये गाभरू,
ब्याहे और कुंवारे देक्खे।

मतलब की दुनिया म्हं 'केसर'
दुसमन बणते प्यारे देक्खे।

3

मेरे हालात नां पूच्छै।
इस दिल की बात नां पूच्छै।

फुटपाथ पै बसर करूं सूं।
मेरी औकात नां पूच्छैं।

मैं सबका सब मेरे सैं,
तौं मेरी जात नां पूच्छै।

डंड म्हं भुगत दिये जो मन्नैं,
तमाखू के पात नां पूच्छै।

जिन्दगी भर तक याद रहैगी,
इब वा मुलाकात नां पूच्छै।

दुक्ख चिन्ता अर विपता के म्हं,
यू सूक्या गात नां पूच्छै।

आज तलक सी भुगत रह्या सूं,
वैं फेरे सात नां पूच्छै।

गहरे जख्म दिये बख्त नैं,
वा बीती बात नां पूच्छै।

किस मजबूरी म्हं केसर नैं,
क्यूं जोड़े हाथ नां पूच्छै।

●●

मो : 93543-16065

हरियाणवी नृत्य गीत

सुधीर शर्मा

मेरा नौकर वर ढुंढवाइए मेरी मां

विवाह योग्य होने पर परम्परागत समाज में अपना पति पसंद करने वाली युवतियों की भूमिका नहीं होती। पर अपने सपनों के राजकुमार की एक छवि सभी युवतियां अपने मन में बसाए रखती हैं। यद्यपि वे परिवार में अपने पसंद के पति के बारे में खुलकर बात नहीं कर सकती। वे इन गीतों में अपनी उस भावना को व्यक्त कर देती हैं कि उनका पति किस प्रकार बहुत तमीज वाला, सभ्य और शालीन हो।

मेरा नौकर वर ढुंढवाइए मेरी मां,

हाळी लोग क: मत मत ब्याहिए
चाहे पांच बाराती बुलवाइए मेरी मां,

छटा बुलवाइए उस छोरे न:
जब वो नौकर रोटी खावै,
कंच की प्लेट मंगवावै मेरी मां

हाळी लोग क: मत ब्याहिए
जद वो हाळी रोटी खावै
टीकड़े प टीकड़ा जमावै मेरी मां,

हाळी लोग क: मत ब्याहिए
मेरा नौकर वन ढुंढवाए मेरी मां,

हाळी लोग क: मत ब्याहिए
चाहे पांच बाराती बुलवाइए मेरी मां,

छटा बुलवाइए उस छोरे न
जद वो नौकर सौवन लागै
झालर तकिए लगावै मेरी मां,

हाळी लोग क: मत ब्याहिए
जब वो हाळी सोवन लागै
गुदड़ी पै घाघरा जचावै मेरी मां,

हाळी लोग क: मत ब्याहिए
मेरा नौकर वर ढुंढवाइए मेरी मां,

हाळी लोग क: मत ब्याहिए
चाहे पांच बाराती बुलवाइए मेरी मां,

छटा बुलवाइए उस छोरे न
मेरा नौकर वर ढुंढवाइए मेरी मां,
हाळी लोग क: मत ब्याहिए

•

आंगण बीच कूई राजा

मर्यादा व अनुशासन यद्यपि मौन धारण करने की अपेक्षा करते हैं, पर परिवार के विभिन्न लोगों का रवैया मन में विद्रोह करने की खलबली मचा देता है। मन का आक्रोशन नृत्य गीतों से हंसी-हंसी में बाहर निकल जाता है। पत्नी परिवार के कुछ सदस्यों से दुखी होकर उनको डराने के लिए घर के आंगन की कूई में डूबने का नाटक करती है पर पति को बता देती है कि वह कोरा नाटक है। वास्तव में तो यह बहाना है देवरानी, जेठानी और सौत से लड़ाई करके उन्हें धान कूटने की तरह पीटने का है, क्योंकि वे उसकी जन्म की दुश्मन है। लड़ाई औरों से भी होगी पर मार-पिटाई की नहीं। रसीले देवर से तो नाम मात्र का सिर्फ हंस-खेल के लिए लड़ना है। यह गीत तनाव कम करने का 'सेफ्टी वाल्व' है।

आंगण बीच कूई राजा डूब क: मरूंगी
तू मत डरिए मैं तो औरां न: डराऊंगी

जेठ लड़ैगा पाछा फेर क: लडूंगी
आजा री जिठानी तेरे धान से छडूंगी
धान से छडूंगी तेरी घाणी सी भरूंगी
तू मत डरिए मैं त: औरां न: डराऊंगी

देवर लड़ैगा हंस खेल क: लडूंगी
आजा री द्योराणी तेरे धान से छडूंगी
धान से छडूंगी तेरी घाणी सी भरूंगी
तू मत डरिए राजा औरां न: डराऊंगी

सुसरा लड़ैगा घुंघट ताण क: लडूंगी
आजा री सासु तेरे धान से छडूंगी
धान से छडूंगी तेरी घाणी सी भरूंगी
तू मत डरिए मैं तो औरां न: डराऊंगी

कन्था लड़ैगा चुन्नी बांध क: लडूंगी
आजा री सौत तेरे धान से छडूंगी
धान से छडूंगी तेरी घाणी सी भरूंगी
तू मत डरिए मैं तो औरां न: डराऊंगी

सम्पर्क : 9729636170

•

रागनी

ज्ञानी राम शास्त्री

जीन्द जिले के गांव अळेवा में सन् 1923 में जन्म। भिवानी और अमृतसर से प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त की। ओरियण्टल कालेज, लाहौर से शास्त्री की परीक्षा पास करके लायलपुर चले गए। 1946 में साम्प्रदायिक दंगों के कारण गाव अळेवा में आ गए। 1949 में लुधियाना में जयहिन्द कालेज के स्थापना की। चालीस वर्षों तक अध्यापन किया।

पाकिस्तान की पोल, नया जमाना, बखत के बोल, ज्ञान के हीरे मोती, वक्त की आवाज, किसान और मजदूर, आजादी का राज नामक हरियाणवी रचनाएं प्रकाशित हैं। रचनाओं को वाशिष्ट प्रकाशन, ज्ञान भवन, अलेवा, जीन्द ने प्रकाशित किया है।

उथल पुथल मचगी दुनियां म्हं, निर्धन लोग तबाह होग्ये
कोए चीज ना सस्ती मिलती, सबके ऊंचे भा होग्ये

असली चीज मिलै ना टोही, सब म्हं नकलीपण होग्या
बिना मिलावट चैन पड़ै, सब का पापी मन होग्या
दिन धोळी ले तार आबरू जिसकै धोरै धन होग्या
निर्धन मरजै तड़फ तड़फ कै, इतना घोर बिघन होग्या
इज्जतदार मरैं भूखें, बदमाश लफगें शाह होग्ये

ठाड़े धरती के मालिक, नक्शे इंतकाल भरे रहज्यां
पकड़े ज्यां निर्दोष पुरुष, पापी बदकार परे रहज्यां
घर बैठें लें देख फैसला, गवाह वकील करे रहज्यां
जिसकी चालै कलम पकड़ लें, सब कानून धरे रहज्यां
क्यूंकर मुलजिम पकड़े जां जब अफसर लोग ग्वाह होग्ये

बेरोजगारी की हद होगी, पढ़े-लिखे बेकार फिरैं
घटी आमदनी बधगे खर्चे, किस-किस कै सिर मार मरैं
बड़े-बड़े दो पिस्यां खातर, अपणी इज्जत तार धरैं
धर्म के ठेकेदार बी, भूंडी तै भूंडी कार करैं
भोळे लोगां नै लूटण के, बीस ढाळ के राह होग्ये

कई जणां कै कोठी बंगले, लाईन लागरी कारां की
पड़े सड़क पै कई जणे, लाठी बरसैं चौंकीदारां की
बिस्कुट दूध-मलाई खावैं, बिल्ली साहूकारां की
खाली जून टळै भूख्यां की, निर्धन लोग बेचारां की
ज्ञानीराम न्यूं देख-देख कै, घणे कसूते घा होग्ये

2

मात पिता के मरें बाद आंसू टपकाकै के होगा
जिन्दें जी जूते मारे फेर फूल चढ़ाकै के होगा

कहणा मान्या नहीं कदे फेर तिलक लगाणा ठीक नहीं
छुए कोन्या पैर कदे फेर शीश झुकाणा ठीक नहीं
राखे सदा अन्धेरे म्हं फेर दीप जळाणा ठीक नहीं
नाक चढ़ाकै रोटी दी फेर पिंड भराणा ठीक नहीं
बोले कड़वे बोल सदा फेर श्राद्ध कराकै के होगा

बिछुड़े बाद बड़ाई करते बेटे पोते देख लिये
कर कर याद लाड़ बचपन के पाछै रोते देख लिये
पितरां खातिर गंगा जी म्हं लाते गोते देख लिये
लगी हुई कमरां में फोटू मल मल धोते देख लिये
रहे तड़पते वस्त्र बिन फेर शाल उढ़ाकै के होगा

काढ़े दोष सदा जिनके फेर पाछे तै गुण गावैं सैं
दुखी करे जिन्दगी भर फेर मन्दिर में पत्थर लावैं सैं
घूर घूर देखणियें फेर फोटू पै ध्यान जमावैं सैं
सदा उछाळी पगड़ी फेर पगड़ी की रस्म निभावैं सैं
दुख म्हं करी नहीं सेवा फेर पेहवे जाकै के होगा

कर ल्यो जिन्दे जी सेवा या आच्छी किसमत थारी सै
आर्शीवाद मिले दिल तै जो बेटा आज्ञाकारी सै
खुद अपनी सन्तान भला ना लागै किस नै प्यारी सै
कोए अमर ना रहा जगत म्हं आखिर सब की बारी सै
ज्ञानी राम दो हरफी कह दी ढोल बजाकै के होगा

3

इस भारत म्हं दुनिया तै एक ढंग देख लिया न्यारा
खाज्या घणा कबज होज्या एक भूखा मरै बेचारा

एक जणे की चढ़ी किराये कई कई बिल्डिंग कोठी
एक जणे नै मिलै रहण नै कोन्या एक तमोटी
एक जणे की खा खा मेवे हुई दूंदड़ी मोटी
एक जणे नै पेट भराई कोन्या मिलती रोटी
एक जणा बैठा गद्दी पर दे रहा एक सहारा

एक जणे कै दस दस नौकर सब पर हुकम चलाता
एक जणे नै नौकर भी कोय घर में नहीं लगाता
एक जणा न्हा धोके सिर म्हं इतर फलेल लगाता
एक जणे नै न्हाणे नै भी नीर मिलै ना ताता
एक फिरै कारां म्हं दूजा भटकै मारा मारा

एक जणा दे खर्च लाख पर करता नहीं पढ़ाई
एक जणा पढ़णा चाहवै पर फीस किते ना थ्याई

एक जणे कै बीस वर्ष में दो दो तीन लुगाई
एक जणे की उमर बीत गई कोन्या हुई सगाई
दस पोशाक एक पै दूजा नांगा करै गुजारा

एक जणे के घर म्हं आवै अन्धा धुन्ध कमाई
एक जणे के घर म्हं कोन्या जहर खाण नै पाई
एक जणे कै बीस आदमी करते मन की चाही
एक जणे के घर म्हं कोन्या बतळावण नै भाई
ज्ञानी राम पता ना कद यू फर्क मिटैगा म्हारा

4

दुनियां म्हं महंगा होग्या सब जिन्दगी का सामान
सब तै सस्ता मिलै आज यू बद किसमत इन्सान

मरा पड्या हो पास पड़ौसी कतई नहीं अफसोस
समो समो के रंग निराले नहीं किसे का दोष
कार लिकड़ज्या ऊपर तै कर दूजे नै बेहोश
खा माणस नै माणस कै फिर भी कोन्या संतोष
खून चूसते नौकर का यें मालिक बेईमान

माणस की ना कदर करैं ये साहूकार अमीर
दूजे की मेहनत पै अपनी बणा रहे तकदीर
हालत देख लुगाई की भरज्या नैनां में नीर
भूखी मरैं आबरू बेचैं गहणै धरैं शरीर
लाल बेच दें गोदी का सै भूख बड़ी बलवान

पढ़े लिख्यां की पूछ रही ना फिरैं घणे बेकार
आत्महत्या करैं कई छोड्डें फिरते घर बार
माणस खींच रह्या माणस नै आज सरे बाजार
आज मनु का पूत लाड़ला रौवे किलकी मार
अपने पैरें आप कुहाड़ी मार रह्या नादान

खून, जिगर बिकते माणस के बिकते हाड्डी चाम
जिन्दगी लग भी बिकज्या सै जै मिलज्यां चोखे दाम
सब तै बड़ा बताया था बेदां म्हं माणस जाम
ज्ञानीराम इस कळियुग म्हं हो ग्या सबतै बदनाम
पता नहीं कित पड़ सोग्या पैदा करके भगवान

5

गऊ कहाया करते थे भारत के लोग लुगाई
जोंक, भेड़िये, मगरमच्छ अब देते नाग दिखाई

बण कै जोंक लहू चूसैं यें साहूकार देश के
भूखे नंगे फिरैं बेचारे ताबेदार देश के
कोठी बंगलां म्हं रहते असली गद्दार देश के
आंख मीच के सोग्ये सारे पहरेदार देश के
भरैं तजूरी ठोक ठोक करैं अन्धां धुन्ध कमाई

बणे भेड़िये भारत के यें परमट कोट्यां वाळे
नाम करा कै डिपू रूट दिन धौळी पाड़ै चाळे
मीठी मीठी बात करैं यें पर भीतर तै काळे
अफसर और वजीरां के झट बणैं भतीजे साळे
बकरी भेड़ समझ निर्धन नै करज्यां तुरन्त सफाई

रिश्वतखोर मगरमच्छ बणगे खावैं ऊठ ऊठ कै
जै मिल ज्या मजबूर दुखी कोय पड़ते टूट टूट कै
लाखां के मालिक बणग्ये, लोगां नै लूट लूट कै
बिन रिश्वत ना काम करैं चाहे रोल्यो फूट फूट कै
आठों पहर रहैं मुंह बायें पापी नीच कसाई

काळे नाग बणे जहरी यें बड़े बड़े व्यापारी
चीनी तेल नाज घी लोहा कर लें कट्ठा भारी
फण ताणे बैठे रहैं भूखी मरज्या दुनिया दारी
चढ़ज्यां रेट शिखर म्हं जब यें जिनस काढ़ दें सारी
ज्ञानी राम इन चार जणां नै कर दी घोर तबाही

6

खड़ी लुगाइयां के मांह सुथरी श्यान की बहू
पर थी कर्म हीन कंगाल किसान की बहू

गळ में सोने का पैंडल या हार चाहिए था
बिन्दी सहार बोरळा सब शिंगार चाहिए था
सूट रेशमी चीर किनारीदार चाहिए था
इसी इसी नै तो ठाडा घर बार चाहिए था
रुक्का पड़ता जो होती धनवान की बहू

चारों तरफ लुगाइयां की पंचात कर रही थी
सब की गेलां मीठी मीठी बात कर रही थी
बात करण म्हं पढ़ी लिखी नै मात कर रही थी
दीखै थी जणु सोलह पास जमात कर रही थी
बैठी पुजती जो होती विद्वान की बहू

मस्तानी आंख्यां म्हं मीठा प्यार दीखै था
गोरे रंग रूप म्हं हुआ त्योहार दीखै था
हट्टा कट्टा गात कसा एक सार दीखै था
नखरा रोब गजब का बेशुमार दीखै था
दबते माणस जो होती कप्तान की बहू

इज्जत आगै दौलत नै ठुकरावण वाळी थी
टोटे म्हं भी अपनी लाज बचावण वाळी थी
पतिव्रता नारी का फर्ज पुगावण वाळी थी
पीहर और सासरे नै चमकावण वाळी थी
ज्ञानी राम जणु लिछमी थी भगवान की बहू

••
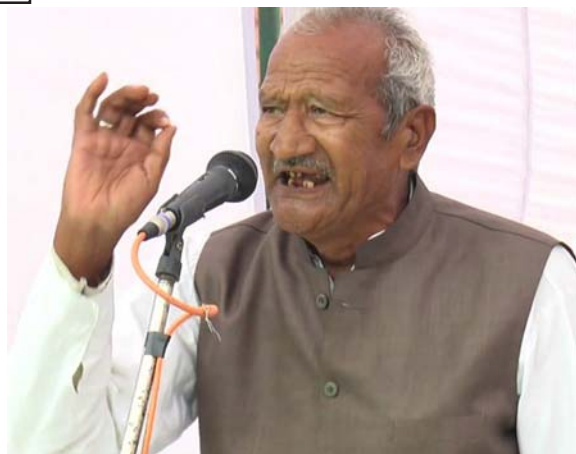
मास्टर सतबीर

हरियाणवी संस्कृति का अनमोल रत्न

सोनीपत जिले के गांव भैंसवाल कलां में जन्में मास्टर सतबीर हरियाणवी संस्कृति के ऐसे कलाकार हुए हैं जिन्होंने अपनी गायन शैली के माध्यम से विभिन्न लेखको की रागनी व भजनो को घर घर तक पहुँचाया है। मास्टर सतबीर सिंह को हजारों भजन व रागनियां याद थी । वे बहुत ही सुरीले व लयबद्ध गाने वाले कलाकार थे। उहनकी अदाकारी को देखने के लिए लोग बड़े चाव से इकटठा होते थे। मास्टर जी बहुत ही सीधे व सरल स्वभाव के इन्सान थे। वे बडे प्रेम से लोगो से पेश आते थे और बहुत ही मिलनसार थे। इन्हीं गुणों के कारण हर कोई उनसे प्यार करता था। इनके गाने के स्तर के इतना ऊँचा होने के फलस्वरूप हरियाणा सरकार ने उन्हें हरियाणा गोरव सम्मान से अलंकृत किया था।

मास्टर सतबीर का अधिकतर जीवन गाने व पढाने में ही व्यतीत हुआ। वे पी टी आई के पद पर थे और अध्यापन के दौरान उन्होंने भिन्न-भिन्न गांवों को अपनी सेवा दी। उनकी पहली तैनाती जौली गांव में हुई थी। वो रिवाड़ा और रभड़ा के सरकारी स्कूलों में भी तैनात रहे । 2009 में वो सेवानिवृत हुए। वे बहुत अच्छे खेल परीक्षक थे और उन्होंने योगेश्वर दत्त जैसे हीरे को तराशने का कार्य किया, जिस पर देश को नाज है।

मास्टर सतबीर ने बहुत से किस्से व भजन गाए हैं। वे किस्से व सांग में यथास्थान अपनी रागनी भी शामिल कर लिया करते थे । मास्टर सतबीर ने अपनी गायन शैली के माध्यम से हरियाणवी संस्कृति को 45 से 50 वर्षों के करीब इसे निरन्तर चलायमान रखा। वे निरन्तर अभ्यासरत रहते थे, जिससे उनकी याददाश्त बहुत बढ़िया थी। उन्हें कभी भूलते हुए नहीं देखा। उन्होंने बहुत से सांग व किस्सों की रीकार्डिंग की ताकि वो भविष्य में हमें अपनी संस्कृति को सहेज कर रखने में हमारी सहायता कर सकें।

मास्टर सतबीर जी मधुमेह से पीड़ित थे। किडनी खराब होने से रोहतक से नियमित डायलिसिस करवा रहे थे। सोमवार सुबह तेज बुखार के चलते उन्हें गोहाना लाया गया जहां हस्पताल में उन्हे मृत घोषित कर दिया गया। 18 जुलाई 2016 सुबह के समय हरियाणवी संस्कृति के इस इस अनमोल रत्न ने इस धरा पर अपनी अन्तिम सांस ली।

उनके परिवार में उनकी पत्नी कृष्णा देवीए बेटा संदीप, बेटियां ममता व राखी हैं। उनका पुत्र संदीप उनकी इस कला को निरन्तर आगे बढ़ा रहा है।

मा. नरेन्द्र कुमार

गाँव कोथ कलाँ (हिसार) मो.9896991149

मास्टर सतबीर द्वारा गाए सांग व किस्से

भगत सिंह
चन्दकिरण
सुभाष चन्द्र बोस
हीरामल जमाल
उधम सिंह
सेठ ताराचन्द
अंजना पवन
वीर वीकरमाजीत
नल दमयन्ती
नौरत्न
वीजा सोरठ
बणदेवी
चापसिंह
वीर हकीकतराय
जयमल फत्ता
शिवजी का विवाह
पिंगला भरथरी
हरनन्दी का भात
जानी चोर
श्रवण कुमार
षाही लकड़हारा
सती बपोला
रूप बसन्त
गौतम बुद्ध
सरवर नीर
भूप पूरंजन
कृष्ण सुदामा
वीर सावरकर
कृष्ण जन्म
जल करण
उतानपाद
मीरा बाई
भगत पूरणमल
उषा अनिरूद्ध
हूर मेनका
रूक्मणी का विवाह
चन्द्रहास
अजीत सिंह राजबाला
मोरध्वज
शकुन्तला दुष्यन्त
हीर रांझा
राजा हरिशचन्द्र
गोपीचन्द
फूल सिंह नोटंकी
चीर पर्व
लख्मी का ब्रह्मज्ञान
विराट पर्व
मांगेराम का ब्रह्मज्ञान
सत्यवान सावित्री
जगदीश का ब्रह्मज्ञान
लीलो चमन
हरफूल जाट जुलानी
पदमावत
उपदेशक भजन

आलेख

हरियाणा में सांग परम्परा

सपना रानी

हरियाणा में लोक मंच को 'सांग' के नाम से जाना जाता है। 'सांग' शब्द, स्वांग शब्द से बना है जो नाट्य शास्त्र के 'रूपक' शब्द का पर्याय है। सांग हरियाणा की संस्कृति के जीवन का दर्पण है यहां के निवासियों के सामाजिक और नैतिक मूल्य, लोक जीवन से जुड़ी वीरता और प्रेम की कहानियां, खेत-खलिहान, दान-पुण्य और अतिथि सत्कार के भाव अभिव्यक्त करता है। सांग-गीत, संगीत और नृत्य का कला-संगम हैं।

18वीं शताब्दी से पूर्व सामूहिक मनोरंजन के दो साधन थे - मुजरा और नकल। सम्पन्न परिवारों में विवाह आदि के अवसर पर ये कार्यक्रम होता था। मुजरे के लिए नृत्यांगनाएं आती थी और नकल के लिए नकलिए व नक्कालों को बुलाया जाता था जो अपने-अपने तरीकों से सामूहिक मनोरंजन किया करते थे परन्तु एक सभ्य समाज में नृत्यांगनाओं व नक्कालों को हेय की दृष्टि से देखा जाता था। ऐसी परिस्थिति में सांग का उद्‌भव हुआ।

हरियाणवी सांग का मंच आडम्बरहीन व सादा होता है। किसी भी खुले स्थान पर तख्त लगाकर और उन पर दरियां बिछाकर सांग की स्टेज तैयार कर ली जाती है। इसमें न किसी पर्दे की आवश्यकता होती है और न ही नेपथ्य की। यहां पर सब कुछ खुले में दर्शकों के सामने होता है प्रवेश, प्रस्थान, संवाद, गाना और नाचना आदि सब कुछ विभिन्न पात्रों के द्वारा खुले मंच पर ही किया जाता है।

हरियाणा में सांग का आरम्भ लगभग 1730 ई. में किशनलाल भाट द्वारा किया गया। किशन लाल भाट के सांगों का अधिक इतिहास तो उपलब्ध नहीं है परन्तु यह जानकारी अवश्य है कि उन्होंने सांग कला को जन-जन तक पहुंचाया। उन्होंने नृत्य और नकल में कथानक और नाटकीय तत्वों को डालकर सांग कला को एक नई दिशा प्रदान की। इससे पूर्व पुरूष सांग नहीं करते थे अपितु वेश्याएं सांग करती थी।

किशन लाल भाट के बाद बंसीलाल नामक सांगी ने 19वीं शताब्दी के आरम्भ में अभिनय किया। उनके सांग 'गोपीचन्द' का विवरण प्रसिद्ध लेखक आर.सी. टेम्पल ने 'द लिजेण्डस ऑफ द पंजाब' में किया है। बंसीलाल के सांग कौरवी क्षेत्र अम्बाला और जगाधरी में होते थे।

19वीं शताब्दी के मध्य में (1854 से 1889 तक) अलीबख्श नामक सांगी प्रसिद्ध हुए। उनका कार्यक्षेत्र, धारूहेड़ा, रेवाड़ी, मेवात और भरतपुर थे। उन्होंने चौबोला, जिकारी, बहार, गजल और भजन के रूप में अपनी गेय रचनाएं प्रस्तुत की। उनके प्रसिद्ध सांग रहे पदमावत, कृष्ण लीला, निहालदे, चन्द्रावल और गुलब कावली। परन्तु अलीबख्श की रचनाएं तथा संगीत लोकधुनों के अभाव में पर्याप्त लोकप्रियता प्राप्त नहीं कर पाई।

19वीं शताब्दी के अन्त में आए पं. नेतराम। आरम्भ में वे भजन-कीर्तन किया करते थे परन्तु लोगों का रूझान सांग की तरफ अधिक देखकर उन्होंने लोक भाषीय संगीत का सहारा लिया और सांग मण्डली का निर्माण किया उनके प्रसिद्ध सांग थे-गोपीचन्द, शीलादे और पूरण भगत।

बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में एक विशिष्ट प्रतिभा ने सांग के क्षेत्र में कदम रखा और यह प्रतिभा थे लोककवि छाजू राम के शिष्य सेरी खाण्डा (सोनीपत) निवासी दीपचन्द। पं. दीपचन्द संस्कृत के विद्वान थे। दीपचन्द के सांग प्रथम विश्व युद्ध के समय अपने यौवन पर थे। उन्होंने किशनलाल भाट द्वारा आरम्भ की पद्धति में अनेक परिवर्तन किए। दीपचन्द ने अंग्रेजी शासन के साथ भारत में आने वाले हारमोनियम को भी सांग वाद्यों में शामिल किया। उन्होंने कलाकारों और टेकियों की संख्या भी बढ़ा दी, जिनका काम था मुख्य सांगी या सांग के पात्रों द्वारा गाए गए आरम्भिक मुखड़ों को दोहराना। दीपचन्द के स्त्री पात्रों के आभूषण और वस्त्र-सज्जा थे - काले रंग का लहंगा उस पर धारू रंग की अंगिया और लाल रंग का ओढणा आदि। पं. दीपचन्द के प्रसिद्ध सांग थे - सोरठ, सरण दे, राजा भोज, नल दमयन्ती, गोपीचन्द, हरिश्चन्द्र, उत्तानपाद और ज्यानी चोर।

दीपचन्द के बाद सांगियों की परम्परा में कई व्यक्ति आते हैं उनके नाम इस प्रकार हैं - बाजे भगत (सिसाना), सरूपचन्द (दिसारखेड़ी), मानसिंह जोगी (सैदपुर), भरतु (भैंसरू), निहाल (नांगल), सूरजभान वर्मा (भिवानी), हुकमचन्द (किसमिनाना), धनसिंह जाट (पुठी), चितरू लुहार (सांपला गढ़ी) और गोरड़ निवासी हरदेवा। इन सभी कलाकारों ने लोक-कथाओं के माध्यम से दर्शकों के हृदय को भाव विभोर किया।

इस परम्परा में सबसे प्रमुख नाम आता है हरदेवा नामक सांगी का जो पं. दीपचन्द के शिष्य थे। उन्होंने सांग में स्वाभाविकता लाने का प्रयत्न किया। उन्होंने अपने गुरू दीपचन्द द्वारा स्थापित स्त्रीवेश का विरोध किया। श्री हरदेवा ने 'काफिया' छंद का परित्याग करके उसके स्थान पर रागनी का प्रयोग किया; जो आज तक प्रचलित है। हरदेवा के प्रमुख सांगों के नाम थे, हीरामल-जमाल, धरमकौर-रघबीर, हीर-रांझा और बीजा-सोरठ।

हरदेवा के शिष्य बाजे भगत (सुसाणा निवासी) भी हरियाणा के प्रमुख सांगियों में से एक थे। उनकी रागनियों में भक्ति व नीति की प्रधानता थी। उन्होंने साज-संगीत में काफी सुधार किया और सारंगी, ढोलक, नगाड़े तथा हारमोनियम के अनेक कुशल कलाकारों को मंच पर लेकर आए। उनके लोकप्रिय सांग थे, जमाल, रघबीर, चन्दकिरण और गोपीचन्द।

सांग की इस परम्परा में पं. लखमीचन्द (जांटी निवासी) विशेष रूप से प्रसिद्ध हुए। वे निरक्षर थे, परन्तु आस-पास के परिवेश को उन्होंने गहराई से समझा

व अनुभव किया। बचपन में लोक कवि मानसिंह के भक्ति गीतों का लखमीचन्द पर विशेष प्रभाव पड़ा। पं. लखमीचन्द ने उनकी सेवा करते हुए उनके साथ गायन का अध्ययन किया और सोलह वर्ष की आयु में उन्होंने अपनी सांग पार्टी की स्थापना की।

आरम्भ में पं. लखमीचन्द के सांगों को विशेष प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं हो पाई क्योंकि उनके सांगों में शृंगार प्रवृति अधिक पाई जाती थी। समाज में इस प्रकार के सांगों को सम्मान की दृष्टि से नहीं देखा जाता था। पं. लखमीचन्द ने इस बात को समझा और अपने दो विद्वान साथियों के साथ मिलकर पुराणों की कथाएं सुनी, उपनिषदों के प्रसंग सुने और अनेक दर्शनों की गुत्थियों की चर्चा करते हुए उनके ज्ञान को अपने भीतर आत्मसात किया। इस प्रकार उनकी शृंगारी प्रवृति पर आध्यात्मिकता का पुट चढ़ता चलता गया।

तत्पश्चात लखमीचन्द ने पौराणिक लोककथाओं से सम्बन्धित और अपनी कल्पना पर आधारित सांगों की रचना की और मनोहारी मंचन भी किया। उन्होंने लगभग 2500 रागनियों और 1000 नई लोकधुनों का विकास किया। उनके प्रसिद्ध सांग हैं - हरिश्चन्द्र मदनावत,नौटंकी, शाही लकड़हारा, नल-दमयन्ती, सत्यवान सावित्री, शकुन्तला, द्रोपदीचीर उत्तानपाद, भगतपूरणमल, हीर-रांझा, सेठ ताराचन्द, मीराबाई, पदमावत, ज्यानीचोर, हीरामल जमाल और राजा भोज आदि।

पं. लखमीचन्द के बाद के सांगियों में नाम जुड़ता है मांगे राम (पुरपाणची) का। मांगे राम जी ने ऐतिहासिक, पौराणिक, भक्ति, लौकिक गाथाओं से सम्बन्धित सांगों का डंका हरियाणा के गांव-गांव में बजाया। यही नहीं वे राष्ट्रवादी भावनाओं से प्रेरित, सामाजिक जीवन से सम्बन्धित अभिनय भी अपने कला-मंच के माध्यम से करते थे। उनके प्रसिद्ध सांग थे- रूप बसंत, हकीकतराय, कृष्ण-जन्म, ध्रुव भगत, गोपीचन्द, भरथरी, चन्द्रहास, चापसिंह और शकुन्तला आदि। उनके सांगों की प्रसिद्धि फिरोज जालंधर, अमृतसर, लाहौर, मुलतान और बन्नू के हाट तक के इलाकों तक पहुंच गई थी। मांगे राम के साथ-साथ लखमीचन्द के शिष्य, माईचन्द, सुलतान, रतीराम, चन्दन भी सांग करते थे।

मांगे राम जी के बाद चन्द्रदत्त बादी (दत्तनगर, दादरी) का नाम सांगी के रूप में उल्लेखनीय है। उन्होंने सांग में स्वाभाविकता लाने के उद्देश्य से अपनी मंडली में स्त्रियों को स्थान दिया, किन्तु यह सुधार सर्वमान्य न हो सका। इन्होंने दूसरा प्रयास किया टिकटों पर सांग दिखाने का, परन्तु उनका यह प्रयास भी कुछ समय के बाद असफल हो गया। 'बीजा सोरठ' उनके प्रसिद्ध सांग का नाम था। कई अन्य सांगों को भी उन्हें सांग मंच पर सफलता से मंचित किया।

मांगे राम के समकालीन सांगी निदाणा-निवासी धनपत सिंह हुए। धनपत सिंह की गायन शैली और अभिनय कहीं उत्तम थे, परन्तु रागनी-रचना की दृष्टि से मांगेराम अग्रणी थे। धनपत सिंह के प्रसिद्ध सांग थे-लीलोचमन, ज्यानी चोर, सत्यवान-सावित्री तथा बन-देवी। उनका लीलो चमन सांग, भारत विभाजन पर आधारित था जो राष्ट्रीयता की भावना से प्रेरित था। 'सत्यवान-सावित्री' सांग के माध्यम से उन्होंने नारी शक्ति को विशेष रूप से प्रेरित किया।

धनपत सिंह के बाद पं. रामकिशन ब्यास ने भी सन 1945 से 1990 तक इस परम्परा का बखूबी निभाया। ये सांग और रागनी के क्षेत्र में 'व्यास जी' के नाम से प्रसिद्ध हुए। उन्होंने अनेक सांगों की रचना की और अभिनय भी किया। रामकिशन ब्यास की रचनाएं अत्यन्त लोकप्रिय रहीं। उनके सांग मंच को सुशोभित करेन वाले व्यक्ति थे उनके नक्कारची इम्मन, सारंगी उस्ताद-सब्बीर हुसैन, हारमोनियम मास्टर-ताहिर हुसैन प्यारे-ढोलकवादक आदि। रूपकला जादूखोरी, धर्मजीत, सत्यवान-सावित्री, हीरामल-जमाल और कम्मो कैलाश, रामकिशन ब्याज जी के प्रसिद्ध सांग थे। उनके सभी सांग लोकजीवन में प्रेमभावना और भक्तिभावना और सौन्दर्य भावना संचार करने वाले थे।

रामकिशन व्यास के समकालीन सांगी खिम्मा भी लगभग 60 वर्ष तक सांग परम्परा को निभाते रहे। ये बाजे भगत के शिष्य और गोरड़ निवासी हरदेवा के पुत्र थे। इन्होंने बाजे भगत की सांग प्रणाली को निभाया। परन्तु ये अधिक लोकप्रिय नहीं हो पाए।

बाजे भगत के शिष्य हुश्यारे-प्यारे ने भी सांग परम्परा को निभाया। मांगे राम के शिष्य सरूपलाल व कपूर आदि ने भी कई वर्षों तक अपने गुरू के सांगों का मंचन किया। धनपत सिंह के शिष्य श्याम, गांव धरोधी (जींद), चन्दगीराम गांव भगाणा (हिसार), बनवारी ठेल, गांव मोखरा (रोहतक) आदि ने भी सांग की परम्परा को जीवित रखा। इसी शृंखला में रामकिशन व्यास के शिष्य पाल्लेराम, गांव खटकड़ (जींद) में भी अपने गुरू की परम्परा को आगे बढ़ाया। लखमीचन्द की प्रणाली में जो सांग मंचित हुए है वे उनके पुत्र तुलेराम और उनके शिष्य जहूर मीर के द्वारा किए गए हैं।

सांग की इस विकास प्रक्रिया ने हरियाणा की संस्कृति के विभिन्न पक्षों को उजागर किया है, लोक-कथाओं और पौराणिक आख्यानों, के माध्यम से इस परम्परा से लोगों को मनोरंजन और अपनी संस्कृति का ज्ञान भी प्राप्त हुआ। उन्हें अपनी सामाजिक और सांस्कृतिक परम्पराओं व मूल्यों को सुरक्षित रखने का प्रेरणा भी मिली। शिक्षा व समाज कल्याण के लिए लोगों को प्रेरित किया। समाजोन्मुखी कार्यों के लिए सांग को मान्यता मिली, दूसरी ओर क्षेत्रीय संस्कृति को भी यह संरक्षित रख पाया; इसके साथ-साथ यह समय के अनुरूप स्वस्थ मनोरंजन दे पाया। अधुनातन में वैज्ञानिक विकास के चलते मनोरंजन के साधनों का तेजी से विकास हुआ है जिसके चलते हुए परम्परागत साधनों के प्रति नई पीढ़ी उतनी रूचि नहीं ले रही। इसी कारण सांग जैसी परम्पराओं की समाज पर पकड़ कुछ कमजोर होती दिखाई दे रही है और धीरे-धीरे ऐसी विधाओं को संरक्षण देने की जरूरत महसूस की जा रही है। इसलिए सरकार समाज के प्रबुद्ध नागरिक व सांस्कृतिक कलाकारों का ये दायित्व बनता है कि इस कला को विलुप्त न होने दे एवं इस दिशा में सामूहिक तौर पर प्रयास किया जाए, इसके लिए जहां नए-नए विषयों का चयन किया जा सकता है। दूसरी ओर इसकी प्रस्तुति की विधा भी आवश्यकतानुरूप विकसित की जा सकती है। सांग का सरंक्षण केवल एक विधा का संरक्षण नहीं बल्कि सामाजिक मूल्यों, विरासत तथा हरियाणा के जन-जीवन को गहराई से समझने का एक प्रयास है।

हिन्दी विभाग, दयानन्द कॉलेज, हिसार-9467242972

अठ्ठारह सौ सत्तावन

किस्सा सदरूद्दीन मेवाती का

सहीराम

पात्र : नट तथा नटी। दो देहाती (बार-बार उन्हीं को दोहराया जा सकता है),एक ढिंढ़ोरची (दो देहातियों में एक हो सकता है या नट भी हो सकता है) और गानेवाले स्त्री-पुरूष।

(सभी संवाद तुकबंदी में हैं। उनकी अदायगी में काव्यात्मकता,लयात्मकता और नाटकीयता रहे तो ज्यादा बेहतर। गाने,दोहे, चौबोले, बहरेतवील आदि काव्यरूपों के गायन में स्त्री-पुरूष दोनों आवाजें रहें तो ज्यादा बेहतर। लोकधुनों के इस्तेमाल को प्राथमिकता मिले तो ज्यादा बेहतर।)

(नगाड़ा बजने के साथ नौटंकी शुरू होती है। मंच पर नट और नटी का प्रवेश।)

नट : लो नगाड़ा बजता है युद्ध का और ध्यान चाहूंगा आप सब जन प्रबुद्ध का। यह दुनिया आनी-जानी है। बात थोड़ी पुरानी है।

नटी : जरा भूली हुयी सी कहानी है। इसीलिए तो जरूर-जरूर सुनानी है।

दोहा

हुए डेढ़ सौ साल, वक्त की जम गयी भारी धूल।

पर जो हुए शहीद देश पर,कैसे उनको जाएं भूल।

नट : इसलिए सजनो आइए। सिर झुकाइए। और कीजिए याद उन वीरों को और बहादुरों को, जिन्होंने झेला था बंदूकों और तलवारों को। बर्छी और कटारों को।

नटी : अठारह सौ सत्तावन में जो लड़े विदेशी हुकुमत के खिलाफ, लड़े उसके जुल्म और अत्याचार के खिलाफ।

नट : तो फिर शुरू होता है किस्सा। लो बता दें उसका पहला हिस्सा।

चौबोला

बागी हो गयी फौज फिरंगी। देख के उसकी चाल दुरंगी।

आजादी की जल गयी ज्वाला। मेरठ में था खिंच गया पाला।

बागी पंहुच गए दिल्ली में,बादशाह से ऐसे बोला।

तू परजा का है रखवाला,अब छोड़ दे सारी तंगी।

नट : तो सजनो, जब बागियों ने जीत ली दिल्ली, तो फिरंगी भागा बनकर भीगी बिल्ली।

नटी : और दिल्ली के पास ही बसा है मेवात। तो आओ करलें उसकी बात।

नट : जब वीर मेवातियों ने फिरंगियों से किए दो-दो हाथ और दी उन्हें करारी मात।

समूहगान

है दिल्ली दिखणादे नै, बसा हुआ मेवात,

सुणो जी, बसा हुआ मेवात, रे सजनो, बसा हुआ मेवात।

आज उसी की याद करें, एक भूली-बिसरी बात,

सुणो जी, भूली-बिसरी बात, रे सजनो, भूली-बिसरी बात।

सूखी-पथरीली धरती यह, ज्यूं गरीब का गात,

सुणो जी, ज्यूं गरीब का गात,रे सजनो, ज्यों गरीब का गात।

इस धरती का ही किस्सा है, हुए डेढ़ सौ साल,

सुणो जी, हुए डेढ़ सौ साल,रे सजनो, हुए डेढ़ सौ साल।

सत्तावन में बणे मेवाती अंग्रेजों का काल,

सुणो जी, अंग्रेजों का काल, रे सजनो, अंग्रेजों का काल।

मार भगाया था गोरों को,किया हाल-बेहाल,

सुणो जी, किया हाल-बेहाल, रे सजनो, किया हाल-बेहाल।

आजाद करायी धरती अपनी,न लगान, न माल,

सुणो जी, न लगान, न माल,रे सजनो, न लगान न माल।

उन वीरों को करें याद जो, तज गए अपने प्राण,

सुणो जी, तज गए अपने प्राण,रे सजनो तज गए अपने प्राण।

निभायी आन-बान और शान।

नट : तो सजनो किस्सा यूं है कि जफर बादशाह को बिठाकर दिल्ली की गद्दी पर , बागी सिपाही पंहुच गए दिल्ली की चौहद्दी पर।

नटी : वैसे तो संख्या में तीन सौ ही थे बागी, पर जोश इतना कि जैसे अब है तकदीर हिंदुस्तान की जागी।

नट : चौहद्दी से आगे था गुडग़ांव, बस उठ गए बागियों के उसी तरफ पांव।

नटी : शामिल हुए बगावत में गांव के गांव।

नट : अब कोई परवाह नहीं,क्या धूप, क्या छांव।

नटी : जोश ऐसा था कि रूकते न थे पांव।

बहरेतवील

आगे बढ़ते जाएं बागी,थे उनके हौसले बुलंद इतने कि क्या कहने।

फोर्ड जिला कलेक्टर था, थी उसकी लाठ साहबी ऐसी क्या कहने।

बागियों को जब वह रोकने पंहुचा, तो उसे ऐसा पीटा क्या कहने।

पलवल होते मथुरा भागा वो, जान बचाकर वो ऐसे कि बस क्या कहने।

नट : तो सजनो, जोश जीत का था छाया, फिर वही किया जो मन भाया।

नटी : क्या किया, बताओ तो। कुछ हाल वहां का सुनाओ तो।

दोहा

आग लगा दी कलेक्टरी को और लिया खजाना लूट।

अब मेव बगावत में शामिल थे, मिल गयी पूरी छूट।

नट : और सजनो,देख फिरंगी को यूं हारता और दुम दबाकर भागता, तो लोगों को हुआ विश्वास कि उसे हराया जा सकता है और मुल्क से भगाया जा सकता है।

नटी : फिरंगी की ताकत की खुल गयी थी पोल। और फिर मेवात में बज गया आजादी का ढ़ोल।

नट : और रायसीना, मोहम्मदपुर, नूनाहेड़ा, हरियाहेड़ा, हरमथला आदि गांवों के लोग हो गए बगावत में शामिल।

चौबोला

दुश्मन से लडने् मेवाती। एकजुट हुए सभी देहाती।

कमान संभाली सदरूद्दीन ने,वो था किसान निपट देहाती।

फौज न फांटा,न हाथी घोड़ा। पर बाजी को ऐसा मोड़ा।

डर के मारे गोरा दौड़ा, छोडक़े उसकी धरती।

नट : डर के मारे गोरा दौड़ा, छोडक़े उसकी धरती?

नटी : हां-हां,छोड़ के उसकी धरती।

नट : ऐसे कैसे?

नटी : सुनो ऐसे।

गाना

मई महीना धूप तपै थी, दिल में ज्वाला जाग रही।

फेंक गुलामी का जुआ,मेवात की जनता जाग रही।

अमीर और उमरा फिर भी थे, खैरख्वाह अंग्रेजों के।

कस्बों में बैठे थे अब भी, खैरख्वाह अंग्रेजों के।

धाड़ जुटा ली सदरूद्दीन ने, धरकर धावा बोल दिया।

पिनगुआ पर करके कब्जा, उनको डावांडोल किया।

सोहना और तावड़ू जीता और पुन्हाना जीत लिया।

खानजादे नूंह के भी भागे,जीत सारा मेवात लिया।

नट : इस तरह सजनो मई के अंत तक जमना तक का सारा क्षेत्र हो गया आजाद और मेवात को कराकर आजाद, सदरूद्दीन जुट गया करने इलाके का प्रबंध, हो गया था सब कुछ एकदम चाक-चौबंद।

नटी : बस जयपुर तक पंहुच गयी यह खबर। राजा की लग गयी उस पर नजर। वहां मेजर एडन रेजीडेंट था। राजा उसका और वह राजा का पैट था। सो दबाने वह बगावत को, लेकर छः हजार सैनिक और तोपे चल पड़ा वह मेवात को।

बहरेतवील

कूच किया मेजर एडन ने, सब तोप तमंचे साथ लिए।

गांव-गांव में लड़े लड़ाके, जान की परवाह बिना किए।

भूल गया औसान फिरंगी, उसके हाथ के तोते उड़ा दिए।

लूट लिया सब तामझाम और नखरे सारे भुला दिए।

नटी : ऐसा क्या?

नट : हां, बिल्कुल ऐसा और आगे देखो उसने किया कैसा।

दोहा

गुस्से में पगलाया एडन,तोपों का मुंह खोल दिया।

बोल दिया हमला गांवों पर,उन्हें जलाकर राख किया।

नटी : तावडू और सोहना के बीच,उसने धरती को दिया खून से सींच।

नटी : कर डाले गांव अनेकों भस्म। निभायी थी एडन ने ऐसे ही फिरंगियों की रस्म।

नट : अरे रे, देखो लगी है,वहां कोई पंचायत।

नटी : अरे नहीं पंचायत नहीं। लडक़र लौटी है सदरूद्दीन की फौज। मिल बैठकर करते हैं रात में विचार-विमर्श ये रोज।

नट : सुनो क्या कहते हैं।

नटी : तब तक हम यहीं रुके रहते हैं।

एक देहाती : सुनो सदरू, बात हमारी। सोचो और करो तैयारी। सोहना में एडन ने डाल दिया है डेरा। जान बचाकर जो भागे थे, वही फिरंगी पंहुच गए वहां और जमा लिया है डेरा।

नट : एडन वहां रुका रहा तीन दिनों तक। यह बात पंहुची सभी जनों तक।

नटी : फिर एडन की फौज ने कूच किया पलवल को।

नट : पर जनता ऐसी भडक़ी थी कि मुश्किल हो गया पल को।

चौबोला

देख मौत को सामने गया कलेजा कांप।

हालत थी ऐसी जैसे कि सूंघ गया हो सांप।

सूखे पत्ते सा देखो, थर-थर गोरा कांप रहा।

हाल फिरंगी का ऐसा, कि करे बाप ही बाप।

नटी : जुल्म देख के एडन के और सुनकर जनता की ललकार।

नटी : राजपूत सैनिक बिगड़े और दी बागी हुंकार।

नट : कैसे?

नटी : देखो ऐसे।

एक देहाती : सुनो सदरू सरदार आपको हाल सुनाऊं। एडन की फौज में हुयी बगावत, और क्या-क्या मैं बतलाऊं।

दूसरा देहाती: शिवनाथ सिंह बन गया है बागी राजपूत सैनिकों का सरदार। अब नहीं उठाएंगे वे मेवातियों के खिलाफ हथियार।

नट : और एक रात शिवनाथ सिंह ने एडन पर,टूट के हमला बोल दिया।

नटी : जान तो बच गयी एडन की,पर हौसला उसका टूट गया।

नट : और जान बचाकर वो बेचारा वापस जयपुर को लौट गया।

नट : पर आगे मोर्चा और बड़ा था।

नटी : अब राजा अलवर आन खड़ा था।

गाना

देख के मेवों का रंग-ढ़ंग ये, राजा अलवर तड़प उठा।

मेवों में ऐसी क्या हिम्मत,लेकर के वो यह शपथ उठा।

कुचलूं एक-एक बागी को, दूंगा ऐसा सबक सिखाय।

सूली पर चढ़वा दूं सबको और कोल्हू में दूंगा पिरवाय।

फिरोजपुर झिरका की खातिर पंहुच गया था फिर लश्कर।

मेव न जाने लश्वर वश्कर,बस पीट दिया था वो कसकर।

पर राजा था मदहोश, उसे कुछ होश न आया।

किला बनाकर नौगावां में, गौरों को बुलवाया।

पर मेवों ने मिलकर, ऐसा उस पर वार किया।

टूट गए मनसूबे सारे, उन पर पानी फे र दिया।

बारह सौ सैनिक राजा के, गाजर मूली सा काट दिया।

फिरंगियों को पकड़-पकड़, खलिहानों में जोत दिया।

बागी मेवों के आगे राजा की, चली नहीं कोई पेश।

स्वर्ग सिधार गया जल्दी ही, उसे थी ऐसी पंहुची ठेस।

नट : दो-दो रजवाड़ों और अंग्रेजों के आगे वीर मेवाती खड़े रहे थे डटकर।

नटी : पर उधर दिल्ली में थी बाजी रही पलटकर।

नट : दिल्ली कब्जायी गौरों ने,जोर-जुगाड़ किया चोरों ने।

नटी : शहजादों को कत्ल किया और बनाया बादशाह को बंदी। वहां बगावत में छायी थी फिर तो एकदम मंदी।

नट : पर मेवाती थे बेखबर। लड़ने को उतने ही तत्पर।

नटी : दिन दो अक्टूबर का आया। कुचलने मेवात की बगावत जनरल शावर आया।

दोहा

फौज बहुत भारी शावर की, गोला-बारूद साथ लिए।

जात फिरंगी थी शातिर वो,उसने देशद्रोही साथ लिए।

नट : रायसीना था बागियों का गढ़।

नटी : गद्दारों ने किया इशारा,शावर आया था चढ़।

बहरेतवील

अंग्रेजों के पिट्ठू ऐसे, थे एक से एक बड़े गद्दार।

खबर फिरंगी को दे दी, तुम रायसीना पंहुचो सरकार।

यहां पर बागी जुट हुए हैं, एक -एक की लो खाल उतार।

फोर्ड कलेक्टर आया पलटके, था उसके सिर पर खून सवार।

नट : रायसीना में मेवों ने किया मुकाबला डटकर। मौत कलेक्टर की आयी थी। फोर्ड गिरा फिर कटकर।

दोहा

आपे में नहीं रहा फिरंगी,बर्बरता की हद लांघी।

गद्दारों को मिली जमीनें,अब तो थी उनकी चांदी।

चौबोला

थे वीर बहुत ही मेव मगर। फौज बहुत थी बड़ी मगर।

तोपें उगल रही थी आग। खून से खेल रहे थे फाग।

कितनों ने ही जान लड़ाई। मेवों की नहीं पार बसाई।

कब्जा हुआ रायसीना पर गोरा था बन गया कसाई।

नट : इलाका पूरा कर कब्जे में सुना दिया फरमान।

नटी : क्या?

नट : लो तुम भी सुनो लगाकर ध्यान।

एक देहाती : सुनो तुम डोंडी की आवाज।

दूसरा देहाती : सुनो-सुनो अब क्या कहता है राज।

ढ़िंढोरची : सुनो-सुनो, लोगो सुनो, खूब लगाकर ध्यान। जो गोरों की जो मदद करी तो

पाओगे ईनाम। पर रहे जो रायसीना के मददगार, वो मेव करेंगे अब बेगार।

नट : नूनाहेड़ा, हरियाहेड़ा, हरमथला,मोहम्मदपुर, सापंली और नंगली के मेवों को मिला यही ईनाम।

नटी : जमीन उनकी जब्त हुयी और फांसी का फरमान।

दोहा

आजादी की जंग लड़ी तो पाया यह ईनाम।

बने मुजारे गद्दारों के,भोगा बस अपमान।

नट : फिर तो रायसीना जैसी घटनाएं चारों तरफ लगी घटने।

नटी : मुखबिर बता रहे गौरों को मेव नहीं पीछे हटने।

एक देहाती : ए भाई सदरू सुनो हमारी बात, लगाकर कान, इधर दो ध्यान।

दूसरा देहाती: घासेड़ा में, कासन और बारूटा में मेव हजारों जुटगे। हुए लैस हथियारों से और आके मैदान में डटगे।

नट : 8 नवंबर को कुमाऊं रेजिमेंट और टोहाणा घुड़सवारों का

दस्ता पंहुच गया मेवात।

नटी : पंहुच फिरंगी ने वहां पर एक बार दिखायी फिर से अपनी जात।

नट: लेफ्टिनेंट रांगटन था घुड़सवारों का सरदार।

नटी : और लेफ्टिनेंट ग्रांट था कुमाऊं रेजिमेंट का सरदार।

नट : थे दोनों ही एक से एक बदकार।

नटी: लक्ष्य एक ही था दोनों का,हो मेवों की हार।

नट : अब आगे का हाल भी बताओ।

नटी: तो लो कान लगाओ।

गाना

आजादी का रंग चढ़ा था, मेव न मानें हार।
फौजों के आगे थे, वो मर मिटने को तैयार।
गांव-गांव रणभूमि था, लगी हुयी थी बाजी।
पीछे हटने को मेवों में, नहीं कोई था राजी।
कहर फिरंगी का टूटा था, रहम की छोड़ो बात।
मरघट बना दिया था उसने,ये प्यारा मेवात।
चारों तरफ तबाही थी और मच गया हाहाकार।
आज फिरंगी बना हुआ था रावण का अवतार।

नट : रावण का अवतार,जात थी राक्षसी।

नटी: माफी उसने नहीं किसी को भी बख्शी।

बहरेतवील

गोला और बारूद का ऐसा खेल फिरंगी खेल रहा।
मचा तबाही गांव-गांव में आग से था वो खेल रहा।
फौज से लड़ते रहे किसान,यह जोड़ बहुत बेमेल रहा।
ऐसे उजड़े गांव और बस्ती, न तिल और न तेल रहा।

नट : पहले बारूटा और फिर कासन को तबाह किया।

नटी: घासेड़ा को भी गोरों ने फिर बारूद से स्याह किया।

नट : घासेड़ा में हो गए डेढ़ सौ मेव शहीद।

चौबोला

नंबर आया नूंह का और खैरा था गद्दार।
गोरों को कर दी खबर,आओ जी सरकार।
बागियों की मैं, पहचान करा दूंगा।
जीत कराऊं आपकी, शान बढ़ा दूंगा।

नट : नूंह, अडबर और शाहपुर नंगली से गोरों ने बागी एक-एक पकड़ लिया था।

नटी: और पेड़ों पर उनको फांसी चढ़ा दिया था।

नट : 52 मेव चढ़े फांसी पर, नूंह का था यह हाल।

नटी: ऐसा ही था लोगो, इन अंग्रेजों का जाल।

नट : आगे लगी खबर कि रूपड़ाका में जुटे हैं मेव कई हजार।

नटी: अंग्रेजों के खबरी भी तो बैठे थे तैयार।

नट : अंग्रेजों ने हमला बोला।

नटी : और तोपों का था मुंह खोला।

नट : सैकड़ों शहीद हुए मेवाती।

नटी: थे भोले और निपट देहाती।

नट : आज भी उनकी याद सताती।

दोहा

रूपड़ाका की लड़ाई को हम याद आज भी करते है।
शहीद मीनार निशानी उसकी,नमन हजारों करते हैं।

नट : अब आगे का सुन लो हाल।

नटी: सदरूद्दीन बन गया था अंग्रेजों का काल।

गाना

सदरूद्दीन की अगुवाई में फिर से एक हुए मेवाती।
पिनगुआ पर बोला हमला,टूट पड़े सारे देहाती।
फौज से फौज मिली गोरों की,ताकत हुयी सवायी।
शहीद हुआ सदरू का बेटा,चोट कलेजे खायी।
पर हार नहीं मानी सदरू ने,अपना सब कुछ वार दिया।
वहां से आगे बढके उसने, महू में मोर्चा लगा दिया।
तीन तरफ से घेर महू को,गोरों ने दी आग लगाय।
कत्लेआम किया बैरी ने, लिया मोर्चा फतह कराय।

नट : आखिरी लड़ाई थी यह मेवात की। बस खुल गयी पोल फिरंगी जात की।

नटी: जिन गांवों ने बागियों का दिया था साथ। उन्हें कर दिया नेस्तनाबूद और बर्बाद।

नट : शाहपुर खेड़ला, चिन्तौड़ा, गूजर नांगल, वहरीपुर खेड़ी थे ऐसे ही गांव अभागे।

नटी: पिनगुआ की पट्टी मेवान को किया जलाकर खाक।

नट : और आसपास के गांवों को भी किया जलाकर राख।

नटी: साथ दिया सदरू का जिन चौधरियों और नंबरदारों ने।

नट : उनकी जमीनें नीलाम करायी हरकारों ने।

नटी: खिड़ली, जलालपुर, देवला, शिकराव, घाघस खेड़ी और दोहा की छीनी जमीनें।

नट : और जमीनें ये मिली उन्हें, जो थे गद्दार और कमीने।

नटी : वीर मेवों में किसी को मिली फांसी और किसी को काला पानी।

नट : यही थी लोगो मेवात की भी और सदरूद्दीन की भी कहानी।

दोहाः

सुनी कहानी आपने रखना इसको याद।
भूल शहीदों को न जाएं, रखें हमेशा याद।

सम्पर्क : 9990764810

उमंग स्कूल – एक ऐसा सपना जिसका तसव्वुर करने के लिए साहस चाहिए....

-विरेन्द्र सरोहा

प्रतियोगिता की दौड़ में जकड़े और अंक हासिल करने के बचपन विरोधी माहौल में एक ऐसा स्कूल जिसमें परीक्षाएं नहीं होंगी, खेल खेल के लिए होंगे, मेल-जोल के लिए होंगे, खुशी के लिए होंगे प्रतियोगिता के लिए नहीं, जहां बच्चों को कड़े अनुशासन के डरावने साये से दूर रखा जाएगा, जहां बच्चे अपनी घरेलू भाषा में भी बात कर सकेंगे, जहां स्कूल के निर्णयों में बच्चे भी शामिल होंगे, जहां पढ़ाई के अलावा भी बहुत कुछ सीखने पर जोर दिया जाएगा, इस तरह का स्कूल एक ऐसा सुनहरा सपना है, जिसे देखते तो सभी है किंतु उसकी हिमायत कोई कोई ही कर पाता है। ऐसे में उमंग जैसे स्कूल का सपना देखना साहस की बात है।

उमंग एक ऐसा स्कूल जहां बच्चों के चेहरों पर खुशी रहती है

जब उमंग स्कूल (गन्नौर, हरियाणा) की शुरूआत हुई तो मुझे इस बात की सबसे ज्यादा खुशी थी कि स्कूल के बच्चों में स्कूल में आने को लेकर एक अलग सा उत्साह था, बच्चों को ये रहता था कि कब सुबह हो, कब आठ बजे और कब हम इस अनोखे स्कूल की भयमुक्त दुनिया में प्रवेश करें। शुरूआती दिनों में ज्यादा अचरज तब होता था जब ज्यादातर बच्चे छुट्टी होने के बावजूद घर नहीं जाना चाहते थे। मुझे याद है पिछले साल अप्रैल के महीने में अक्सर बच्चे हमसे कहते भईया प्लीज कंचन जी से कहिये ना कि वो ऑटो वाले को एक घंटा लेट आने के लिए कहे । मतलब ढाई बजे स्कूल की छोटी होती और ऑटो वाला साथी भी ठीक टाईम पर आश्रम के द्वार पर पहुंच जाता लेकिन बच्चे चाहते थे कि वे साढ़े तीन बजे तक स्कूल में रहें।

मैं बचपन से यही सुनता आया था कि बच्चों को स्कूल की एक ही घंटी सबसे प्यारी लगती है और वो होती है पूरी छुट्टी वाली घंटी, जब बच्चे दौड़ लगाते हुए पूरी स्पीड से स्कूल के गेट से बाहर भागते हैं। लेकिन उमंग स्कूल में जब बच्चों को स्कूल से ना जाने की जिद्द करते हुए पाया तो दिल को तसल्ली सी हुई कि हां हम एक हद तक बच्चों के मन से स्कूल के प्रति डर दूर कर पाने में कुछ कामयाब हुए हैं।

शुरूआती दिनों में एक अलग सी बात ये भी हुई कि बच्चे स्कूल तो आ जाते थे लेकिन बस पढना नहीं चाहते थे। वे कुछ भी करें बस पढ़ाई नहीं। कुछ लड़कियां तो बस सारा दिन अपने टीचर का हाथ पकड़े पकड़े घूमना चाहती थी, घूमती थी। कुछ खेलना चाहती थी, कुछ लड़कियां जी भर कर डांस कर लेना चाहती थी और पहली कक्षा की पूर्णिमा का तो बस एक ही काम था कि स्कूल आते ही जामुन के पेड़ पर चढ़ जाना और फिर उतरने का नाम ना लेना। टीचर और दूसरे बच्चे उससे नीचे आने की मिन्नतें करते रहते लेकिन पूर्णिमा का जब मन करता तब नीचे आती। वहीं कुछ बच्चों ने स्कूल के पहले महीने में खूब सारे कागज रंगीन किए, एक से एक बढिया ड्राईंग बच्चे बनाते और अपने टीचर को दिखाते। उन्हें इसी बात की बहुत खुशी थी कि उनके बनाए हुए चित्रों में किसी ने कोई कमी नहीं निकाली बल्कि इसके बदले उन्हें खूब शाबाशी मिलती और चित्र की हमेशा प्रंशसा ही होती, इससे उन्हें ओर ज्यादा ड्राईंग बनाने का प्रोत्साहन भी मिलता। बच्चों को तब और भी ज्यादा खुशी मिलती जब उनके बनाए चित्रों को स्कूल के नोटिस बोर्डों पर लगा दिया जाता, तो बच्चे अक्सर अपने ही बनाए चित्रों को देर तक देखते रहते।

मैंने एक दिन मेरे चार साल के बेटे से पूछा कि बच्चे स्कूल क्यों जाते हैं तो उसने खेलते-खेलते ही तुरंत जवाब दिया कि मम्मी जिद्द करती है इसलिए बच्चे स्कूल जाते हैं। एक बार तो मुझे हंसी आई लेकिन फिर लगा कि मिकुल ठीक ही कह रहा है। क्योंकि बच्चों को तो पता ही नहीं है कि वो स्कूल क्यों जा रहे हैं। मुझे तो लगता है कि शायद ज्यादातर अभिभावकों को भी ठीक से नहीं मालूम वे अपने बच्चों को स्कूल क्यों भेज रहे हैं।

मुझे धीरे धीरे ये सब समझ आने लगा था कि क्यों बच्चे सारा दिन अपने टीचर का हाथ पकड़े उनके साथ घूमना चाहते है? क्यों सारा दिन उन्हें छूना या उन्हें आलिंगन करना चाहते है या फिर डांस, ड्राईंग, खेल कूद के प्रति उनका इतना लगाव क्यूं था। बच्चे अपने मन की सब कर लेना चाहते थे। इन सवालों के जवाब मुझे तब मिले जब स्कूल के दूसरे महीने बच्चों ने कक्षाओं में ज्यादा देर के लिए बैठना शुरू किया। बच्चों और अध्यापकों में बैठ कर खूब सारी बातें होने लगी, घर की बाहर की, पुराने स्कूल की।

बच्चों ने अपने नए स्कूल की

तुलना अपने पुराने स्कूलों से करनी शुरू की और जब बच्चों ने अपने पुराने स्कूल के और अध्यापकों के बारे में अपने अनुभव सांझा करना शुरू किए तो कुछ बच्चों के अनुभव सुन कर तो रोंगटे खड़े हो जाते थे कि जिन स्कूलों में ये पढ़ कर आए है, वहां इनके साथ किस तरह का बर्ताव होता था।

जहां टीचर बच्चों को हमेशा छड़ी से ही छूना जानते थे या फिर बच्चों ने अपने टीचर के स्पर्श का एहसास अपने गालों पर तमाचों, चांटों के रुप में ही किया था या टीचर उन्हें तभी छूते थे जब उनके कान उमेठने होते थे या सबक सिखाने के लिए कनपटी के बाल खींचने होते थे। टीचर मतलब डर..., अनुशासन मतलब डंडा.., सवाल पूछना मतलब आफत मोल लेना।

ऐसे में बच्चों को अगर एक ऐसा स्कूल मिले, जहां टीचर को दोस्त की तरह छूआ जा सकता है, जहां टीचर का प्यार मिलता हो

बच्चों को उमंग स्कूल में अपने टीचर के साथ मस्ती करते हुए देखता था तो हमेशा अपने स्कूल की याद आती। उन सभी टीचरों की याद आती, जो अक्सर बिना बात के ही हमें मारते थे। टीचर का रौब और दबदबा बच्चों पर बना रहे बस लिए ही मारते थे। कुछ टीचर तो हमें सिर्फ इसलिए भी मारते थे, कि हमारे कपड़े अच्छे नहीं थे, हमारी जाति अच्छी नहीं थी, हमारी शक्लें अच्छी नहीं थी। तब लगता कि काश हमें भी उमंग जैसा स्कूल मिला होता, काश कि हमें भी ऐसे ही प्यार करने वाले टीचर मिले होते।

बच्चों को पुराने स्कूलों में शायद कभी अपने मन का कुछ नहीं करने दिया गया होगा। इसलिए उमंग के माहौल में आजादी का अहसास होते ही बच्चों ने वो सब कुछ कर लेना चाहा, जो अभी तक वो नहीं कर पाए थे।

मुझे जब वक्त मिलता तो मैं बच्चों के पास बैठ जाता उनके पुराने स्कूलों के किस्से कहानियां सुनता। मजेदार बात ये होती कि एक तो सब बच्चे उचक-उचक कर अपनी बात कहने को आतुर होते थे और दूसरा मजेदार मामला ये कि जब कोई लडक़ी अपनी पिटाई की कोई घटना या तरीका बता रही होती थी तभी किसी दूसरे स्कूल में पढ़ी हुई लडकी भी उसकी बात में शामिल हो जाती। उनके स्कूल भले ही अलग अलग थे पर पिटने के अनुभव लगभग एक जैसे ही होते थे। मेरे लिए मुश्किल तब होती जब लड़कियां ये घटनाएं सुना रही होती थी तो मेरी हालत होती कि शायद अब आंख से आंसू टपक पड़ें और ये लड़कियां हंसते हंसते खूब ठहाके लगाती हुई सब बात कह जाती थी।

चिटियां कलाइयां वे ..

उमंग स्कूल में जब धीरे धीरे दिन बीतने लगे तो घटनाएं और घटनाक्रम भी बदलने लगे....

उन दिनों एक फिल्मी गाना चिटियां कलाइयां वे.. बड़े जोर शोर से चारों तरफ बजता था। हमारे स्कूल में भी बजने लगा और लड़कियां साऊंड सिस्टम चला कर इस पर अक्सर डांस करती थी। गाने तो ओर भी बहुत से थे जिन पर बच्चे डांस करते थे लेकिन इस गाने को लेकर एक दिन स्कूल में अज़ीब सी घटना हुई। स्कूल के हॉल में ये गाना चल रहा था और कुछ लड़कियां इस पर पूरी मस्ती से डांस कर रही थी। तभी एक टीचर ने देखा कि कुछ लड़कियां अलग सी खड़ी है और उनके चेहरे के भाव कुछ अलग से हैं। टीचर को ये भी पता था कि ये लड़कियां भी अच्छा डांस करती हैं लेकिन आज मामला कुछ गड़बड़ है। टीचर ने जा कर उनसे पूछा कि तुम क्यों नहीं डांस कर रही हो ...? तो जो जवाब उन लड़कियों ने दिया वो हम सब को चिंतित करने वाला था। लड़कियों ने कहा कि हम नी इस गाने पे डांस करती..., हमारी कलाइयां कहां है चिटियां..? हम तो काली हैँ.. और फिर उन्होंने अपनी कलाइयां टीचर के सामने फैला दी।

असल में वो लड़कियां सांवले रंग की थी और जो लड़कियां डांस कर रही थी उनका रंग उनके मुकाबले थोड़ा गोरा था। शायद उनके बीच इस फर्क को लेकर कुछ कहा सुनी हुई हो जिसके चलते ये चिट्टी कलाई और संवाली कलाई वालों के दो ग्रुप बन गए हैं। टीचर ने इस बात को नज़रअंदाज नहीं किया और अपने अन्य अध्यापक साथियों से इस बारे में बात की। तो जी बाद में पता चला कि हमारे बच्चों में वो सभी गलत समझदारियां थी जो इस समाज में हैं। बच्चे सिर्फ स्किन कलर या गोरे काले का ही भेद नहीं करते थे बल्कि जाति और धर्म के आधार पर भी एक दूसरे पर ताने कस देते थे। हालांकि उमंग में ज्यादातर बच्चे सामान्य गरीब परिवारों से ही आते थे, तब भी जिन परिवारों की लड़कियां बाल संवार कर, चोटी वगैरह सलीके से करके आती थी उनमें अनसुलझे बालों वाली लड़कियों के प्रति ज्यादा अपनापन नजर नहीं आता था। उमंग स्कूल के अध्यापकों ने इस विषय पर बात की और तय किया कि अब समय है कि हम इन विषयों पर बच्चों से बात करें। लेकिन सीधे-सीधे इन्हीं मुद्दों को उठाएंगे तो वो कोरा भाषणबाजी जैसा ही लगेगा इसलिए कुछ खास तरीके से इस पर काम करने की

योजना बनाई गई।

बच्चों से पहले तो ये पता लगाने की कोशिश की गई कि बच्चे किस तरह से एक दूसरे को जाति, धर्म और रंग भेद के आधार पर तंग करते हैं या फर्क करते हैं। तो पता चला जी कि लड़कियां धर्म के आधार पर एक दूसरे को कुछ कुछ बोल देती थी, जाति के आधार पर लड़कियों के ग्रुप बन गए थे, थोड़ा साफ से कपड़े पहनने वाली लड़कियों ने अलग से अपना एक ग्रुप बना लिया था। वहीं ढकौत समुदाय से आने वाली लड़कियां ज्यादातर अपने मुहल्ले की लड़कियों के साथ ही खेलती थी और खाना खाती थी। ये भी पता चला कि ऑटो में आने वाली लड़कियों ने कौन कहां बैठेगा इसके आधार पर भी जाति आधारित ग्रुप से बना लिए थे। हालांकि ये सभी घटनाएं स्वाभाविक ही थी लेकिन ये भी यहां कहना जरूरी है कि ये बहुत शुरूआती स्तर पर देखने सुनने को मिली, कभी किसी लडकी ने मुखर तरीके से किसी को कुछ गलत कहा हो या कोई बड़ा हंगामा हुआ हो, ऐसी घटना हमारे सामने नहीं आई। लेकिन अध्यापकों की राय थी कि हमें हमारे बच्चों को इन सामाजिक कुरीतियों से बचाना चाहिए और इसे गंभीरता से लेते हुए इन बुरे सामाजिक प्रभावों को कम करने के प्रयास करने चाहिए।

तय किया गया कि इस विषय पर बच्चों के साथ कुछ वर्कशॉप की जाएगी या कहें कि कुछ थियेटर एक्टिविटी के जरीये इन विषयों पर बच्चों की समझदारी बढ़ाने का प्रयास किया जाएगा।

हमने एक दिन उमंग स्कूल में वर्कशॉप रखी। हम सब एक कमरे में बैठे गए (इसमें सात साल से छोटे बच्चे शामिल नहीं थे) हमने बिना किसी खास विषय पर केंद्रित किए बच्चों से बातचीत शुरू की और उनसे सवाल किए कि उन्हें अपने आस-पास के माहौल में क्या-क्या बुरा लगता है। फिर बातचीत को बंद करके हम एक खेल खेलने लगे। हमारी इस खेल का नाम था पावर गेम।

खेल कुछ यूं था कि हमने दो दो लड़कियों के ग्रुप बना दिए (इस खेल में सभी टीचर भी शामिल थे)। ग्रुप बनाने के बाद ग्रुप में शामिल दो लड़कियों में से एक को ए और दूसरे को बी बना दिया गया। अब करना ये था कि ए अपने हाथ की हथेली को बी के सामने करेगा और बी अपने दोनों हाथ पीछे बांधे हुए अपना चेहरा ए की हथेली से लगभग एक फुट की दूरी पर रखेगा। मगर शर्त ये थी कि जहां जहां ए की हथेली जाएगी बी को अपना चेहरा उसके सामने एक फुट की दूरी पर ही रखना ही

पड़ेगा। हुआ ये कि धीरे धीरे बच्चे इस गेम में मजे करने लगे। लेकिन धीरे-धीरे खेल और ज्यादा मुश्किल होने लगा और ए ने बी को तंग करना शुरू कर दिया। यानी ए बी के मजे लेने लगा और उसे अपनी हथेली के इशारों पर नचाने लगा। जब ए ने बी को खूब तंग कर लिया तो हमने गेम को बंद किया और फिर दोनों के काम एक दूसरे से बदल दिए। मतलब अब बी की हथेली थी और ए का चेहरा। तो अब बी ने ए से अपना पूरा बदला लिया और उसे उतना ही तंग किया।

जब बच्चे पूरी तरह से खेल का आंनद ले रहे थे तो अचानक हमने बोलना शुरू किया कि ये इस दुनिया का, हमारे समाज का पावर गेम है। जिसके पास पावर है वो दूसरे को ठीक इसी तरह नचाता है, जैसे अब हथेली वाली लडक़ी चेहरे वाली लडक़ी को नचा रही है। खेल के दौरान ही हमने बच्चों से सवाल किया कि उन्हें ये पावर गेम अपने घर में, मुहल्ले में, स्कूल में, समाज में, दुनिया में कहां कहां नजर आती है..?

अब खेल बंद किया जा चुका था सब अपनी-अपनी जगह बैठ गए थे और चेहरों पर एक अजीब सी उदासी छा गई थी। फिर धीरे धीरे बच्चों ने बोलना शुरू किया। एक लडक़ी ने बताया कि मेरे पापा सारा दिन शराब पीते है और शाम को आकर मां को पीटते है, हम बच्चों को भी पीटते है। दूसरी लडक़ी ने कहा कि लडक़ा-लडक़ी होने पर भी पावर का इस्तेमाल किया जाता है। घर में मैं सबसे छोटी हूं और मेरा भाई बड़ा है। वो सारा दिन घर के बाहर रहता है, खेलता है और घर का कोई काम नहीं करता। जबकि मैं घर का सारा काम करती हूं झाड़ू-पोंचा, बर्तन, कपड़े सब करती हूं लेकिन मुझे मेरी मर्जी से कभी बाहर नहीं जाने दिया जाता। मैं अपनी मर्जी से गली में नहीं खेल सकती। और भाई जब चाहे किसी भी बात पर मुझे मार देता है, पापा भी मारते हैं। मैं उनको खाना डाल के ना दूं तो मारते हैं, उनके सामने से झूठे बर्तन ना उठाऊं तो मारते हैं और अगर स्कूल से लेट हो जाऊं तो भी पिटाई हो जाती है। जो लडक़ी ये सब बता रही थी, उसकी आंखों में ये सारे सवाल भी थे कि ऐसा क्यूं होता है, मैं लडक़ी हूं और मेरी मां भी लडक़ी है तो इसमें ऐसा क्या है कि सब काम हमें ही करने पड़ते है और भाई पापा बिना कुछ किए भी हम पर अपनी पावर का इस्तेमाल करते हैं। फिर उसने थोड़ा अटक कर कहा कि वैसे पावर का इस्तेमाल तो मेरे पापा पर भी होता है, मेरे ताऊ जी कभी भी मेरे पापा को पीट देते है। हालांकि बोल एक लडकी रही थी किंतु ये सवाल वहां मौजूद सभी लडकियों के थे।

इसके बाद तो जैसे सब बच्चे अपनी अपनी बारी का इंतजार कर रहे थे कि कब उनकी बारी आए और वो अपनी बात बोले। धीरे-धीरे लड़कियों ने घर के

बाद अपने मोहल्ले में पावर गेम को दिखाया और कुछ लड़कियां ने तो जींस ना पहनने देना, ज्यादा ना पढ़ाना, जल्दी शादी कर देने जैसे मुद्दों का का पावर गेम भी समझाने का प्रयास किया।

हमने कुछ देर बातचीत का सिलसिला जारी रखा और फिर एक दो छोटी-छोटी गेम के बाद एक नई गेम शुरू की। हमने सभी लड़कियों को एक-एक नींबू दे दिए, जो पहले से मंगवा लिए थे और कहा कि इस नींबू पर कोई भी एक ऐसा निशान बनाओ, अलग सा कि अगर इन सभी नींबुओ को मिला भी दिया जाए, सभी को एक साथ किसी टोकरी में रख दिया जाए तो तुम अपना नींबू झट से पहचान लो। लड़कियों के चेहरों पर अगले ही पल एक अजीब सी खुशी और आत्मविश्वास था कि हम झट से अपना नींबू पहचान लेंगी।

चलो स्टार्ट....,

बस हमने इतना भर कहा और सभी लड़किया अपने नींबू पर निशान बनाने में जुट गई। सभी कुछ ना कुछ अलग सा बना देना चाहती थी। बीच बीच में वे ये भी देख लेती कि मेरे जैसे निशान कोई ओर तो नहीं बना रहा है। कुछ लड़कियों ने पैन से, कुछ ने स्कैच से कुछ कुछ लिख दिया। एक दो ने तो नींबू के उपरी भाग को खुरच कर कुछ कलाकारी भी कर दी थी। जब सबने अपने निशान बना दिए तो उन्हें इस बात का पूरा यकीन था कि वे तो अपना नींबू पहचान ही लेंगी। हमने एक टोकरी में सारे नींबू इकट्टे किए और कुछ देर के लिए बाहर भिजवा दिए।

इसके बाद भी कुछ कुछ बातें चलती रही। जब पांच मिनट हो गए तो बच्चों ने कह ही दिया कि भईया नींबू मंगवाओ भी अब। उनकी उत्सुकता को देखते हुए कुछ देर बाद हमने नींबुओं की टोकरी मंगवा ली। अभी नींबुओं वाली टोकरी एक टीचर के सिर पर ही थी कि बच्चे जल्द से जल्द उसे देख लेना चाहते थे और अपना नींबू सबसे पहले पहचान कर उठा लेने के लिए आतुर थे। लेकिन उन्हें कह दिया गया था कि टोकरी तभी नीचे रखी जाएगी जब सब शांत हो कर एक दायरे में बैठ जायेंगे और पहले वही लडक़ी आएगी, जिसे बुलाया जाएगा, सभी के द्वारा एक साथ नींबू छूने पर पाबंदी लगा दी गई।

अब जब टोकरी गोल दायरे में सब के बीच रखी गई तो सब लड़कियों के चेहरे देखने वाले थे। सभी के चेहरों पर हैरानी के भाव आ जा रहे थे। बच्चे हैरान थे क्योंकि उन सभी नींबुओं का छिलका या कहें कि ऊपरी परत, जिस पर बच्चों ने अपने निशान बनाए थे उसे उतारा जा चुका था। अभी उन्हें समझ नहीं आ रहा था कि ऐसा क्यूं किया गया। सभी सोच रही थीं कि अब हम कैसे पहचानें कि मेरा नींबू कौन सा था। अब तो ये सभी एक जैसे से ही दिख रहे हैं।

तभी उनसे कहा गया कि अपनी आंखें बंद करें और सोचे कि जिन आधारों पर हम अक्सर एक दूसरे से भेदभाव करते हैं क्या वो मात्र ऊपरी निशान नहीं है। अलग जातियां, धर्म, गोरा, काला, अमीर, गरीब आदि आदि, जिन भी कारणों से हम एक दूसरे से सामान्य व्यवहार नहीं करते, क्या ये सब ऊपरी मामला नहीं है और अंदर से हम सब एक जैसे ही हैं, जैसे ये नींबू है अभी हमारे सामने, जिन पर अलग-अलग पहचान के लिए निशान बना दिए गए थे हमारे द्वारा। क्या ये जात-मजहब के निशान भी सभी बाहरी निशान नहीं है जो हमारे समाज में लोगों ने ही बना दिए है इंसानों पर और क्या हमें इनके आधार पर एक दूसरे से भेदभाव करना चाहिए...? क्या ये सही...? क्या ये सही है कि हम किसी के साथ सिर्फ इसलिए ना खेलें कि वो किसी दूसरे धर्म को मानने वाले परिवार में पैदा हुई है या किसी के साथ हम इसलिए खाना नहीं खाते कि इस समाज में उसकी जाति को हमारी जाति से छोटा माना जाता है। अच्छा ये बताएं कि क्या हम या कोई भी ये तय कर सकता है कि वो किस धर्म या जाति में पैदा होगा, या उसकी चमड़ी का रंग गोरा होगा या काला ...? इसी तरह के ओर भी बहुत से सवाल लगातार बातचीत का हिस्सा बनते गए।

अब लड़कियों के बोलने की बारी थी। कुछ देर कमरे में खामोशी छाई रही। फिर गोल दायरे में एक एक लडकी खड़ी हुई और बोली कि मुझे कुछ बोलना है। वो खड़ी हुई और अपनी उंगली से एक लडक़ी की तरफ इशारा करते हुए बोली कि मैंने एक दिन उसे --ऐ काली सी-- बोला था...मैं उससे माफी मांगना चाहती हूं। उसकी आंखें नम थी, आंसू बस छलकने ही वाले थे। तभी वो दूसरी लडक़ी भी खड़ी हो गई और दोनों एक दूसरे के पास गई, कुछ पल भर के लिए दोनों ने बिना बोले एक दूसरे को देखा और फिर दोनों ने एक दूसरे को गले लगा लिया...मैं सच कहूं तो मेरे लिए ये नजारा अद्भुत था, एक ऐसा पल था जब मैं उमंग के प्रयासों को सफल होते हुए देख रहा था।

मैं इस घटना को उमंग स्कूल के नारे - शिक्षा एक बेहतर समाज के लिए - से जोडक़र देख पा रहा था। साथ ही ये भी जेहन में आ रहा था कि कैसे शहर के बड़े-बड़े स्कूलों में नंबरों की दौड़ में बच्चों को इन अद्‌भुत मानवीय नजारों से महरूम रखा जाता है। स्कूल चलाने वाले क्यूं नहीं समझते कि बच्चों में ये समझदारियां विकसित करना भी शिक्षा का अहम हिस्सा है।

खैर..कमरे का माहौल एक दम शांत था। लड़कियां गुमसुम सी बैठी थी कि तभी एक अन्य लडकी खड़ी हुई और उसने एक लडकी की तरफ इशारा करते हुए कहा कि मैं इसे कई बार मुसल्ली कहती थी, जो गलत है? मुस्लिम लडक़ी के चेहरे पर एक मुस्कान उभर आई। ...और फिर वही हुआ जिसकी हमें उम्मीद थी यानी दोनों ने एक दूसरे को गले लगा लिया ...। उसके बाद अपनी अपनी गलतियां बताने, गले लगने, खेद प्रकट करने का ये दौर कुछ देर तक यूं ही चलता रहा। हालांकि कुछ ऐसी लड़कियां भी थी, जिन्होंने किसी को जाति के आधार पर अपने साथ खेलने से मना कर दिया था, लेकिन अभी वे अपनी बात कहने की हिम्मत नहीं कर पा रही थी और उन्होंने ना तो अपनी बात बताई और ना ही उन लड़कियों को गले लगाने या माफी-वाफी का कोई सीन किया। हमने बच्चों के इस भाईचारे में ना ही कोई अपना सुझाव दिया और ना ही उन्हें कुछ करने से रोका या कुछ करने के लिए कहा। फिर हमने इस पूरे खेल को एक फिल्मी गीत के साथ खत्म किया, जो गीत हम सब अक्सर स्कूल में गाते थे।

कहती हैं ये वादियां, बदलेगा मौसम..
ना कोई परवाह है, खुशियां हो या गम...
आंधियों से खेलेंगे, दर्द सारे झेलेंगे...
यूं ही कट जाएगा सफर साथ चलने से....
के मंजिल आएगी नजर साथ चलने से...

इस वर्कशॉप के बाद स्कूल का माहौल हमें बदला बदला सा नजर आया...अब खेलने वालों का ग्रुप बड़ा बनने लगा था...खाना खाने के लिए एक-दूसरे का आमंत्रित किया जाने लगा था ...।

सम्पर्क - 9315139936

आजादी के विचार पक्ष को जानना होगा

प्रो. जगमोहन

28 जुलाई 2016 को शहीद उधम सिंह राजकीय महाविद्यालय मटक माजरी में 'स्वतंत्रता आंदोलन और उधम सिंह' विषय पर एक सेमिनार का आयोजन किया गया। यह सेमिनार 'देस हरियाणा' पत्रिका, इतिहास एवं हिन्दी विभाग के संयुक्त तत्वाधान में हुआ। इस अवसर पर शहीद भगतसिंह के भानजे प्रो. जगमोहन सिंह ने कहा कि आजदी के 70 वर्ष बाद भी शहीदों के सपने अधूरे हैं। जनता की मूलभूत आवश्यकताएं पूरी नहीं हुई हैं। लंबे समय से हमारा लोकतंत्र पब्लिक की बजाए पूंजी को तरजीह दे रहा है। जनता लगातार साम्प्रदायिक और जातिगत संकीर्णताओं की जकड़न में उलझती जा रही है। हमें शहीदों के संघर्षों एवं विचारों से प्रेरणा लेने की आवश्यकता है। क्रांतिकारी शहीद उधम सिंह का जीवन हमारे लिए एक मिसाल है। 2 अप्रैल, 1940 को ओल्ड वेरी कोर्ट में न्यायमूर्ति सर सेरिल एटिकिन्सन की अदालत में कहा कि मेरे जीवन का लक्ष्य क्रांति है, जो समानता, स्वतंत्रता और बन्धुत्व की भावना से ओतप्रोत हो। उन्होंने कोर्ट में अपना नाम मोहम्मद सिंहआजाद बताया। वे हिन्दुस्तानी दर्शन के सच्चे वाहक थे तथा कौमी एकता के पक्के हिमायती। प्रो. जगमोहन ने कहा कि शहीदों की कुर्बानियों का चित्रण करने के साथ उनकी दृष्टि और सोच को रेखांकित करना ज्यादा जरूरी है। आज आजादी के तैरानों को गुनगुनाने और तिरंगा लहराने के साथ-साथ यह जानना महत्वपूर्ण यह है कि आखिर हमारे स्वतंत्रता सेनानी आजादी क्यों प्राप्त करना चाहते थे? हमारे स्वतंत्रता आंदोलन का उद्देश्य क्या था? उन्होंने छात्र/छात्राओं से आह्वान किया कि वे विचार करें कि हम कहां से चले थे, कहां पहुंच गए और कहां जाएंगे। हमें आजादी के विचार पक्ष पर विचार-विमर्श करना चाहिए।

प्राचार्य महोदय डा. रणबीर सिंह ने 'देस हरियाणा' पत्रिका, इतिहास एवं हिन्दी विभाग को साधुवाद देते हुए कहा कि शिक्षा मनुष्य में संभावनाओं का विस्तार है। हर प्रगतिशील समाज समय के साथ नई संभावनाओं को जन्म देता है तथा कला और विज्ञान के माध्यम से उन्हें साकार करने का प्रयास करता है। हमारे क्रांतिकारी तत्कालीन समाज के ज्ञान-विज्ञान से गहरे रूप से जुड़े थे। हमारे शैक्षणिक संस्थाओं में अतीत की घटनाओं और भविष्य की योजनाओं को लेकर विचार-विमर्श जारी रहने चाहिएं।

'देस हरियाणा' पत्रिका के सम्पादक डा. सुभाष चंद्र ने कहा कि हमारे समाज में 'पुस्तक-संस्कृति' का अभाव है। हमारे घरों में किताबों के लिए न कोई कमरा है और न कोई अलमारी है। यहां तक कि रद्दी और बेकार वस्तुएं भी स्टोर रूम में अपनी जगह पा लेती हैं, लेकिन घर का कोई कोना किताबों के लिए आरक्षित नहीं है। उन्होंने बड़े सरल शब्दों में विद्यार्थियों को समझाया कि हरियाणा के घरों में जेली-गंडासी, लाठी-बरछे तो मिल जाएंगे, लेकिन किताबें नदारद हैं। यह पत्रिका इस सांस्कृतिक शून्यता को भरने का एक प्रयास है। आपके विचारों और सुझावों का पत्रिका में स्वागत है।

इस अवसर पर महाविद्यालय परिवार के अधिकांश शैक्षणिक कर्मचारी मौजूद रहे। इतिहास विभाग के छात्र अनुराग ने मुख्यातिथि को उधम सिंह की पेंटिंग भेंट की। प्रो. जगमोहन सिंह एवं अन्य गणमान्य व्यक्तियों ने 'देस हरियाणा' पत्रिका के छटे अंक का विमोचन किया। सेमिनार में लगभग 150 छात्र-छात्राएं मौजूद रहे तथा मंच संचालन डा. कृष्ण कुमार ने किया।

बंटी सिंह-बी.ए. द्वितीय वर्ष, रा.उ.महा. मटक माजरी

•

नकारात्मक परम्पराओं और प्रवृतियों से मुक्त करता देस हरियाणा का अंक-6

हरपाल शर्मा

वर्ष-2, अंक-6, देस हरियाणा का अंक हाथों में है। काफी अर्से से हरियाणा में खास तौर पर सामाजिक साहित्यिक सांस्कृतिक पत्रिका जतन के प्रकाशन के बंद होने पर पैदा हुए रिक्त स्थान को बड़ी शिद्दत के साथ महसूस किया जा रहा था। देस हरियाणा पत्रिका जिन हाथों से आज गुजर रही है, उससे एक विश्वास पैदा हुआ है और साहित्यिक खला को भरा जाएगा। इसका भरोसा लोगों में जगने लगा है और लोग आशाभारी दृष्टि से इसे देख रहे हैं। देस हरियाणा की बढ़ती लोकप्रियता ने हरियाणा के जनमानस के अलावा खासतौर पर युवा वर्ग को अपनी ओर आकर्षित किया है और ये पत्रिका उन्हें तथाकथित हरियाणवी होने की हताशा और हल्केपन की मानसिकता से मुक्त करने की ललक को उत्पन्न किया है।

सम्पादकीय में हरियाणा को बने पचास वर्ष पूरे होने पर इसकी विकास यात्रा के संबंध में कुछ प्रश्न उठाए गए हैं-'हमारे समाज में गड़बड़ाता लिंग अनुपात किस बीमारी का लक्षण है। धार्मिक प्रतीकों के लिए लोग मनुष्यों की हत्या करने लगते हैं। विज्ञान व डिजीटल तकनीक के युग में लोग अपनी समस्याओं के निदान के लिए बाबाओं के आर्शीवाद-चमत्कार, ओझाओं की भभूत-झाड़ों, गुरुओं के गंडे-ताबीज पर भरोसा क्यों कर रहे हैं। मानव विकास के लिए सूचकांक तथा आर्थिक विकास के लिए सूचकांक में गहरी खाई के क्या कारण हैं।' सम्पादकीय में इस पत्रिका के माध्यम से जो चिंताएं व्यक्त की जा रही हैं, वे गहरे से हरियाणवी समाज के जड़-मूल में व्याप्त हैं।

अंक छह की यूं तो सारी सामग्री पठनीय है, लेकिन इसकी पहली ही कहानी 'मोलकी' के कहानीकार टेकचंद जी, ने हरियाणा की तात्कालिक और भविष्य में भयंकर रूप लेने जा रही सामाजिक विसंगित के रूप में पहचानी जा सकती है। कहानीकार ने अपने परिवेश, अपनी भाषा और अपने लोगों के बीच रहते जो महसूस किया है, उसे स्वयं को तटस्थ रखते हुए और विवेक का इस्तेमाल करते हुए एक शास्त्रीय रचना की तरह सृजित किया है। दूसरी उपलब्धि इस अंक की एक खोजपूर्ण ऐतिहासिक दस्तावेज है। सिंगापुर की गदरी फौजी बगावत के शहीदों की जो सूची प्रकाशित की गई है, वो हमारी आंखें खोल देने वाली सूचना/घटना है, जिसमें सन् 1857 जिसमें भारतीय स्वतंत्रता संग्राम व गदर लहर दो महत्वपूर्ण सशस्त्र विद्रोह रहे, जिनमें हरियाणा क्षेत्र के लोग विशेषकर मुसलमानों का उल्लेखनीय योगदान है।

कविताएं इस अंक की शोभा बढ़ा रही हैं, जिनमें उर्मिल मोंगा की दो कविताएं, दिनेश हरमन की दो गजलें, रामफल जख्मी की रागनी और जीवन वृतांत, डा. (श्रीमती) आशुतोष के गीत, जिनमें सुशीला बहबलपुर की कविताएं विशेष रूप से उल्लेख की जा सकती हैं। डा. रणबीर दहिया की महत्वपूर्ण रागनी, मनोज माठड़े 'मौजी' की रागनी, अरूण कैहरबां की कविता, महेंद्र सिंह फकीर की कविता, बी. मदनमोहन की बाल कविताएं और सत्यवीर नाहड़िया की 'यो सोन्ने वरगा साल....' कविताएं सराहनीय रचनाएं कही जा सकती हैं।

विचारोत्तेजक लेखों की श्रेणी में 'पहली बार लेखक की हैसियत से'-सोना चौधरी 'किताबें ज्ञान का प्रवेश द्वार हैं'-परमानंद शास्त्री, जिसमें नौजवान उभरते बुद्धिजीवियों की टिप्पणियां यथा, पिंकी, माला कुमारी, पूजा, रविन्द्र कुमार कुम्हारिया, संजू, प्रियंका, जगजीत सिंह और सूचना मन में एक विश्वास जगाती हैं कि आने वाला दिन हमारा होगा। जाने-माने साहित्यकार एवं प्रतिष्ठित पुलिस, सेवा अधिकारी श्री विकास नारायण राय, जिन्होंने प्रेमचंद से दोस्ती शुरू करके अब साहित्य से दोस्ती तक पहुंच गए हैं और साहित्य को जन-जन तक पहुंचाने में खासकर हरियाणा में इनका योगदान अतुलनीय कहा जा सकता है।

'ठहरे हुए पल' उपन्यास अंश श्री ब्रह्मदत्त शर्मा द्वारा लिखित है, जिसका एक छोटे से पाठ का जिक्र करते हुए उपन्यास के सम्पूर्ण चरित्र का दिग्दर्शन करवाते हैं। राजविन्द्र चंदी जी अपने जाने-माने अंदाज में कुछ नयी जानकारियों के साथ शहीद उधम सिंह की जीवनी हमारे साथ शेयर कर रहे हैं। इस अंक का एक और महत्वपूर्ण लेख 'एक अशांत अदीब की खामोश मौत' एक प्रतिष्ठित साहित्यकार, कहानीकार श्री ज्ञान प्रकाश विवेक जिसके माध्यम से एक अशांत युवा लेखक की पेशानी पर पड़े बल का नोटिस ले रहे हैं। इस संस्मरण में उन्होंने अपने व्यक्तिगत सम्बन्धों के माध्यम से भाई ललित कार्तिकेय को समझने की कोशिश की है। 'हीलियम' कहानी का पाठ इस अंक में दिया गया है, उसका पाठ स्वयं कार्तिकेय ने कुरुक्षेत्र में एक गोष्ठी में किया था और उस पर विस्तृत बहस हुई थी, जिसमें स्वयं डा. ओ.पी. ग्रेवाल साहब भी उपस्थित थे। इस कहानी में प्रयुक्त तकनीक और भाषा अपने समय से कहीं आगे की आंकी गई थी और सराही गई थी।

कौन बनेगा अमेरिका का राष्ट्रपति के लेखक श्री महावीर शर्मा जाने-माने समाज चिंतक हैं, जिन्होंने ठीक ही चिन्हित किया है कि ये समय गंभीर और जेनुअन सरोकारों से लैस व्यक्ति का न होना एक मसखरे का समय है। इसी सिलसिले में 'भारत में कृषि एवं सिंचाई व्यवस्था'-राकेश कुमार मालवीय, 'लोकनाद का पैगाम', 'अनुभव का सबक'-मोहन रमणीक, 'ब्राह्मणवाद के खिलाफ हुई भीम गर्जना'-धर्मवीर, 'आमूल-चूल परिवर्तन की खातिर'-नुसरत, 'राजा राम मोहन राय के सामाजिक सरोकार'-बूटा सिंह सिरसा, 'इसी आकाश में' व 'साडे वेखदियां वेखदियां' का विमोचन-शेर चंद, 'सातवां आबिद आलमी यादगार मुशायरा'-अविनाश सैनी, 'स्मृति शेष' में मुद्रा राक्षस एक श्रद्धांजलि के रूप में उन्हीं की पुस्तक 'धर्म ग्रंथों का पुर्नपाठ' का एक अंश। डा.

ओमप्रकाश ग्रेवाल अध्ययन संस्थान में 26 जून 2016 को श्री सुभाष गाताड़े द्वारा दिया गया भाषण जिसे 'पवित्र किताब की छाया में आकार देता जनतंत्र' के तहत छापा गया है, पठनीय है। 'रेत से प्रौद्योगिक क्रांति की ओर'-अविनाश उपाध्याय, 'पारिस्थितिक संकट और समाजवाद का भविष्य'-डा. कृष्ण कुमार। ये दोनों लेख अति महत्वपूर्ण हैं, जिनमें हमें हमारे समाज से आगे की जानकारियां मिल रही हैं। हरियाणा जो कभी साम्प्रदायिक सद्भाव बिगाड़ने वाले राज्य के रूप में परिभाषित नहीं हुआ, वही आज इस अंधे कुए की ओर तेजी से बढ़ता जा रहा है। प्रस्तुत लेख में 'प्रभुत्व बरकार रखने के लिए जाट संघर्ष' सुरिन्द्र एस. जोधका ने इस सब चिंताओं को सांझा करने की कोशिश की है। ●

शांति नगर, कुरुक्षेत्र

सम्पादक महोदय,

अंबाला कैंट की पुस्तकों की एक पुरानी दुकान से ' देस हरियाणा ' (मई-जून)की प्रति खरीदी। पहली बार में ही इसने मुझे प्रभावित कर दिया। अखबारों व टीवी के बिजनेस चैनलों पर प्राय: बड़े उद्योगपतियों व बिजनैसमेन के बारे में तफसील से बताया जाता है। परन्तु देस हरियाणा ने ईंट भट्टों में पक रही महिला मजदूर व बालश्रम की हकीकत ब्यान की है। इसके अलावा सिकलीगर समुदाय की जानकारी को भी मैंने इसी कड़ी में जोड़कर पढ़ा है। इससे पत्रिका का सार्थक उद्देश्य स्पष्ट होता है। कबीर का विश्लेषण भी अनूठे ढंग से किया गया है, पसन्द आया। साहित्य पक्ष भी संतुष्ट कर गया। वैश्विक व राजनैतिक सूचनाओं - समाचारों की बाढ़ से मन अब ऊब सा गया है। अपने लोक-समाज-संस्कृति को गहराई से जानने में सचमुच आनन्द आता है। आशा करता हूं कि देस हरियाणा ऐसी ही सामग्री प्रस्तुत करेगी। साफ-सुथरी , जमीन से जुड़ी पत्रिका निकालने के लिए धन्यवाद। ●

हरदेव कृष्ण, ग्राम-डाक - मल्लाह-134102, जिला पंचकूला(हरियाणा

संपादक महोदय,

पिछले अंकों को पढ़ने के बाद 'देस हरियाणा' प्रत्रिका के जुलाई-अगस्त अंक का बेसब्री से इंतजार था। पत्रिका का शब्द-शब्द पढ़ा। पाठ्य सामग्री को देखकर लगा कि पत्रिका अपने अन्दर विविधता समेटे हुए है। इसमें नवोदित साहित्यकारों की रचनाएँ हैं। तो महान लेखक प्रेमचंद और मुद्रा राक्षस के ऊपर भी आलेख हैं और गोगा पीर की दन्त कथा के बारे में जानकारी भी है। पाठक को साहित्यिक गतिविधियों के साथ-साथ आजादी के अज्ञात शहीदों व ऊधमसिंह के बारे में दुर्लभ जानकारी प्राप्त होती है।

रामफल जख्मी और ललित कार्तिकेय की रचनाएँ और उनके ऊपर लिखे संस्मरण बहुत अच्छे लगे।

व्यक्तिगत तौर से ये कहना चाहूंगा कि साहित्यिक गतिविधियों में सुखा ग्रस्त हरियाणा में जन सापेक्ष पत्रिका निकालना बहुत ही साहसिक और जरुरी कदम है। जन सापेक्ष साहित्य में रूचि रखने वाले लोगों को एक मंच पर ले आने की चुनौती पत्रिका की टीम के सामने है। अच्छी शुरूआत को देखकर विश्वास जमता है कि हरियाणा में साहित्यिक क्षेत्र में सुखा जरूर समाप्त होगा। ●

महेन्द्र सिंह, 524, सेक्टर-13, भिवानी

छपते-छपते

पहलवान साक्षी मलिक

हरियाणा के जिला रोहतक के गांव मोखरा निवासी सुखबीर सिंह व सुदेश की होनहार बेटी साक्षी मलिक ने रियो ओलम्पिक में 58 किलो भार की फ्री स्टाईल कुश्ती में कांस्य पदक जीत कर हरियाणा का नाम रोशन किया है। देस हरियाणा की ओर से साक्षी मलिक व उनके कोच ईश्वर सिंह दहिया को हार्दिक बधाई। 12 वर्ष की आयु से ही सर छोटू राम स्टेडियम में स्थित अखाड़े में ईश्वर दहिया के निर्देशन में प्रशिक्षण ले रही थी।

हरियाणा की महिला खिलाड़ियों ने ये साबित कर दिया है। यदि मां-बाप बेटियों को चारदिवारी से बाहर निकलने दें, तो वह साबित करके दिखा सकती हैं कि वे किसी से कम नहीं हैं।

जगदीश चंद्र सम्पर्क: 9316120057

आदरणीय संपादक महोदय,

'देश हरियाणा' का जुलाई-अगस्त अंक समय पर मिला। वरियाम सिंह संधु ने उन अल्पज्ञात शहीदों से रूबरू करवाया, जिनसे मुख्य धारा के इतिहासकार बचते आए हैं या जानबूझ कर उनको अनदेखा करते रहे हैं। वी.एन. राय का लेख प्रेम चन्द को समझने में पूरी तरह सफल रहा है। राजविन्द्र चंदी का लेख 'शहीद उधम सिंह' अगस्त मास की भरपाई करता है, जिसमें हमारा राष्ट्रीय पर्व समाया हुआ है। सुरेन्द्र जोध का जाट आंदोलन का सटीक विश्लेषण तो करते हैं, मगर सरकारी पक्ष की अनदेखी करते हैं। गोगापीर की कथा एक नई तरह की ताजगी प्रदान करने में समर्थ रही है। लेखक अमनदीप को साधुवाद जिन्होंने गोगा के चरित्र पर छाए कुहासे को हटाने का प्रयास किया है। स्मृति शेष में श्री रामफल जख्मी, मुद्राराक्षस एवं ललित कार्तिकेय को याद किया गया है। यह अति आवश्यक था। सोना चौधरी का साक्षात्कार, धर्मवीर व नुसरत के लेख प्रभावशाली रहे। 'कबिरा खड़ा बाजार में' अच्छा लगा। आज भी कबीर उतने ही प्रासंगिक हैं, जितने अपने समय में थे। इसलिए कबीरा व उसकी लुकाटी गाहे-बगाहे, चाहे-अनचाहे हमारे समय में घुसपैठ (प्रवेश) कर ही जाते हैं। 'जीना इसी का नाम है' स्तम्भ वंचितों के संघर्ष को पहचान देता है। इसे थोड़ा विस्तार दिया जाए तो अच्छा होगा।

'पारिस्थितिक संकट और समाजवाद का भविष्य' बेहद विचारोत्तेजक लेख है। इसके अतिरिक्त पुस्तकों का लोकार्पण, साहित्य समाचार, बाल-कविता, पाठक पन्ना सभी मिलकर पत्रिका को भव्यता प्रदान करते हैं। ● **कमलेश चौधरी बाबैन कुरुक्षेत्र**

सृजन के लिए विचारधारा जरूरी है
गुरदयाल सिंह

पहले अपने अनुभव के बारे में बताना चाहूंगा, जिसे अपने लेखन का आधार मानता हूं।

बचपन तो जैसा भी बीता ठीक से कुछ कह पाना संभव नहीं। इतना याद है कि बारह साल की उम्र में पिता ने सातवीं कक्षा से स्कूल छुड़वा कर बढ़ईगिरी के कठिन काम पर लगा लिया। दस बारह घंटे काम करते चालीस किलो वजन के दुबले-पतले शरीर का अंग-अंग टूटने लगता। दो साल बड़ी बहन और आठ और तीन बरस के दो छोटे भाई थे। परिवार की गुजर-बसर अकेले पिता जी की कमाई से हो नहीं पाती थी। इसलिए पढ़ाई बीच में छुड़वा दी। घर की ऐसी हालत में कहीं भाग भी नहीं सकता था। काम से जी चुराने की भी आदत नहीं थी। (शायद इसी आदत ने यहां तक पहुंचा दिया।)

आठ साल पिता के साथ मेहनत मजदूरी करते बीते। बहुत कड़े-मीठे अनुभव हुए। गुरुदेव श्री मदन मोहन शर्मा ही थे, जो हमेशा पढ़ने की प्रेरणा देते, जाने कैसे-कैसे सपने दिखाते, जगाते रहते। (वे स्थानीय मिडल स्कूल के मुख्याध्यापक थे। उन्होंने ही पांच साल की उम्र में पिता को प्रेरित करके स्कूल में भर्ती करवाया था। परिवार का पहला बच्चा था जो स्कूल जाने लगा था।) पढ़ना अच्छा भी लगता। कोई भी पत्रिका, समाचार पत्र या पुस्तक मिल जाती तो रात को लालटेन की रोशनी में पढ़ने लगता। सभी कुछ बहुत रोमांचक लगता। कोई भी समाचार, कविता, कहानी पढ़ते महसूस होता कि यह किसी आकाश-पाताल की बातें हैं। उर्दू के एक-दो समाचार पत्र एक छोटे से पुस्तकालय में आते थे। उनमें विश्व युद्ध या कांग्रेस पार्टी के नेताओं के समाचार अधिक होते। गांव से सटी केवल पांच-छह हजार की आबादी की मंडी (कस्बा) एक सिख राजा (नाभा) के अधीन थी। यहां कांग्रेस पार्टी जैसी एक सियासती प्रजा मंडल नाम की पार्टी की सभाएं हुआ करतीं, परंतु उनमें बीस-तीस लोग गांधी टोपी तथा खादी के कुर्ते-पाजामे पहने नारे लगाते या अंग्रेज सरकार के विरुद्ध कुछ ऐसी बातें करते, जिन्हें ठीक से समझ न पाता।

गुरु जी की प्रेरणा से ही काम करते, रात या कभी-कभार दिन में, समय मिलने पर दसवीं कक्षा की पाठ्य पुस्तकें पढ़ने लगता। गुरु जी ने हर तरह सहायता की। पुस्तकें भी दीं। जब भी फुर्सत मिलती, उनके पास पढ़ने चला जाता। तीन-चार साल धीरे-धीरे काम के साथ पढ़ाई करते बीते। चौदह साल की कच्ची उम्र में शादीहोने के कारण 1953 में बीस साल का होते-होते तीन बच्चों का बाप भी बन चुका था। मैट्रिक तथा पंजाबी में ज्ञानी (आनर्स इन पंजाबी) की परीक्षाएं पास कर लीं तो गुरु जी ने एक स्कूल इंस्पैक्टर के पास सिफारिश करके, 1954 में प्राइमरी स्कूल में नौकरी लगवा दी। लगा जैसे फर्श से अर्श (आकाश) पर पहुंच गया। नियुक्ति एक दूर के गांव में हुई, जहां रेलवे स्टेशन से पांच-छह कोस (दस किलोमीटर) पैदल चलकर पहुंचना पड़ता। स्कूल एक गुरुद्वारे के बरामदे में लगता। दिन तो बच्चों को पढ़ाते और स्वयं पुस्तकें पढ़ते बीत जाता, परंतु रात को ठीक से सो न पाता।

गुरुद्वारे का ग्रंथी (पुजारी) बहुत मूर्ख था। गांव से तीन-चार किलो दूध का 'गजा' करके (किसानों के घर से मंगाकर) लाया सारा दूध सांझ तक पीकर, सांझ ढलते ही खर्राटे लेने लगता। रहने के लिए दो ही कच्ची कोठरियां थीं। एक में ग्रंथी का सामान भरा था, दूसरी में मुझे भी उसके साथ सोना पड़ता। गर्मी में तो गुरुद्वारे के सामने खुले आंगन में सो जाता परन्तु सर्दी में कोठरी के भीतर सोना पड़ता। न गहरी नींद सो पाता, न अच्छी तरह पढ़ पाता।

उस गांव में डेढ़ साल रहने के बाद अपने कस्बे से तीन-चार किलोमीटर दूर गुरु जी के कहने पर तबादला हो गया तो लगा जैसे डेढ़ साल की कैद से छुटकारा मिला हो। यह गांव भी छोटा था परन्तु पांच घंटे पढ़ाने के बाद बाकी समय घर आकर पढ़-लिख सकता था।

घर लौटने से जो सुख महसूस होना चाहिए था वह नहीं हुआ। बेचैनी अधिक होने लगी। इक्कीस-बाइस साल तक जिस घर में जीवन बीता, उस घर के एक छोटे चौबारे तथा बरामदे के घर में परिवार से तो अलग रहने लगा था, परंतु जो कड़े-मीठे अनुभव मन में बसे थे वे कभी तो इतना बेचैन कर देते कि डायरी के रूप में उन्हें किसी साधारण कापी में लिखकर मन का गुबार निकाल लिया करता। परंतु यह बात देर से पता चली कि जो तथ्य लिखता, वे वैसे नहीं थे, जैसे घटित हुआ करते। उनमें जाने कैसी भावनाएं और विचार लिखे जाते कि जब वह डायरी कुछ सप्ताह या महीनों बाद पढ़ने लगता तो हैरानी होती कि लिखना क्या चाहता था, लिख क्या गया।

शायद यही लेखन की शुरुआत थी। उस पांचवें दशक में सोवियत संघ की ढेरों पुस्तकें अंग्रेजी, हिन्दी तथा पंजाबी में प्रकाशित होने लगीं। उनका मूल्य इतना कम था कि दो-तीन रुपए में चार-पांच पुस्तकें मिल जाया करतीं। गुरु जी के उत्साहित करने से एफ.ए., बी.ए. की परीक्षाओं की तैयारी करने लगा तो अंग्रेजी की पुस्तकें भी पढ़ने लगा। कुछ शब्दकोश की सहायता से गोगोल के 'तारास बलबा' तथा लर्मनतोव के 'ए हीरो आव अवर टाइम' जैसे लघु उपन्यासों से लेकर गोर्की के 'मदर' समेत सभी उपन्यास, दास्तोवस्की, चेखव तथा तालस्ताय के दो बड़े उपन्यास भी पढ़ लिए। पढ़ने की भूख ऐसी बढ़ी कि फ्रांस, इंग्लैंड के चार्ल्स डिकेंस, हार्डी, बालजाक तथा अमरीका के हेमिंग्वे, पर्ल एस. बक के 'गुड अर्थ' जैसे उपन्यास भी पढ़ लिए (परंतु रूसी कहानीकारों तथा उपन्यासकारों की तरह लेखक प्रभावित नहीं कर पाए)।

उन्हीं दिनों कहानियां लिखने लगा। कारण यही था कि जिस बेचैनी से विचलित हो रहा था, उससे छुटकारा पाने का यही ढंग खोज पाया। (कभी बढ़ईगिरी करते समय, स्थानीय गुरुद्वारे में तीन साल तक सब्द-कीर्तन भी किया, तैल चित्र भी बनाए, परन्तु उनसे इसलिए मन ऊब गया कि दोनों ही अंदर की बेचैनी शांत करने का माध्यम नहीं बन पाए थे।) परंतु जब चेखव जैसी एक भी कहानी नहीं लिख पाया, तो कुछ समय के लिए कुछ भी लिखना छोड़ दिया। सोचने लगा, सैंकड़ों अच्छे-बुरे लोगों तथा उनके साथ घटित घटनाओं, दुर्घटनाओं के

बारे में बहुत अच्छी तरह जानकारी होते भी अच्छी कहानी क्यों नहीं लिख पाता?

उत्तर खोजने में कुछ देर तो लगी, परंतु इस रहस्य को समझ लिया कि संसार में कोई भी दो लेखक एक से नहीं हैं। भाषा, शैली ही अलग नहीं, विषय भी दूसरों से अलग होने के कारण, अपने ही अनुभव को लेकर कुछ लिख पाऊंगा। फिर पढ़ा-लिखा सभी भूलकर जैसा भी ठीक लगा लिखने लगा। कहानियां 'प्रीतलड़ी' तथा दो-तीन और अच्छी पत्रिकाओं में प्रकाशित होने लगी। पहला कहानी संग्रह 1960 में प्रकाशित करवा लिया। उसके दूसरे पृष्ठ पर सरदार गुरबख्श सिंह, गुरु कवि मोहन सिंह तथा दो और लेखकों की टिप्पणियां भी प्रकाशित हुईं। नये विचारों के बहुत अच्छे समालोचक डा. अतर सिंह ने रेडियो पर पुस्तक की समीक्षा की, तो लगा कि कहानियां लिख सकता हूं।

'प्रीतलड़ी' जैसी पत्रिका में हर दो-तीन महीने के बाद लगातार कहानियां प्रकाशित होने लगीं तो उत्साह और बढ़ा। उन्हीं कुछ वर्षों में ही उपन्यास लिखने का ख्याल आया तो पहला उपन्यास दो साल से कुछ अधिक समय में मुश्किल से पूरा कर पाया। दो-तीन को छोड़ पंजाबी के अधिक लेखक पश्चिम पंजाब (जो 1947 के बंटवारे के कारण पाकिस्तान में चला गया) तथा लाहौर, अमृतसर से संबंधित थे, जिसे 'माझा' (मझुला) कहा जाता था। परन्तु बंटवारे के बाद पंजाब की भौगोलिक तथा ऐतिहासिक स्थिति बदलने से सतलुज के दक्षिण पश्चिम का इलाका (जिसे मालवा कहा जाता है) वही सामाजिक, राजनैतिक तथा आर्थिक गतिविधियों का केंद्र बन गया। इस खित्ते में लाहौर, अमृतसर या जालंधर जैसा कोई बड़ा शहर नहीं था। (लुधियाना में भी छोटे उद्योगों का विकास 1960-65 के बीच शुरू हुआ और वहां कृषि विश्वविद्यालय भी उसी समय स्थापित हुआ, जिसके कारण पंजाब में हरित क्रांति का उदय हुआ)। मैंने बचपन से पूरा जीवन ही इस 'पिछड़े' कहे जाने वाले खित्ते (मालवा) में बिताया। यही मेरी जन्मभूमि थी।

ऐसे ही कुछ कारणों से मुझे अधिक अनुभव मालवा के ग्रामीण जीवन का ही था। परन्तु पंजाबी के लगभग सभी विद्वान, समालोचक माझे तथा पश्चिमी पंजाब के थे, जहां एक सदी तक अंग्रेजों का राज रहने के कारण स्कूल, कालेज बहुत पहले शुरू हुए और अंग्रेजी में शेक्सपीयर से लेकर जेम्स तक लेखकों से परिचय होने के कारण पंजाबी के लेखक भी प्रभावित हुए। परन्तु मालवा सात सिख रियासतों के अधीन होने के कारण शिक्षा के क्षेत्र में बहुत पिछड़ा हुआ था। यहां तक कि हमारे इलाके के आसपास एक सौ मील तक कोई कालेज नहीं था। 1942 में फरीदकोट के राजा ने अपने एक पुरखे के नाम पर कालेज शुरू किया जो हमारे कस्बे से तीस किलोमीटर दूर था। आजादी से पहले सबसे पुराना कालेज पटियाला शहर (जो सिख रियासत की राजधानी था) में था जो हमारी मंडी से 165 किलोमीटर दूर था।

यह सब इसलिए बताना जरूरी लगा कि पंजाबी साहित्य में ग्रामीण जीवन पर पांचवें दशक तक बहुत कम लिखा गया। इस कारण जब कहानियां लिखना शुरू किया तो अधिक समालोचकों ने इसलिए ध्यान नहीं दिया कि उनके विचार से जैसा निम्न कोटि का ग्रामीण जीवन है, उसी निम्न स्तर का साहित्य होगा। परंतु मैं इन सभी परिस्थितियों से परिचित था इसीलिए कभी विचलित नहीं हुआ। भारतीय भाषाओं तथा विदेशी साहित्य में जितनी जटिलताएं तथा विविधता ग्रामीण जीवन पर लिखे साहित्य में देखी, वह साहित्यिक मापदंडों के अनुसार, शहरी जीवन से कम नहीं थी (इनमें हार्डी जैसे लेखक की रचनाएं भी शामिल थीं)।

ग्रामीण तथा शहरी जीवन में जो अंतर जाना, वह केवल जीवन शैली का था। ध्यान देने पर लगता कि ग्रामीण जीवन के बारे में कुछ भी कहे, उसकी समस्याएं शहरी जीवन से अधिक जटिल होती हैं। परंपराओं, रूढ़ियों, जातिप्रथा, अंधविश्वासों तथा सामाजिक, राजनैतिक व्यवस्था उच्च वर्गों के हाथों में होने के कारण उनके दुख-कष्टों का समाधान उनके अपने बस में नहीं रहा था। राजसत्ता में हिस्सेदार उच्च मध्यवर्गों तथा जागीरदारों की समस्याएं कैसी भी रही हों (या आज हैं) उनका समाधान कहीं न कहीं, कुछ हद तक संभव था। उनकी जीवन शैली के भी अनेक रंग संभव हैं। यह लोग अपने को सभ्य, परन्तु ग्रामीण जीवन को गंवारू समझते आए हैं। उनके हाथों ग्रामीण जनता हमेशा उत्पीड़ित रही है। भले ही आम लोग अज्ञानी, अनपढ़ या अंधविश्वासी रहे, परन्तु यह उनका अपना दोष नहीं था। सत्ताधारी वर्गों की लालसा, लूट-खसोट तथा आनंदमय जीवन जीने के साधन जुटाने के लिए जनता के उत्पीड़न के कारण ही हमेशा निम्न ग्रामीण लोग ऐसी समस्याओं की जंजीरों में जकड़े रहे हैं कि उनकी रक्षा के लिए कोई धर्म, सिद्धांत, विचारधारा अभी तक कारगर साबित नहीं होने दी गई। ऐसा उच्च वर्गों के हाथों में सत्ता होने के कारण ही हुआ।

यदि कहूं कि मुझे इन लोगों के दुख-सुख की जानकारी होने के कारण इनकी समस्याएं अधिक कष्टदायक लगती रहीं और अपने निजी अनुभव के कारण इनके साथ सहानुभूति अधिक रही तो आप ऐसे नहीं समझेंगे कि मैं शहरी जीवन से अनभिज्ञ रहा। कम से कम निम्न मध्यवर्ग के बारे में जितना लिख पाया, लिखा भी। उनसे सहानुभूति भी कायम रही, परंतु आज तक के उच्च वर्ग तथा राजसत्ता पर काबिज वर्गों की यदि कोई जटिल समस्याएं रहीं भी तो उनकी ओर ध्यान नहीं दिया (बल्कि इन वर्गों के प्रति मन में घृणा अधिक रही)।

इन्हीं कारणों से यदि कोई कहानियों या उपन्यासों को पक्षपाती कहें तो मुझे कोई आपत्ति नहीं होगी, क्योंकि आज तक की कोई राज्य व्यवस्था ऐसी नहीं रही जो पक्षपाती न हो। ग्लोबलाइजेशन के नाम पर जो कुछ आज हो रहा है, वह साम्राज्यी राजव्यवस्था तथा इसके पक्षधर धनाढ्य वर्गों के पक्ष में हो रहा है। यदि निम्न वर्गों के पक्षधर सोवियत संघ जैसे देशों को, अमरीका तथा उसके सहयोगियों ने ध्वस्त करने का कोई अवसर हाथ से नहीं जाने दिया तो इसे हम पक्षपात के अलावा और क्या कहेंगे? यदि आज तक के प्रत्येक समाज का यथार्थ ही पक्षपाती है तो साहित्य का निरपेक्ष होना असंभव है। यह संसार 'आदमी' का नहीं 'आदमियों' का है, जो वर्गों मे बंटे हुए हैं। (राजसत्ता पर काबिज वर्गों में बंटे हैं)।

यह कुछ विचार थे जो व्यक्त करना आवश्यक लगा, क्योंकि सरकार में जो कुछ भी घटित होता रहा या हो रहा है, वह मानव जीवन से अलग नहीं था, न है। मानव समाज कैसा भी हो वह कभी किसी विचारधारा के बिना संभव नहीं था। विचारधारा के बिना केवल जंगली जीवों का जीवित रहना संभव है, मानव का नहीं।

अंत में साहित्य के अनेक प्रयोगों के बारे में केवल इतना कहना होगा कि यह सभी लेखकों की प्रतिभा, अनुभव, विचारधारा, दृष्टिकोण तथा साहित्य की मूल विधियों के अनुसार किए जाते हैं। यदि इनमें से किसी का प्रयोग भी ठीक न हो तो कोई साहित्य रचना सार्थक न होगी। यदि मेरी कहानियां किसी चेतन पाठक को प्रभावित न कर पाएं तो निश्चित रूप से वे निरर्थक होंगी।

साभार: भारतीय लेखक से